Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Vyas, Bhavesh V., 2011, "*विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/714

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

॥ ॐ तत्सत् ॥

# ''विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग''

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत

## शोध–प्रबंध

**अनुसंधित्सु**

**भावेश वी. व्यास**

एम.फिल.

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय

राजकोट.

**निर्देशिका**

**डॉ. दीप्ति बी. परमार**

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

श्रीमती आर.आर. पटेल महिला महाविद्यालय

राजकोट.

**वर्ष : 2011**

# प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **भावेश विनायकभाई व्यास** द्वारा सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट में पीएच.डी.उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध **''विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग''** मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया है । इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथा-शक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण-विवेचन कर वैज्ञानिक ढ़ंग से नितांत मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश न तो प्रकाशित हुआ है, और न ही इसका कहीं कोई अन्य उपयोग हुआ है ।

स्थल :

दिनांक :

**निर्देशिका**
**डॉ. दीप्ति बी. परमार**
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
श्रीमती आर.आर. पटेल महिला महाविद्यालय
राजकोट.

# CERTIFICATE

*I here by declare :*

*That the work embodied in my Thesis on* "**विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग**" ***(Hindi as a medium of usage in legal Discipline)*** *prepared for the Ph.D. Degree has not been submitted for any other degree of any other University on any previous occasion.*

*That to the best of my knowledge no work has been reported on the above subject since I have discovered new relations of facts of the history of Hindi literature. This work can be considered to be contributory to the advancement of study of literature.*

*That all the work presented in this thesis is original and whatever references have been made are credited accordingly It has been clearly indicated as such and included in the bibliography.*

*Countersigned by the Guiding Teacher.*

*Date :*

*Place :*

| | |
|---|---|
| *Guide* | *Research Student* |
| *(Dr. Dipti B. Parmar)* | *(Bhavesh V. Vyas)* |

# प्राक्कथन

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहातस्मृति विभ्रम

स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुदधिनाशात्प्रणश्यति

रागद्वेष वियुक्तैसु विषयानिन्द्रियैश्चरन

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधि गच्छति

उक्त 'श्रीमद् भगवद् गीता' के श्लोक में भगवान श्री कृष्ण ने संयम का महात्म्य और असंयम से प्राप्त हानी की बात कही है । यदि मनुष्य स्वयं नियमों एवं सिद्धांतों का उलंघन करता है तो वह अपने परिवार, समाज और राष्ट्र तक भी भय रूप साबित हो सकता है, उससे विपरित यदि व्यक्ति सुचारु एवं संयमित रहे तो वह समग्र संसार के लिए कल्याणरूप साबित हो सकता है । अतः मनुष्यों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान कराने एवं समाज एवं राष्ट्र को सुव्यवस्थित चलाने के लिए नीति और नियमों का अविर्भाव हुआ । इस कानून व्यवस्था को प्रशासन में एक अलग ही आयोग के रूप स्थापित किया गया । चूँकि यह विधि एवं उनके नियम सर्वसामान्य को लागू होते हैं, भारत का प्रत्येक नागरिक नियमों से समान रूप से जुड़ा है फिर चाहे वह छोटा आदमी हो या बड़े से बड़ा राजनेता विधि पालन में सब समान है यहाँ उच्च-निम्न का भेद नहीं है ।

संसार की सभी संस्कृतियाँ एवं सभ्यताओं के विकास में तत्कालीन प्रशासन व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । श्रेष्ठ संस्कृति एवं शासन प्रणाली श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण करती है और ऐसे ही श्रेष्ठ मनुष्यों का समूह श्रेष्ठ एवं स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । श्रेष्ठ आचार-प्रणाली, श्रेष्ठ विचार-प्रणाली

और श्रेष्ठ जीवन-प्रणाली से समाज को श्रेष्ठता प्राप्त होती है । इस दृष्टि से भी प्रशासन कानून एवं विधि आयोग समाज का अभिन्न अंग है । कानून समाज का दर्पण है, कानून समाज का रक्षक है, एक विश्वास है, निर्भिकता का प्रतीक है । संयमित समाज की कुंजी है । विधि के माध्यम से एवं कार्य प्रणालियों से समाज में भयमुक्त वातावरण निर्मित होता है । विधि न्याय का प्रतिपालक है । कानून समाज में ज्ञान का आलोक फैलाता है, अज्ञान एवं भ्रष्टाचार तथा गैरकानूनी कर्मों के अंधकार को दूर करता है । कानून समाज में प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता, अपने अधिकार एवं जिने के नए आयाम प्रदान करता है । विधि एवं प्रशासन से समाज की एक सही और स्थिर रूप-रेखा का विस्तार किया जा सकता है । कानून का काम समाज में फैली अराजकता को दूर करना एवं शांति और अमन को बरकरार रखना है ।

''अंधकार है वहाँ जहाँ सूर्य नहीं है,
और मूर्दा है वह देश जहाँ कानून नहीं है ।''

विधि पूरा आयोग है । उसकी संपूर्ण सत्ता स्वायत् है । राष्ट्र की गरीमा और अस्मिता को अखंड़ित रखने के लिए सभी देशवासियों को उसके नीति नियमों एवं संविधानों की रक्षा करनी चाहिए । भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान हक दिए है । और कुछ सार्वत्रिक प्रतिबंध भी लगाए हैं यदि कोई व्यक्ति संविधान का उलंघन करता है तो कानून उसे दंड़ देता है । संक्षेप में कहे तो कानून का काम नागरिकों से संविधान का पालन करवाना है । पुलीस, अदालत, जैल ये सब विधि के अंग है । इन विभिन्न माध्यमों से कायदे का अनुपालन किया जाता है और उनके उलंघन के प्रतिभाव में दंड़ संहीता के माध्यम से विभिन्न गुनाहों के बदले उनके हिसाब से दंड़ दिया जाता है यह संविधान के दायरे में रहकर होता है ।

विशिष्ट रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह विधि युँ तो राष्ट्र के सभी व्यक्ति से जुड़ा है कानून सबको समान रूप से लागू होता है । किंतु यह व्यवस्था इतनी जटील, बृहद और क्लिष्ट है कि सामान्य जनता की समज से बाहर हैं । कितनी दफाएँ हैं, कितनी धाराएँ हैं तथा कितने नीति-नियम हैं यह सब प्रजा की समज से बाहर की वस्तु है । आज तक अदालत एवं न्याय संबंधित, सारी बातें अंग्रेजी या प्रादेशिक भाषा में ही प्राप्त है जबकि संविधान ने अदालतों में हिंदी भाषा के इस्तमाल पर कुछ धाराएँ निर्देश की हैं । किंतु आज तक न्यायालय एवं उच्चन्यायालयों में हिंदी माध्यम का प्रयोग नहीं किया गया है। भारत की अस्सी प्रतिशत से ज्यादा प्रजा हिंदी समज सकती है तथा हिंदी भारतवर्ष की राजभाषा भी तो है । इतना सब होने के बावजूद भी हिंदी के प्रति इतना छोंछ क्यों है, सही मात्रा में हिंदी का प्रयोग क्यों नहीं होता है ? क्यों आज भी बड़ी अदालतों में फैसलें, सुनवाई आदि सब अंग्रेजी में होता है ? इन सभी बातों का कारण क्या है तथा इन कारणों में कोन सी समस्याएँ जुड़ी हुई है तथा इनका समाधान क्या है । जिससे आनेवाले समय में इन सभी जगहों पर हिंदी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो और इस प्रकार हम अपनी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र भक्ति साबीत कर सके । यह हेतु इस शोध-कार्य का मुख्य्य बिंदु है तथा गौण हेतु के रूप में देश की जनता को देश के कानून के प्रति, संविधान के प्रति जागृत करना है। प्रत्येक भारतीय को अपने देश के कानून को जानने का हक है किंतु भाषा की विसंगतिओं के कारण वे नहीं जान पाते, तो सारे कार्य यदि हिंदी में हो तो सभी लोग आसानी से विधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । इसलिए मेरे मन में विधि जो कि अनुसंधान में लगभग अबतक अछुता विषय रहा है जिस पर शोधकार्य करने की इच्छा प्रकट हुई । मैंने संविधान एवं कुछ अदालतों की रू-ब-रू मुलाकात तथा अन्य विधी

ग्रंथों की सहायता से मौलिक ढंग से विधि क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग विषय को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । यहाँ हिंदी प्रयोग से तात्पर्य है कि संविधान का अनुच्छेद ३४८ एवं ३४९ में निर्दीष्ट हिंदी भाषा के प्रयोग से है । इस से सामान्य प्रजा का विधि के प्रति लगाव एवं ज्ञान में यथोचित वृद्धि होगी ऐसा शोधार्थी का विनम्र मत है । अतः ऐसे पवित्र उद्देश्य से किया गया यह अनुसंधान कार्य शोधार्थी का केवल विनम्र प्रयास मात्र है । इस शोध-प्रबंध में कुछ त्रुटियाँ रह गई हो यह संभव है, इसका संपूर्ण दायित्व केवल शोधार्थी पर है । जो कुछ भी उपलब्धियाँ है, वे अभिभावकों की एवं गुरुजनों की हैं ।

## ० शोध-विषय की प्रेरक भाव-भूमि एवं विषय चयन :

जब कोई अध्येता साहित्य एवं साहित्येत्तर विभिन्न चिजों का अध्ययन करता है तो उसमें से कुछ ऐसे तत्व, ऐसे विचार उसे प्राप्त होते हैं, जिनसे वह बरबस ही प्रभावित हो जाता है । प्रत्येक अध्ययन का प्रभाव अवश्य ही हम पर व्याप्त होता है। साहित्य से हटकर भी कुछ ऐसे विषय होते हैं, जो हमारे मन और हृदय पर छा जाते हैं और उनकी एक विशेष छवि उभर आती है, जिसमें हम चीर काल तक उनसे प्रभावित रहते हैं । समाज से जुड़ी कुछ ऐसी बातें होती हैं जो सहज ही हमारा ध्यान अपनी और आकृष्ट करती है ।

इस संदर्भ में विषय चयन एवं प्रेरक भाव-भूमि के संबंध में चर्चा आवश्यक है, क्योंकि किसी भी कार्यारंभ के मूल में कोई-न-कोई प्रेरक भाव-भूमि अवश्य ही होती है । सबसे जटिल कार्य अनुसंधान के विषय-चयन की प्रक्रिया का होता है ।

मैंने स्नातक स्तर पर प्रयोजनमूलक हिंदी का अध्ययन किया और अनुस्नातक स्तर पर इसका और भी गहनता से अध्ययन किया । इस समय दौरान हिंदी

राजभाषा के रूप में एवं साहित्येत्तर हिंदी, जैसे विषयों से अधिक प्रभावित रहा। इन विषयों में हिंदी के विभिन्न रूप एवं हिंदी की अलग-अलग स्थितियों की आवश्यकता हिंदी के विभिन्न प्रयोग आदि मुद्दों का सम्यक् अध्ययन किया। इन सभी में मैं राजभाषा हिंदी, प्रशासनिक हिंदी एवं विधि आयोग की हिंदी से सविशेष प्रभावित हुआ। पढ़ाई के दौरान भी प्रयोजनमूलक हिंदी की एक शाखा के रूप में मैंने राजभाषा हिंदी का अध्ययन किया। इस विषय की यथार्थता एवं नावीन्य ने मुझे आकर्षित किया। यह विषय अभि तक छात्रों को भी अपनी और नहीं खींच पाया था क्योंकि यह साहित्य नहीं था यहाँ केवल ज्ञान था और जहाँ केवल ज्ञान होता है वहाँ पाठक अपनी अज्ञानता के कारण निरसता का अनुभव करता है। किंतु मुझे इस विषय को विशेष जानने समझने और शोध-परक दृष्टिकोण से कुछ लिखने की इच्छा हुई। उसी समय मैंने राजभाषा हिंदी एवं विधि पर भविष्य में अनुसंधान-कार्य करने का निर्णय कर लिया था। सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के हिंदी भवन में एम.फिल. के अभ्यास दौरान डॉ. दीप्ति बहन परमार से साक्षात्कार हुआ। उनके समक्ष मैंने पीएच.डी. की उपाधि हेतु अनुसंधान कार्य करने की इच्छा प्रकट की। उन्हों ने मुझे इस हेतु विशेष समय देखकर बुलाया। लम्बे समय तक विचार-विमर्श एवं चिंतन-मनन होते रहें। मैंने डॉ. दीप्ति मेड़म के समक्ष विधि क्षेत्र और राजभाषा हिंदी पर अनुसंधान-कार्य करने की इच्छा प्रकट की। उन्हों ने मेरी ललक एवं योग्यता देखते हुए इस विषय पर अनुसंधान करने की अनुमति प्रदान कर दी। एक लंबे समय तक डॉ. बी.के. कलासवा साहब, डॉ.एस.पी. शर्मा साहब और मेरे निर्देशक डॉ दीप्ति बहन से इस विषय पर चर्चा एवं विमर्श चलता रहा। डॉ. दीप्ति बहन एवं इन गुरुजनों से लम्बे विचार-विमर्श के पश्चात् विधि क्षेत्र में हिंदी विषय पर अनुसंधान-कार्य करने का निर्णय लिया गया।

मेरी गुरुवर्या श्री दीप्ति बहन परमार ने मुझे पीएच.डी. की उपाधि के लिए शोध कार्य हेतु शोध-प्रबंध का जो शीर्षक दीया वह है -

**''विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग''**

**''Hindi as a medium of usage in legal Discipline''**

इस प्रकार डॉ. दीप्ति बहन ने मेरे पीएच.डी. के शोध-प्रबंध के विषय चयन एवं उनके शीर्षक से संबंधित मेरी समस्या का समाधान कर दिया। मैं भी एक विचारशील व्यक्ति हूँ, सद्विचारों एवं श्रेष्ठ विचारों का आराधक एवं पूजक हूँ। इसलिए यह शीर्षक मेरे शोध-प्रबंध का विषय या शीर्षक मात्र न होकर मेरे लिए आराधना के समान है और इस कार्य में मेरे मार्गदर्शिका ऐसे डॉ. दीप्ति बहन मेरे दीप घर के समान हैं। इस बात से मैं प्रसन्न एवं गौरवान्वित हूँ।

## o सामग्री-संकलन के सूत्र :

अनुसंधान कार्य को सफल बनाने के लिए और अन्वेषण-कार्य के निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुसंधान विषय की सामग्री-संकलन का कार्य थोड़ा दुष्कर होता है। अतः यह आवश्यक है कि सामग्री-संकलन सुचारू ढंग से किया जाए। डॉ. दीप्ति बहन ने मुझे मौलिक रूप से कई आवश्यक तथ्यों की जानकारी दी। मैंने वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली का संपर्क किया और मुझे 'प्रयोजन मूलक हिंदी' तथा अन्य प्रशासनिक हिंदी से जुड़ी किताबें प्राप्त हुई। इस के अलावा राजकमल प्रकाशन से संपर्क के कारण भी सहायक संदर्भ साहित्य प्राप्त हुआ। सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के केन्द्रिय ग्रंथालय और विभिन्न प्रकाशनों की मदद से मेरे अनुसंधान कार्य के लिए अध्ययन सामग्री के संकलन की समस्या का समाधान भी हो गया। जसदन के सरकारी ग्रंथालय एवं एम.डी. कहोर कॉलेज के ग्रंथालय का भी

लाभ प्राप्त हुआ । शोधार्थी हृदयपूर्वक इनका ऋण स्वीकार करता है ।

अब मेरे पास अनुसंधान-कार्य के लिए संपूर्ण अध्ययन सामग्री थी । आधारग्रंथ, सहायक-ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ, मौखिक विचार-विमर्श और इन्टरनेट से 'याहू' और 'गूगल' जैसे सर्च एन्जीनों से विस्तृत सामग्री प्राप्त थीं । अब आवश्यकता थी इनके अध्ययन, उन पर तटस्थ मौलिक चिंतन तथा मेरी वैचारिक मौलिकता की । इन दोनों की मदद से अनुसंधित्सु ने अपने शोध-कार्य का प्रारंभ किया । लंबे अंतराल के पश्चात् मेरी मौलिक चेतना, ईश्वर द्वारा दी हुई वैचारिक शक्ति, गुरुजनों के आशीर्वाद परिजनों का स्नेह और गुरुवर्या श्री डॉ. दीप्ति बहन के मार्गदर्शन से आज मैं अनुसंधान-कार्य की सम्पन्नता की और गति कर पाया हूँ ।

## o शोध-कार्य की परिसीमा :

शोध-कार्य अनेक आयामों से गुजरता है । शोध-कार्य के आयाम विस्तृत होते हुए भी उसकी कतिपय सीमाएँ होती हैं । अनुसंधान कार्य की परिसीमा निश्चित करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इससे हमारे अनुसंधान-कार्य का मार्ग स्पष्ट हो जाएगा ।

इस शोध-प्रबंध की भी कतिपय परिसीमाएँ है । फिर भी मेरे अनुसंधान-कार्य का मार्ग स्पष्ट है । प्रस्तुत अनुसंधान कार्य केवल विधि क्षेत्र में हो रहे हिंदी का प्रयोग और उनके अवरोधों के कारणों आदि तक सीमित है । विषय के व्यवस्थित निरूपण हेतु इस शोध-प्रबंध में प्रवर्तमान समय में न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में तथा विधि से जुडे सभी कार्यस्थलों में हो रहे हिंदी प्रयोग और उनकी स्थिति और गति को अनुसंधानात्मक रूप में तथा तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही इस शोध-कार्य की विशेषता एवं सीमा है ।

मेरी गुरुवर्या श्री डॉ. दीप्ति बहन प्रस्तुत विषय की ज्ञाता हैं । उनके मार्गदर्शन एवं अपनी मौलिक चेतना की सहायता से प्रस्तुत विषय के तथ्यों को इस रूप में रख पाया हूँ । इस शोध-प्रबंध के प्रारूप को अधिक विस्तृत रूप में न रखकर उसके स्वाभाविक रूप में ही रखने का प्रयत्न किया है । शोधार्थी अपने इस प्रयत्न में कितना सफल रहा है, इसका निर्णय विद्वतजन ही करेंगे ।

## o पूर्ववर्ती शोध-कार्य :

अनुसंधान-कार्य के लिए सर्वप्रथम प्रस्तुत विषय से संलग्न पूर्ववर्ती शोध-कार्य को जान लेना और उसकी सहायता लेना भी आवश्यक है, क्योंकि उसमें से हमें मार्गदर्शन प्राप्त होता है और हम पुनरावृत्ति-दोष से बच जाते हैं । जब तक मुझे ज्ञात है और जहाँ-तक मैंने इस विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोध-कार्य की तलाश की और उसका अध्ययन किया तब ज्ञात हुआ कि सौराष्ट्र विश्वविद्यालय में अभी तक अर्थात २०११ तक तो कोई कार्य विधि क्षेत्र में हिंदी विषय पर शोधकार्य नहीं हुआ और न हीं कोई ऐसा विषय अभी तक पंजीकृत हुआ है । इन्टरनेट से पता लगाने पर पता चला कि गुजरात एवं गुजरात के बाहर अन्य विश्वविद्यालयों में भी इस विषय पर अभी तक कोई शोधकार्य नहीं हुआ है ।

अतः यह शोध-प्रबंध सौराष्ट्र विश्वविद्यालय का एक लौता शोध-प्रबंध होगा जो ‘विधि क्षेत्र में हिंदी प्रयोग’ पर प्रस्तुत हुआ है । इस प्रबंध की यह एक विशेषता भी मानी जाएगी कि विधि क्षेत्र में हिंदी भाषा का प्रयोग या प्रशासन में हिंदी प्रयोग की भविष्य में होने वाले शोध-प्रबंध की श्रृंखला में यह पहली कड़ी होगी ।

यह विषय अभी तक अनुसंधान के क्षेत्र में अनछुआ रहा है भविष्य में इस विषय पर आगे काम होने की और भी ज्यादा गुंजाईश है । अर्थात् संक्षेप में कहे तो विधि

क्षेत्र से संबंधित बातें और वहाँ प्रयोग होनेवाली भाषा तथा हिंदी भाषा की संभावनाएँ आदि बातों पर आधारित सर्वप्रथम शोध-कार्य माना जाएगा ।

## o प्रबंध सारांश :

मैंने इस शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है । सभी अध्यायों में तथ्यात्मक रूप से विवेचन एवं विश्लेषण कर विधि क्षेत्र में हिंदी को यथार्थ रूप से रखने का यथासंभव प्रयत्न किया है । प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रारूप इस प्रकार है ।

## o प्रथम अध्याय : राजभाषा हिंदी की सांविधानिक स्थिति :

प्रथम अध्याय राजभाषा की सांविधानिक स्थिति से संबंधित है । प्रस्तुत अध्याय में सन् १९४९ से हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकारा गया । जिसमें भारतीय संविधान में हिंदी के संबंध में उल्लिखित प्रावधान एवं संध की भाषा संबंधी धारा ३४३ से ३५१ का विश्लेषण, संविधान की अनुसूचि और उसमें हिंदी का स्थान, अधिनियम १९७६ के आधार पर क्षेत्र विवरण, पत्राचार संबंधि नियम, अंग्रेजी का प्रयोग और अवधि आदि विचारों पर विश्लेषण किया गया है ।

## o द्वितीय अध्याय : राजभाषा हिंदी के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्र :

प्रस्तुत अध्याय में राजभाषा हिंदी के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्रों को ध्यान में रखकर वहाँ प्रयोग में लाई जानेवाली भाषा विशेषता पर विश्लेषण किया गया है । इस अध्याय में तीन बिंदुओं पर दृष्टि केंद्रीत करके विषय को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । केंद्र सरकार के सभी कार्यालय एवं वाणिज्यिक स्थानों पर हिंदी प्रयोग का प्रावधान, प्रवर्तमान स्थिति एवं संभावनाएँ ।

- **विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय :**

| | | |
|---|---|---|
| डाक विभाग | दूरदर्शन | चिकित्सा |
| प्रशासन | दूरभाष | पर्यावरण |
| उड्डयन | आयकर | खेल-कूद |
| आकाशवाणी | लेखाकार | आरोग्य |

आदि क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग संबंधीत चर्चा हुई है ।

- **तृतीय अध्याय : विधि शास्त्र का स्वरूप**

प्रस्तुत अध्याय में विधि के प्राथमिक एवं मूल स्वरूप की चर्चा की गई है । विधि का ढाँचा तथा विधि के अंतर्गत द्दष्टव्य सभी पहलुओं पर विशेष विश्लेषण किया गया है । विधि से संबंधित सभी कार्यालय एवं उन कार्यालयों की कार्यप्रणाली पर विचार किया गया है । विधि का स्वरूप, विधि की गतिविधियाँ, न्यायालयों के कार्य क्षेत्र पर विशद् विवरण किया गया है । इन सब में हिंदी का स्थान प्रयोजन आदि मुद्दों पर विचार करके शोध को अधिक प्रमाणिकता प्रदान करने का प्रयत्न किया है ।

- **चतुर्थ अध्याय : विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम का प्रयोग :**

इस अध्याय में विधि आयोग एवं उनकी शाखा-प्रशाखाओं में प्रयुक्त हिंदी भाषा का विस्तार से विवेचन किया गया है । आयोग की स्थिति तथा आयोग की नियमावली को भी स्पष्ट करने का आशय रहा है । साथ ही विधि की पारिभाषिक शब्दावली, वाक्यांश और मानकीकरण पर विमर्श किया गया है । संविधान द्वारा निर्दिष्ट न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों के भाषा प्रयोग पर भी विचार किया गया है।

**o पंचम अध्याय : विधि क्षेत्र में हिंदी प्रयोग समस्याएँ एवं समाधान :**

इस अध्याय के अंतर्गत तटस्थ दृष्टि से विधि में हिंदी प्रयोग में हो रही समस्याएँ, समस्याओं के प्रकार, समस्या के कारण तथा समाधान नितांत मौलिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। समाधान कारक विषय के अभिगमों का प्रयोग करने का यह विनम्र प्रयास है।

**o उपसंहार :**

प्रबंध के अंत में समग्र शोध-कार्य के सारांश को निष्कर्ष में रूप में प्रस्तुत कर समग्र प्रबंध के अर्क को प्रस्तुत किया गया है। समग्र प्रबंध के मूल-भूत तथ्यों को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत कर उसकी उपादेयता एवं उसकी उपयोगिता को निर्दिष्ट करके उसके महत्त्व को दर्शाया गया है। इस के अंतर्गत उपर्युक्त विमर्श को भी निष्कर्षवत् प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जो विभिन्न साक्ष्यों, विवेचनों और विश्लेषणों पर प्राप्त उपलब्धिओं के सार का प्रमाण है।

## o प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विशेषताएँ :

प्रत्येक अनुसंधान-कार्य का अपना एक महत्त्व होता है, विशेषताएँ होती हैं। शोध-प्रबंध की ये विशेषताएँ ही उन्हें अपनी अलग पहचान प्रदान करती हैं। इस शोध-प्रबंध की भी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनको निम्नांकित रूप में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है। ये विशेषताएँ है -

- प्रस्तुत शोध-प्रबंध शोधार्थी की प्राप्त जानकारी अनुसार नवीनतम एवं मौलिक है।
- हिंदी भाषा के एक नए आयाम को उभार कर जन सामान्य के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है।

- विधि क्षेत्र में प्रयुक्त हिंदी के प्रावधान की प्रासंगिकता को इस शोध-प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।
- इस शोध-प्रबंध में वैचारिक बिंदुओं को तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया हैं ।
- विधि क्षेत्र की वास्तविक परिस्थिति को यहाँ अंकित किया गया है ।
- हिंदी के प्रयोग में आनेवाली उलझने एवं उसके समाधानपरक मार्ग इस शोध-प्रबंध की मुख्य विशेषता के रूप में है ।
- शोधार्थी की जानकारी अनुसार विधि क्षेत्र में हिंदी भाषा के प्रयोग पर यह पहला अनुसंधान कार्य हुआ है ।
- विभिन्न हिंदी के प्रयोगों का अध्ययन कर विधि क्षेत्र को प्रधानता देते हुए उनके सैद्धांतिक तथ्यों की सरलता देने का प्रयास हुआ है ।
- विधि क्षेत्र और प्रयुक्त हिंदी भाषा का यह एक मात्र अनुसंधान होगा तो हिंदी साहित्येत्तर विषय के रूप में प्रस्थापित होगा ।
- प्रस्तुत शोध-प्रबंध को हो सके वहाँ तक जटील और क्लिष्ट भाषा दोष से बचाने का प्रयत्न किया गया है । सरल एवं सुबोध भाषा प्रवाह इस प्रबंध की मौलिकता का प्रमाण है ।

## o प्रस्तुत शोध-प्रबंध का महत्त्व :

संसार की कोई भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान विचार और कार्य महत्त्व रहित नहीं हो सकतें । इस दृष्टि से किसी भी विषय के अनुसंधानपरक अध्ययन का भी अपना महत्त्व होता है । इस शोध-प्रबंध का भी अपना एक विशेष महत्त्व है । इस प्रबंध के महत्त्व को निम्नलिखित मुद्दों में प्रस्तुत करने में सरलता रहेगी ।

- जैसे कि आगे कहा जा चूका है इस शोध-प्रबंध में विधि क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग पर प्रथम बार काम हुआ है । अतः इस क्षेत्र में कार्य करने वाले परवर्ती शोधार्थियों के लिए यह शोध-प्रबंध उपादेय होगा ।
- आज तक प्रयोजनमूलक हिंदी के रूप में हिंदी के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्रों पर तथा उनके कुछ विशिष्ट शब्दावलियों के प्रयोग पर ही साहित्य उपलब्ध था उसमें भी खास करके विधि, बैंक, प्रशासन, आदि जगहों में हिंदी के क्या नियम हैं । किस प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है इन सभी बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त नहीं था अतः इस अनुसंधान में विधि से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी एवं तथ्यों का उल्लेख हुआ है जिससे अध्येता और विधि पर कार्य करने वाले अनुसंधित्सुओं को एक उत्तम कोटी का आधार प्राप्त हो जिससे उस विषय को गहनता से समझ में सरलता हो ।
- इस शोध-प्रबंध से हिंदी को एक नए आयाम से जानने का अभिगम प्राप्त होगा और सामान्य व्यक्ति भी अपने राष्ट्र के कायदे-कानून से परिचित हो पायेगा ।
- मेरा यह शोध-प्रबंध अनुसंधित्सुओं, समीक्षकों, अध्येताओं तथा विचारकों को एक विशेष दृष्टि प्रदान करेगा । यदि उन्हें इस कार्य के माध्यम से तनिक भी उपलब्धि प्राप्त होगी तो मैं अपने इस प्रयास को सार्थक समझूँगा।

## o कृतज्ञताज्ञापन :

मनुष्य जीवसृष्टि एवं प्रकृति के सभी तत्त्वों एवं इश्वर का ऋणी है । उनके प्रति कृतज्ञता साबित करना उसका परम कर्तव्य होना चाहिए । अपने लिए उपकारक एवं सहायक सिद्ध होने वालों के प्रति कृतज्ञता साबित न की जाए, तो वह सबसे बड़ा अपराध कहलायेगा । वैसे कृतज्ञता-ज्ञापन अनुभूतिका विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं, किंतु वास्तव में अभिव्यक्ति ही अनुभूति को निरंतर चैतन्यमय रखती है। इसलिए कृतज्ञता की अभिव्यक्ति आवश्यक है । शोधार्थी की दृष्टि से कृतज्ञता ज्ञापन एक परम कर्तव्य है ।

सर्वप्रथम मैं परब्रह्म परमात्मा, सर्वकाल शाश्वत, नित्य आनंद स्वरूप जगत के कारण अनंत ब्रह्म का आभारी हूँ क्योंकि उनकी इच्छाशक्ति के कारण ही यह कार्य परिणाम प्राप्त कर सका । मैं अपने श्री सत् चित् आनंद स्वरूप तथा मैरे जीवन के आधार गीरनार स्थित गुरुश्रष्ठ दत् महाराज के चरणों में कृतज्ञता ज्ञापित कर इस शोध प्रबंध को उनके चरणों में समर्पित करता हूँ ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय चयन से लेकर साकार एवं मूर्त रूप देने की समग्र प्रक्रिया तक जिनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और जिनके ज्ञान एवं मार्गदर्शक के बिना यह अनुसंधान कार्य संपन्न कर पाना मुश्किल था, ऐसे एक आदर्श गुरुवर्या श्री डॉ. दीप्ति बहन बी. परमार जी (अध्यापक : श्रीमती आर.आर. पटेल महिला महाविद्यालय, राजकोट) के प्रति हृदयपूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आपकी प्रेरणा, मार्गदर्शन, आशीर्वाद, सहयोग तथा दीर्ध दृष्टि से ही ऐसा जटिल एवं कठिन विषय मेरे लिए रूचिकर एवं सरल बन पाया । अपने शोध-प्रबंध की लेखन-यात्रा के समय मेरे मन में उठने वाले प्रश्नों और जिज्ञासाओं का विनय पूर्वक शमन कर सहायक हुए है ।

मेरे इस शोधकार्य को यदि इमारत कही जाए तो इसकी बुनियाद मेरे परम आदरणीय एवं वंदनीय श्री डॉ. बी.के. कलासवा साहब (अध्यक्ष, हिंदी भवन सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) है । मैं डॉ. बी.के. कलासवा साहब के प्रति श्रद्धान्वित हूँ और कृतज्ञता रूपी भावपुष्प गुरुवर्यश्री के चरणों में अर्पित करता हूँ ।

वैसे इस संशोधन रूपी वटवृक्ष के बिज तो मेरे परम श्रद्धेय एवं प्रेरणास्त्रोत गुरुजन श्री डॉ. एस.पी. शर्मा साहब (पूर्व अध्यक्ष, हिंदी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट)ने हि आरोपित किए थें । उन्होंने ही मुझे साहित्य जैसे परंपरागत विषय से हटकर कुछ नए और उपादेय विषय पर काम करने का आग्रह किया था । अतः मैं उनका हृदयपूर्वक आभार प्रगट करता हूँ ।

जब भी मुझे तत्काल एवं आपात कालिन किसी तथ्यों को जानने की आवश्यकता होती थी तब में बिना समय का ध्यान रखे मेरे पूजनीय गुरुवर्य श्री डॉ. शैलेष महेता (रीड़र, हिंदी भवन सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) को फोन कर देता और वह भी बिना किसी विलंब के मुझे मेरी समस्या का समाधान दे देते थें । अतः में उनका आभार प्रकट करता हूँ ।

गुरु एवं शिष्य का संबंध समय की सीमाओं से परे होता हैं केवल अध्ययन काल तक सीमित नहीं होता इसी संदर्भ अंतर्गत मैं सदैव स्मरणीय मेरे गुरुवर्या श्री अमी बहन दवे (श्रीमती जे.जे. कुंडलिया आर्टस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, राजकोट) का ऋण कभी नहीं चूका पाउंगा किंतु शाब्दिक कृतज्ञता पुष्प अर्पित कर रहा हूँ ।

देसाई साहब (योगीजी महाराज कॉलेज, राजकोट), डॉ. आसोदरीया साहब (श्रीमती आर.आर. पटेल महिला कॉलेज, राजकोट), डॉ. गांधी साहब (श्रीमती जे.जे. कुंडलीया आर्टस अेन्ड कोमर्स कॉलेज, राजकोट), डॉ. कपील त्रिवेदी साहब

(बगसरा) आदि सभी गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिनका मार्गदर्शन मुझे समय-समय पर मिलता रहा है।

विशेष रूप से मैं अपने परम मित्र डॉ. हिमांशु जोषी (एस.एन. कणसागरा स्कूल, राजकोट) का आभारी हूँ जो मेरे इस कार्य मैं हर घडी, हर पल, हम कदम रहे हैं। तथा मैं उन सभी मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मदद की है। खास करी मैं अपनी छात्रा को भी इस अवसर पर धन्यवाद देना चाहूँगा। प्रिय चोवटीया भगवती ने मेरे शोध कार्य में आवश्यक सभी प्रकार की सहायता की।

वेदों में कहा गया हैं प्रथम ब्रह्म के रूप में माता एव पिता को मानना चाहिए क्योंकि उनके कारण ही हमें यह मानव पिंड़ प्राप्त हुआ हैं अतः में अपने परम पूजनीय पिता श्री विनायकभाई एवं परम पूजनीय माता श्री जयश्रीबहन के चरणों में कोटी-कोटी वंदन करता हूँ जिनके आशिर्वाद बीना यह शोध-कार्य संभव ही न हो पाता।

शोध-कार्य पूर्ण होने पर सबसे पहला महत्त्वपूर्ण कार्य उसके टंकण का है। इसलिए मैं श्री पिनाकीनभाई लखतरिया (त्रिपदा क्म्प्यूटर) का दिल से आभारी हूँ।

दिनांक :　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　विनीत

स्थल : राजकोट　　　　　　　　　　　　　　　　(भावेश वी. व्यास)

# अनुक्रमणिका



| क्रम | प्रकरण शीर्षक | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| ➥ | प्राक्कथन | iv-xiv |
| ➥ | कृतज्ञताज्ञापन | xvii-xix |
| अध्याय-१ | राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति | 1-61 |
| अध्याय-२ | राजभाषा के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्र | 62-125 |
| अध्याय-३ | विधि शास्त्र का स्वरूप | 126-211 |
| अध्याय-४ | विधि क्षेत्र और राजभाषा हिंदी | 212-253 |
| अध्याय-५ | विधि क्षेत्र में हिंदी प्रयोग : समस्याएँ एवं समाधान | 254-305 |
| ➥ | संदर्भसूची | 306-307 |

# अध्याय–१
# राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति

यह तो निर्विवाद सत्य हैं कि हिंदी भारत की सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और भावात्मक एकता तथा अखंड़ता की अभिव्यक्ति की भाषा हैं। राष्ट्र का राज-काज चलाने के लिए आवश्यकता भी ऐसी भाषा की होती हैं जिस भाषा को अधिक से अधिक लोग जान समझ सकते हो। राजभाषा और राष्ट्रभाषा की दृष्टि से भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करे तो पता चलता हैं कि संस्कृत, पालि, शोरसेनी, प्राकृत और अपभ्रंश हमारी राष्ट्रभाषाएँ थी और इन्हीं भाषाओं का प्रयोग तत्कालीन शासक अपने राजकाज में करते थें। समय के चलते उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रचलन राष्ट्रभाषा के रूप में होने लगा। हिंदी एक मात्र देश को ऐसी भाषा थी जिन्हें ७० प्रतिशत से ज्यादा लोग समझ सकते थें और वह देश की संपर्क भाषा भी थी।

हिंदी एक बहु आयामी भारतीय भाषा थी क्योंकि उसमें संस्कृत, उर्दू और फारसी जैसी अनेकों भाषाओं का समन्वय देखा जा सकता था अत: सरकार को भी हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में रखने में कोई आपत्ति नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अधिकांश नेताओं ने भी इस बात का समर्थन किया कि राजभाषा के रूप में अंग्रेजी के बजाय कोई भारतीय भाषा होनी चाहिए।

किंतु यह मुद्दा इतना सरल नहीं था। राजभाषा के प्रश्न पर काफ़ी विवाद हुआ। कुछ नेता हिंदी के पक्ष में थें तो कुछ विरोध में थें। हिंदी के पक्षधर नेताओं

में जवाहरलाल नहेरु, मौदुरि सत्यनारायण और गांधीजी प्रमुख थें गाँधीजी का तो यहाँ तक कहना था कि- 'भारत की संपर्क भाषा न संस्कृतनिष्ट हिंदी होनी चाहिए, न फारसीनिष्ट उर्दू बल्कि यह हिंदुस्तानी भाषा होनी चाहिए ।'

पहले कुछ नेताओं ने अनिच्छा प्रदर्शित की किंतु बाद में सभी सहमत हो गए। श्री पुरुषोतमदास टंडन, सेठ गोविंददास, एस.वी. कृष्णमूर्ति आदि हिंदी के प्रबल समर्थक थें । हिंदीतर प्रदेशों के बहुत से प्रतिनिधि हिंदी के विरोधी थें ।

संविधान सभा में अंकों के संबंध में भी विचार-विमर्श हुआ । पुरुषोतमदास टंडन, सेठ गोविंददास आदि नागरी अंकों के हिमायती थें तो दूसरी ओर नहेरु जी के दल के लोग रामन अंकों का आग्रह रखते थें ।

६-७ अगस्त, १९४९ को 'राष्ट्रभाषा' व्यवस्था परिषद् का अधिवेशन दिल्ली में हुआ इस अधिवेशन में हिंदीतर भाषी नेताओं ने भी हिंदी का खुलकर समर्थन किया। काफी चर्चा के बाद परिषद् ने सर्व सम्मति से देवनागरी लिपि में लिखि हिंदी को ही देश की राजभाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया । परिषद् के इस प्रस्ताव का संविधान सभा पर बहुत प्रभाव पड़ा । काफ़ी विचार-विमर्श के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय (रोमन) अंकों के साथ देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को ही राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया ।

पश्चात् संविधान में राजभाषा के संबंध में धारा ३४३ से ३५१ तक व्यवस्था की गई जो आगे विस्तार से दिया गया हैं ।

## १.१ संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

यहाँ हिंदी भाषा की संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत संविधान सभा में राजभाषा के मुद्दे पर विमर्श, संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान, राजभाषा आयोग का गठन, संसदीय राजभाषा समिति, राष्ट्रपति का १९६० का आदेश, राजभाषा अधिनियम १९६३, संशोधित राजभाषा अधिनियम तथा इनके प्रकाश में हुए राजभाषा हिंदी के विकास को आलोकित करने का नम्र प्रयास किया गया हैं ।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत पूर्ण स्वतंत्र हुआ । इस से पहले जुलाई, १९४६ में संविधान सभा का चुनाव हुआ था । इस चुनाव की ९ दिसंबर से ११ दिसंबर त्रीदिवसीय बैठकों मैं डॉ. राजेन्द्रप्रसाद सर्वानुमति से संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष के रूप में पदासीन हुए । इस संविधान सभा के आगे कई जटील समस्याएँ थीं जिनमें सबसे अहम राजभाषा संबंधी समस्या थी । भारत की अनेकविध भाषा एवं बोलियों मेंसे संविधान निर्माताओं को एक ऐसी भाषा को संघ की भाषा के लिए चुनना था, जो सभी भारतीयों को मान्य हों और उस भाषा में इतनी क्षमता हों कि वह सभी क्षेत्रों के लिए पूर्ण विचार एवं भाव व्यक्त कर सके तथा समस्त भाषाओं का समुचित प्रतिनिधित्व कर सके । राजभाषा के विषय में संविधान सभा में १२ सीतंबर, १९४९ से १४ सितंबर १९४९ तक विमर्श हुआ । सभाध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भारत के सभी प्रांतों से अपने-अपने प्रांतों का प्रतिनिधित्व करने वाले एवं इस विषय के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधियों को अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया ।

## १.२ भारतीय संविधान की संशोधित अष्म् अनुसूची

भारत में भाषाओं की बहुलता के कारण ही भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में १४ भाषाएँ सम्मिलित की गई । १५ वीं भाषा के रूप में सिंधी को २९ वें संशोधन विधेयक द्वारा संविधान में जोड़ा गया । पीछले कुछ वर्षो में संविधान में अनेकानेक संशोधन किए गए हैं । इन में एक अन्य संशोधन द्वारा तीन अन्य भाषाओं को इस अनुसूची में शामिल किया गया, उन भाषाओं में नेपाली, मणिपुरी और कोंकणी का समावेश होता हैं । अब भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में १८ भाषाएँ हैं । हाल ही में हुए एक संशोधन में चार अन्य भाषाओं को इसमें जोड़ा गया जो इस प्रकार हैं । बोडो, संथाली, मैथिली और डोगरी ।

अत: वर्तमान संविधान को अनुसूची कुछ इस प्रकार से हैं ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| असमिया | कोंकणी | पंजाबी | संस्कृत |
| उड़िया | गुजराती | बंगला | सिंधी |
| उर्दू | तमील | मराठी | हिन्दी |
| कन्नड | तेलुगु | मलयालम | बोडो |
| काश्मीरी | नेपाली | मणिपुरी | संथाली |
| मैथिली | डोगरी । | | |

अब इस सूची में कुल भाषाओं की संख्या बाइस (२२) हो गई है । संविधान सभा में जब भाषा के मुद्दे के लेकर बहस हो रही थी तब १३ सितंबर १९४९ के दैनिक समाचार पत्र ‘हिंदु’ ने लिखा हैं कि- ‘भाषा के प्रश्न पर बहस करने के लिए

जब सभा में बैठक हुई, सभा में उपस्थित सदस्यों की संख्या अभूतपूर्व थी । इस से भाषा के प्रश्न का महत्त्व पता चलता हैं । इस मौके पर उन दलीलों को प्रकाश में लाना उचित रहेगा जो संविधान सभा में हिंदी के पक्ष एवं विपक्ष में दी गई थी ।

अंग्रेजी के चाटुकारों में, एम.गोपाल स्वामी आयंगर, नजरुद्दीन अहमद, एंग्लो इंडियन नेता फ्रेंक एंथनी आदि थें । इनमें भाषा प्रस्ताव मसौदा तैयार करने में गोपाल स्वामी का हाथ था ।

अंग्रेजी का पक्ष लेते हुए कि 'इस भाषा द्वारा हमने अपनी स्वाधीनता प्राप्त की हैं और इस पर अपनी आजादी की इमारत खड़ी की हैं ।' नजरुद्दीन अहमद ने अंग्रेजी को संसार की भाषा बताते हुए इसे देश की राजभाषा बनाने की अपील की । साथ यह भी कहा- 'अंग्रेजी को अनिवार्य भाषा बनाया जाए । यह अनिवार्यता भले ही अरुचिकर हो, पर यह अपरिहार्य हैं ।' अंग्रेजी के विषय में कटुता का दृष्टिकोण छोड़ने के विषय में चर्चा करते हुए फ्रेंक एंथनी ने कहा कि 'देशवासियोने पिछले दो सौ वर्षों में अंग्रेजी भाषा का जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह अंतर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए भारत की महान निधि हैं ।' डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा जहाँ एक ओर संघ की राजभाषा के लिए हिंदी की सिफारीश की वही दूसरी ओर उन्होंने देश के राष्ट्रीय जीवन के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता को न्यायोचित ठहराया । उन्होंने अपनी ओर से कहा- 'इस भाषा के कारण ही हमें अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं । इस के अतिरिक्त देश के राजनीतिक संगठन और उसकी स्वतंत्रता प्राप्ति में अंग्रेजी का बहुत बड़ा हाथ हैं । इस के माध्यम से संसार के अनेक भागों की संस्कृति के द्वार हमारे लिए खुल गए हैं ।

विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की प्राप्ति हमें अंग्रेजी से हुई । यह अंग्रेजी की जानकारी के बिना मुश्किल थी ।'

तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु भी अंग्रेजी का पक्ष लेते हुए उसकी वकालत करने से नहीं चुके । उनके शब्दों में- 'हमें अवश्य अपनी भाषा का प्रयोग करना चाहिए परंतु अंग्रेजी भी भारत की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषा बनी रहनी चाहिए । क्यों? जब अंग्रेजी हिन्दुस्तान में आए उस समय की अपेक्षा संसार में अंग्रेजी का महत्त्व आज कहीं अधिक हैं । निस्संदेह अंग्रेजी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के निकट हैं ।'

कुछ देश और हिन्दी प्रेमी सदस्यों ने अंग्रेजी समर्थकों के कथनों का विरोध किया । जैसे, आयंगर के कथनों का विरोध करते हुए आर.पी.धुलेकर ने कहा कि 'केवल उन्हीं लोगों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया जिन्होंने अंग्रेजी को भुला दिया तथा जिनकी अंग्रेजी के प्रति आस्था नहीं थी और जो यह समझते थें कि अंग्रेजी भाषा एक ऐसी विषैली वस्तु हैं जो राष्ट्र को किसी हद तक हानी पहुँचा सकती हैं ।'

लक्ष्मीनारायण साहू ने- अंग्रेजी के समर्थको की तुलना उस शराबी से कि जो यह सोचता हैं कि नशाबंदी से उसकी मृत्यु हो जाएगी । अलगुराम शास्त्री ने अंग्रेजी का विरोध करते हुए कहा कि 'भारतवासियों ने अंग्रेजी अपनी मर्जी से थोडी ही सीख थी । ब्रिटीश शासन को सस्ते क्लर्क उपलब्ध कराने के प्रयोजन से तैयार की गई योजना के अधीन देशवासियों को यह भाषा मजबूरी में सीखनी पड़ी ।' आगे वे कहते हैं । यह भाषा देश के किसी भी भाग के लोगों की भाषा नहीं है । अंततोगत्वा उपर्युक्त

तमाम बयानों से स्पष्ट होता हैं कि अंग्रेजी भाषा ने अपना अस्तित्त्व इस तरह का बनाया हुआ था कि स्वाधीनता प्राप्ति से भारतीय ब्रिटीश गुलामी से तो मुक्त हो चुके थें, लेकिन आजाद होने पर भी गुलामी की भाषा के प्रति उनका मोह कम होने के बजाय बढ़ता गया था। इसका परिणाम यह हुआ है कि आजादी के पश्चात् भी एक लडाई, वैमनस्य द्वंद्व की लड़ाई चलती रही।

अंग्रेजी के पक्षधारों का विरोध तथा हिंदी का समर्थन करनेवालों की संख्या कम नहीं थी। जब एम.गोपाल स्वामी ने प्रस्ताव पेश किया तो उसके तुरंत बाद सेठ गोविंददास ने कहा कि 'दक्षिण भारत तथा अन्य अहिंदी भाषी क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्यों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने कम से कम एक बात तो स्वीकार कर ली हैं कि देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी ही संघ की भाषा बन सकती है, चाहे इसे राष्ट्रीय भाषा का नाम दें या राजभाषा का।' अंग्रेजी के विरुद्ध हिंदी की दलील पेश करते हुए अलगूराम शास्त्री ने देशज भाषा को स्वराज्य का अविछिन्न अंग मानते हुए काव्यमय ढंग से कहा:-

**भाषा, भेष और भोजन हैं जिसको अपना प्यारा।**

**उस पर कभी नहीं चलने का औरों का चारा**

भारत में ७० प्रतिशत से अधिक लोग हिंदी को लिख-पढ़ जाते हैं, अत: यह ज्यादा से ज्यादा नागरिकों की भाषा हुई। श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी इस बात का समर्थन किया। वी. दास जी तो यहाँ एक कहते हैं कि- ''हमें मालूम हैं कि देश में एक जनभाषा होनी चाहिए और हमें उस के लिए हिंदी का स्वीकारते हैं।'' तत्कालीन

कई सांसदों ने हिंदी को सर्वसम्मति से स्वीकार करने की सिफारिश की । कुछ लोगों ने हिंदी-उर्दू मिश्र हिंदुस्तानी को देश की राजभाषा बनाने की तो माँग की तो कुछ ने बंगला को तथा कुछ ने संस्कृत को यह दर्जा देने की बात उठाई । मौलाना आजाद ने हिंदुस्तानी के पक्ष में एक दमदार दावा रखा । संस्कृत के पक्ष में लक्ष्मीकांत मैत्र तथा कुलाधर छलिया रहे । तो उधर सतीश सामंत ने बंगाली को राजभाषा बनाने की माँग की ।

दरहकिक़त बात यह थी कि सब प्रांतीय नेता अपने-अपने प्रांत की भाषा को राजभाषा बनाने की दोड़ में लगे थें । सब हर कोई चाहता था कि अपने प्रांत की भाषा का चुनाव राजभाषा के लिए हो । मजे की बात तो ये हैं कि वहाँ आए हुए नेता-प्रतिनिधि आदि सभी युँ तो अखंड़ित और भारत एकता की बातें करते-फिरते हैं और भाषा चुनाव की बात आई तो अपनी-अपनी भाषा को राजभाषा करने के लिए लड़ पड़े जो दूसरों को राष्ट्रीयभावना का पाठ सिखाने चला हैं वह खुद भाषावाद के दल-दल में फँसा है । खैर मुद्दा जो भी हो बात सर्वानुमति और लोक हित की होनी चाहिए।

अंत में, संविधान सभा ने १४ सितंबर, १९४९ को देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया । २६ नवंबर, १९४९ को संविधान सभा ने भारतीय संविधान को अंतिम रूप दिया और २६ जनवरी १९५० से यह संविधान भारत में लागू हो गया हैं । इस तरह राष्ट्रीय धरातल पर पहली बार राजभाषा के रूप में हिंदी की संवैधानिक मान्यता मिली । यहीं से राजभाषा हिंदी को संवैधानिक परिप्रेक्ष्य का विकास आरंभ होता हैं ।

## १.३ हिंदी का प्रावधान

भारतीय संवीधान के तीन भागों ५,६ और १७ में राजभाषा संबंधी प्रावधान हैं। भाग-५ के अनुच्छेद-१२० में 'संसद की भाषा' और भाग-६ के अनुच्छेद-२१० में राज्य की विधानसभाओं के बारे में निर्देश हैं। भाग-१७ के चार अध्यायों में राजभाषा संबंधी उपबंध प्रस्तुत किए गए हैं। इन में पहले अध्याय में संघ की भाषा के संबंध में दो अनुच्छेद ३४३ तथा ३४४ हैं। दूसरे अध्याय में तीन अनुच्छेदों- ३४५, ३४६ और ३४७ में राजभाषा के रूप में प्रांतीय भाषाओं के प्रयोग संबंधी निर्देश दिए गए हैं। तीसरे अध्याय में दो अनुच्छेद हैं- ३४८ और ३४९ जिनमें क्रमश: उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के संबंध में निर्देश हैं। चौथे अध्याय में दो अनुच्छेद है- ३५० और ३५१ जिनमें क्रमश: किसी व्यवस्था के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयुक्त भाषा तथा हिंदी भाषा के उत्तरोत्तर विकास के बारे में निर्देश दिए गए हैं। इन अनुच्छेदों को निम्न रूप से विस्तारित किया जा सकता है।

### o अनुच्छेद-३४३

यह अनुच्छेद संघ की राजभाषा के संबंध में हैं। इसमें निम्न लिखित व्यवस्थाएँ की गई है:

१. संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

२. खंड-१ से किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारंभ से १५ वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए

अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग की जाती थी। परंतु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।

३. इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी संसद उक्त -१५ साल की कालावधि पश्चात् विधि द्वारा-

(क) अंग्रेजी भाषा का, अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे की विधि में उल्लिखित हो।

## ० अनुच्छेद-३४४

यह अनुच्छेद राजभाषा के लिए 'संसद का आयोग' एवं 'समिति' से संबंधित हैं। इस अनुच्छेद में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ हैं।

(१) राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारंभ में पाँच वर्ष की समाप्ति पर तथा उस के बाद ऐसे प्रारंभ में दस वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेंगे, जो एक सभापति तथा आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं-१.असमिया, २ उड़िया, ३ उर्दू, ४. कन्नड, ५. कश्मीरी, ६. गुजराती, ७. तमिल, ८. तेलुगू, ९. पंजाबी, १०. बंगला, ११. मराठी, १२. मलयालम, १३, संस्कृत और १४. हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा, जैसे कि राष्ट्रपति नियुक्त

करें तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया का आदेश परिभाषित करेगा ।

**(२) राष्ट्रपति को-**

(क) संघ के राजकीय प्रयोजनों में सब या किसी एक के लिए हिंदी भाषा के लिए उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के लिए,

(ख) संघ के राजकीय प्रयोजनों में सब या किसी एक के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निषेध के,

(ग) अनुच्छेद ३४८ में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप के,

(ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य के बिच संचार की भाषा तथा उसके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग से पृच्छा किए हुए किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करने का प्रयोग का कर्तव्य होगा ।

३. खंड दो के अधीन अपने निवेदन करने में आयोग भारत की औद्योगिक सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोकसेवाओं के बारे में अहिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा ।

४. तीन सदस्यों की एक समिति गठित की जाएगी, जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे, जो कि क्रमश: लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

५. खंड-१ के अधिन गठित आयोग के निवेदनों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करना समिति का कर्तव्य होगा ।

६. अनुच्छेद ३४३ में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति खंड-५ में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश दे सकेंगे ।

- **अनुच्छेद-३४५**

यह अनुच्छेद राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं के प्रावधानों से संबंधित है। इस अनुच्छेद के अनुसार अनुच्छेद ३४६ और ३४७ के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य का विधान-मंड़ल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग के हेतु उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिंदी को अपना सकेगा । परंतु जब तक राज्य का विधान मंड़ल विधि द्वारा इस से अन्य उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए इस संविधान के आरंभ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी ।

## ० अनुच्छेद-३४६

इस अनुच्छेद में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा का प्रावधान रखा गया हैं । इस अनुच्छेद के अनुसार संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य के और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा होगी, परंतु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं तो ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिए वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी ।

## ० अनुच्छेद-३४७

इस अनुच्छेद में किसी राज्य के जनसमुदाय की किसी भाषा के संबंध में राजकीय मान्यता हेतु निर्देश दिए गए हैं । इस अनुच्छेद के अनुसार इस संबंध में माँग की जाने पर यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाए कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता हैं कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए तो राष्ट्रपति निर्देश दे सकेंगे कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जैसा कि वह उल्लिखित करें, राजकीय मान्यता दी जाए ।

## ० अनुच्छेद-३४८

यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा से संबंधित हैं । इस अनुच्छेद में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गई हैं-

१. इस भाग के पूर्ववर्ती उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्य उपबंध न करें, तब तक-

(क) उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियाँ

(ख) जो विधेयक अथवा उन पर प्रस्तावित किए जाने वाले जो संशोधन संसद के प्रत्येक सदन में पुन: स्थापित किए जाएँ, उन सबके प्राधिकृत पाठ;

(ग) अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधान मंड़ल द्वारा पारित किए जाए तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्राख्यायित किए जाएँ उन सबके प्राधिकृत पाठ, और,

(घ) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के अधीन अथवा संसद या राज्यों के विधान-मंड़ल द्वारा निर्मित किसी विधी के अधीन निकाले जाएँ, उन सब के प्राधिकृत पाठ, अंग्रेजी भाषा में होंगे ।

२. खंड-१ के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति से हिंदी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान पर रखने वाले उच्च न्यायालय में की कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा, परंतु इस खंड़ की कोई बात वैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश को लागू न होगी।

३. खंड-१ के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ किसी राज्य के विधान मंडल में पुन: स्थापित विधेयकों का उसके द्‌वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्‌वारा प्रख्यायित आदेशों में अथवा उस उपखंड़ की कंड़िका में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है, वहाँ उस राज्य के राजकीय सूचनापत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद उस खंड के अभिप्रायों के लिए उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

## o अनुच्छेद–३४९

यद अनुच्छेद भाषा संबंधी कुछ विधियों के अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रकिया के संबंध में हैं। इस अनुच्छेद में व्यवस्था की गई हैं कि इस संविधान के प्रारंभ से १५ वर्षों की कालाविधि तक अनुच्छेद ३४८ के खंड-१ में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा के लिए उपबंध करनेवाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्वमंजूरी के बिना न तो पुन: स्थापित और न प्रस्तावित किया जाएगा तथा ऐसी किसी विधेयक के पुन: स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद ३४४ के खंड-१ के अधीन गठित आयोग के निवेदनों पर तथा उस अनुचच्छेद के खंड-४ के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देंगे ।

### o अनुच्छेद–३५०

इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गई हैं कि किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली भाषा में अभ्यावेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा ।

### o अनुच्छेद–३५१

इस अनुच्छेद में हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश दिए गए हैं । इस अनुच्छेद के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्ठम सूची में निर्दिष्ट अन्य भारतीय भाषाओं के रूप शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भंड़ार के लिए मुख्यत: संस्कृत तथा गौणत: वैसी अन्य भाषाओं के शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा ।

## १.४ राजभाषा हिंदी संबंधी अन्य नियम

१४ सीतंबर को सर्वानुमति से हिंदी को राजभाषा का दरज्ञा तो प्राप्त हो गया अपितु भाषा संबंधि समस्या यहाँ पर रूकती नहीं । जो अहिंदीभाषी थें खास कर के दक्षिण प्रांत के लोग उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा कर हिंदी का विरोध किया । तो उधर उनके कार्यान्वय में इच्छित सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी राजभाषा हिंदी के होते हुए भी सारा काम काज अपनी क्षेत्रीय भाषा में ही होता था और सहरों में केवल

अंग्रेजी में होता था। इस समस्या के समाधान के लिए संघ ने राष्ट्रपति की सहायता से समय-समय पर विविध नियम और आदेश लागू किए जो निम्न रूप से हैं।

### १.४.१ हिंदी के प्रयोग संबंधी राष्ट्रपति के आदेश-१९५२ और १९५५

संविधान के अनुच्छेद ३४३ के खंड-१ में यह स्पष्ट हैं कि- ''संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए अंकों का रूप अंतर्राष्ट्रीय होगा' इसी अनुच्छेद के खंड-२ में उल्लिखित हैं कि- ''संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए इससे ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।'' इसी खंड-२ के परंतुक में व्यवस्था की गई हैं कि ''राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।''

इसी परंतुक अधीन राष्ट्रपति ने २७ मई, १९५२ को एक आदेश जारी किया[१०] जिसके द्वारा उन्होंने सभी राज्यों के राज्यपालों, और उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्तियों के अधिपत्रों में संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत किया।

राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद ३४३ के खंड-२ के परंतुक द्वारा प्राप्त अधिकार का प्रयोग दूसरी बार १९५५ में किसी जिसके अनुसार संघ के निम्नलिखित

सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया ।

- जनता के साथ पत्र-व्यवहार ।
- प्रशासनिक रिपोर्टे, सरकारी पत्रिकाएँ तथा संसद में प्रस्तुत की जानेवाली रिपोर्टे ।
- सरकारी संकल्प तथा विधायी अधिनियम,
- जिन राज्य सरकारोंने हिंदी को सरकारी भाषा के रूप में अपना लिया हो, उनके साथ पत्र-व्यहार ।
- संधि पत्र एवं करार
- अन्य देशों की सरकारों तथा उनके दूतों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार ।
- राजनयकि और काउंसली अधिकारियों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, भारत के प्रतिनिधि को जारी किए जाने वाले कागजात ।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए दिए गए सुझावों के प्रकाश में भारत सरकार की एक अंतर्विभागीय बैठक में उपयोगी चर्चा की गई तथा इस बैठक में यह सहमती व्यक्त की गई कि भारत सरकार के सभी मंत्रालयों में कुछ काम हिंदी में भी होना चाहिए । इसी संबंध में गृह मंत्रालय ने ८ दिसंबर, १९५५ को एक विज्ञप्ति जारी करके सभी मंत्रालयों को निम्नलिखित सुझाव दिए :

- जनता से प्राप्त हिंदी पत्रों का उत्तर यथा संभव हिंदी में ही दिया जाए। पत्र की भाषा सरल होनी चाहिए ।
- प्रशासनिक रिपोर्टों, सरकारी पत्रिकाओं, संसद को प्रस्तुत की जानेवाली रिपोर्टों आदि को यथासंभव अंग्रेजी और हिंदी दोनों में प्रकाशित किया जाए ।
- सरकारी संकल्पों, विद्यार्थी अधिनियमों आदि को यथा संभव अंग्रेजी और हिंदी में जारी किया जाए लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिख दिया जाए कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा ।

(इस उपर्युक्त विधान से अंग्रेजी का लगाव स्पष्ट उभर रहा हैं क्यों भई अंग्रेजी का पाठ ही प्रामाणिक माना जाए हिंदी का क्यों नहीं ।)

- जिन राज्य सरकारों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया है, उनके साथ पत्र व्यवहार में अनुवाद भी भेजा जाए ताकि संवैधानिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े ।

### १.४.२ राजभाषा आयोग-१९५५

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-३४४ के अनुसार संविधान लागू होने के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति को एक राजभाषा आयोग नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था। इसी अधिकार का प्रयोग करते हुए ७ जून, १९५५ को मुंबई के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बाल गंगाधर खैर की अध्यक्षता में एक राजभाषा आयोग का गठन किया गया । इस आयोग में विभिन्न राज्यों के २० प्रतिनिधियों को रखा गया । इसकी पहली बैठक

१५ जुलाई, १९५५ को हुई । इस आयोग ने अनेक सरकारी, गैर सरकारी व्यक्तियों, प्रतिनिधियों तथा संस्थाओं से मुलाकात की । आयोग ने अपना एक विस्तृत प्रतिवेदन जुलाई, १९५६ में राष्ट्रपपति को प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में आयोग ने राजभाषा के संबध में निम्नलिखित सुझाव दिए :

१. भारत के संपूर्ण जनतांत्रिक को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय स्तर पर सामूहिक माध्यम के रूप में अंग्रेजी को स्वीकार करना संभव नहीं एवं भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रम के प्रश्न पर विचार किया जा सकता हैं । विज्ञान एवं अनुसंधान के क्षेत्रों तथा अंतर्राष्ट्रीय मामलों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक हैं परंतु शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक जीवन एवं दैनिक कार्यकलाप में विदेशी भाषा का व्यवहार उचित नहीं हैं ।

२. पद्यपि साहित्यिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ समृद्ध हैं; फिर भी प्रायः लोगों द्वारा बोली और समझी जाने के कारण हिंदी भाषा एक दूसरे के बीच व्यवहार के लिए सेतु का काम करती हैं ।

३. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में स्पष्टता, अर्थ की शुद्धता, सरलता, पांडित्यपूर्ण भाषा का त्याग तथा अधिकाधिक देशज और लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए । अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार थोड़े फेरबदल के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए । पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की गति तीव्र होनी चाहिए ।

४. १४ वर्ष की उम्र तक प्रत्येक छात्र को हिंदी का उचित ज्ञान प्राप्त कराया जाए ताकि प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक जीवन की गतिविधियों और सरकार की कार्यवाहियों को समझ सके ।

५. सारे देश में माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिंदी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए । हिंदी भाषा क्षेत्र के छात्रों के लिए दूसरी दक्षिण भारतीय भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य किया जाना आयोग को मान्य नहीं हैं ।

६. शिक्षा के माध्यम के रूप में विषय और शिक्षण की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए सभी विश्वविद्यालय आपस में परामर्श करके निर्णय करें की भिन्न-भिन्न अभ्यासक्रमों के लिए किस माध्यम को स्वीकारा जाए। फिर भी, सभी विश्वविद्यालयों को चाहिए कि हिंदी माध्यम में जो विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठना चाहें, उनके लिए वे उचित प्रबंध करें ।

७. वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षण संस्थाओं में सभी विद्यार्थी एक भाषिक वर्ग के हो तो उसी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाए और यदि विभिन्न भाषाओं के हों तो हिंदी भाषा को ही सामान्य माध्यम के रूप में अपनाया जाए ।

८. प्रशासनिक तंत्र से संबंधित सरकारी प्रकाशनों के हिंदी-अनुवाद की भाषा में अधिकाधिक एकरूपता रखी जाए और देख-रेख संबंधी सारा कार्य केंद्रीय सरकार के किसी एक विभाग को सौप दिया जाए ।

९. प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए हिंदी का निश्चित अवधि में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियम लागू किए जाएँ और ऐसा न करने पर उन व्यक्तियों को दंड़ित किया जाए तथा निर्धारित स्तर से अधिक ज्ञान प्राप्त करने पर कर्मचारियों को पुरस्कार आदि देकर प्रोत्साहित किया जाए ।

१०. जनता से सीधा संपर्क रखने वाले विभागों और संगठनों के आंतरिक कार्य में हिंदी और जनता से व्यवहार हेतु क्षेत्रीय भाषा काम में लाई जाए । ऐसे विभागों में भर्ती के लिए क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के साथ-साथ हिंदी की योग्यता का स्तर भी निर्धारित किया जाए और बाद में विभागीय प्रशिक्षण द्वारा हिंदी की योग्यता बढ़ाई जाए ।

११. भारत सरकार के सांविधानिक प्रकाशन अधिक से अधिक हिंदी भाषा में प्रकाशित किए जाऐं और हिंदी की प्रगति के लिए सरकार द्वारा अधिकाधिक प्रयत्न किए जाऐं ।

१२. राज्य और संघ सरकार के अधिकारीयों के लिए किसी स्तर का हिंदी का ज्ञान अनिवार्य किया जाए और उसके लिए उन्हें अधिकाधिक पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाए ।

१३. संसद और विधानमंडलों की कार्यवाहियों की सफलता की दृष्टि से हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं दोनों का व्यवहार होना चाहिए और विशिष्ट परिस्थितियों में अंग्रेजी को भी मान्यता दी जानी चाहिए । स्वीकृत

सरकारी कानून हिंदी में ही होने चाहिए परंतु जनता की सुविधा के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में उनके अनुवाद प्रकाशित किए जाने चाहिए । और माध्यम पूर्ण रूप से बदल जाने पर देश के संपूर्ण सांविधानिक ग्रंथ हिंदी में ही उपलब्ध होने चाहिए ।

१४. देश में न्याय देश की अपनी ही भाषा में होना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक हैं कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की समस्त कार्यवाहियों तथा अभिलेखों, निर्णयों और आदेशों के आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद भी साथ में रखे जाएँ । उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों को अंग्रेजी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं में भी निर्णय देने का अधिकार होना चाहिए । इस प्रकार वकीलों और अधिवक्ताओं को भी अंग्रेजी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं को काम में लाने की छूट होनी चाहिए । विशेष न्यायालयों के निर्णय यदि एक क्षेत्र तक सीमित न हो तो वे निर्णय और आदेश मूल रूप में हिंदी में ही लिखे जाने चाहिए ।

१५. प्रतियोगिता परीक्षाओं का माध्यम भी सब के लिए समान होना चाहिए राष्ट्रभाषा, एवं अनिवार्य भाषा हिंदी के रूप में । अखिल भारतीय एवं केंद्रीय सेवाओं हेतु कर्मचारियों के लिए हिंदी की योग्यता रखना आवश्यक किया जाए । अत: परीक्षाओं में हिंदी का अनिवार्य प्रश्न-पत्र रखा जाए परंतु अहिंदी भाषी विद्यार्थियों की सुविधाओं की दृष्टि से उसका स्तर अति साधारण रहे । हिंदी भाषी विद्यार्थीओं से इतर भाषाओं से संबंधित

विषयों पर वैकल्पिक प्रश्न पुछे जाने के लिए एक प्रश्नपत्र रखा जाए जिससे समानता बनी रहे । अंग्रेजी माध्यम के साथ-साथ वैकल्पिक रूप से हिंदी को भी माध्यम के रूप में अपनाया जाए और जल्दी से जल्दी ऐसा वातावरण बनाया जाए कि अंग्रेजी इन प्रतियोगिता परिक्षाओं का माध्यम न रहे । साथ ही, राज्यों के लोकसेवा आयोगों को भी चाहिए कि वे इन परिक्षाओं में हिंदी भाषी उम्मीदवारों को भी प्रोत्साहन दें ।

१६. हिंदी के विकास एवं प्रचार की दृष्टि से सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए । सरकार स्वैच्छिक हिंदी संस्थानों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए भी आवश्यक कदम उठाए तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करें ।

१७. भारत की सब भाषाओं के लिए यदि एक लिपि रखने का प्रश्न हो तो इसके लिए देवनागरी लिपि सर्वथा श्रेष्ठ होगी । रोमन लिपि को स्विकार करना मुर्खता होगी । हाँ देवनागरी लिपि में भी कई क्षतियाँ हैं यदि सरकार इन पर ध्यान देकर कार्य करे और लिपि में निहित क्षतियों को सुधार कर एक वैज्ञानिक ढ़ब की लिपि तैया करे तो समस्या का निवारण हो सकता हैं ।

१८. हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली तथा अभिव्यक्ती के मानकीकरण के लिए सरकार को चाहिए की वह भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों

को इस दृष्टि से सुविधाएँ प्रदान करें और इसके लिए हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार देने वाली संख्याओं के निर्माण करने का प्रयत्न करें।

१९. राजभाषा के सफल उन्नयन एवं विकास तथा उसके उचित अधीक्षण का उत्तरदायित्व विशेष रूप से केंद्र सरकार की एक प्रशासकीय इकाई पर डालना चाहिए। संघभाषा हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी की यदि स्थापना की जाए तो फायदेमंद हो सकता हैं।

२०. भारत के भाषागत एवं सांस्कृतिक ढाँचे में गहरी समानता लाने तथा भारत की विभिन्न भाषाओं के बिच की दूरी कम करने के लिए बहुभाषिकता के सिद्धांत को प्रोत्साहित किया जाए तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा पद्धति में समुचित व्यवस्था की जाए।

इस प्रकार से राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन में राजभाषा हिंदी के विकास के महत्त्वपूर्ण सूत्र छीपे हुए थें। यह प्रतिवेदन अंग्रेजी के हितचिंतकों को पसंद ना आया तथा विद्रोह का माहोल खडा हो गया। आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया गया तथा इस पर विचार करने के लिए एक संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया। इस समिति में २० लोकसभा के और १० राज्यसभा के सदस्य रखे गए।

## १.४.३ संसदीय राजभाषा समिति- १९५७

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-३४४ के खंड-४ और ५ में की गई व्यवस्थाओं के अनुसार राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति का गठन किया गया । इसमें लोकसभा के २० तथा राज्यसभा के १० सदस्य रखे गए । इस प्रकार समिति में कुल तीस सदस्यो थें । समिति की पहली बेठक समिति के अध्यक्ष, गोविंद वल्लभ पंत की अध्यक्षता में १६ नवंबर, १९५७ को हुई। समिति की कुल २६ बैठकें हुईं । समिति ने ८ फरवरी, १९५९ को अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत किया । समिति के प्रमुख सुझाव निम्नानुसार थे:

१. सरकारी पदों और नौकरियों के लिए इस समय जो अंग्रेजी की शिक्षा का स्तर निर्धारित है, संक्रमण की अवस्था में हिंदी ज्ञान का स्तर कुछ कम भी हो तो चल सकता हैं ।

२. निर्धारित समय में कर्मचारियों द्वारा निर्धारित हिंदी का ज्ञान प्राप्त न करने पर उनको दंड़ित किया जाना उचित नहीं हैं ।

३. संघ सरकार के प्रशासन में जहाँ भारतीय पारिभाषिक शब्दावली के विकास की आवश्यकता न हो तथा विदेशों से संबंध बनाए रखने के लिए अनिश्चित काल तक अंग्रेजी का प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

४. ४५ वर्ष से उपर की आयु वाले सरकारी कर्मचारियों को हिंदी के प्रशिक्षण से छूट दी जानी चाहिए ।

(यहाँ पर भी यह विधान ठिक नहीं लगतां ४५ वर्ष के उपर की आयुवाले लोगों

को भला क्युं छुट दी जानी चाहिए, मैं तो कहता हूं ५० वर्ष की आयुवाले व्यक्ति को भी अनिवार्य रूप से हिंदी का प्रशिक्षण मिलना चाहिए । उस से दो फायदे हैं, पहला तो यह की व्यक्ति को अपने राष्ट्र की राजभाषा का ज्ञान तो होना हि चाहिए, वह प्राप्त होगा और कर्मचारियों को एक नई भाषा मुफ्त में सीखने को मिल जाएगी और वह अपना कर्तव्य अधिक दक्षता से कर पाएगा ।)

५. संघ को सरकार द्‌वारा ऐसी योजना बनाई जाए, जिससे हिंदी का राजभाषा के रूप में अधिकाधिक प्रयोग एवं विकास किया जा सके ।

६. सरकार एवं मंत्रालयों के प्रकाशनों में रोमन अंको के साथ-साथ देवनागरी अंकों को प्रयुक्त करने के बारे में संघ सरकार की मूलभूत समान नीति होनी चाहिए ।

७. संसद तथा राज्यों के विधान मंडलों में पारित होने वाले विधेयकों की भाषा तथा जब तक अंग्रेजी का स्थान हिंदी न ले ले, तब तक संसद में विधि निर्माण का कार्य अंग्रेजी में होता रहे । कानूनों के हिंदी प्राधिकृत अनुवाद दिए जाएँ तथा संभव हो तो विभिन्न राज्यों की राजभाषाओं में भी उनके अनुवाद की व्यवस्था की जाए ।

८. राज्यों की विधान सभाएँ अपने राज्यों की राजसभाओं में विधि निर्माण कार्य कर सकती हैं, परंतु संविधान के अनुच्छेद ३४८ के अनुसार कानूनों का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में प्रकाशित करना आवश्यक हैं । यदि कानून का मूल पाठ अन्य भाषा में हैं तो साथ में हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत किया जा सकता हैं ।

९. राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालयों में राज्य की राजभाषा अथवा हिंदी का प्रयोग किया जा सकता है, परंतु उनके द्‌वारा किए जाने वाले निर्णयों, अभिलेखों और आदेशों को अंग्रेजी में ही होना चाहिए तथा दूसरी भाषाओं में दिए जानेवाले निर्णयों, डिक्रीयों एवं आदेशों का अंग्रेजी अनुवाद साथ में रहना चाहिए ।

१०. हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं का ज्ञान न्यायधीशों के लिए उपयुक्त हो सकता है, परंतु उनके लिए भाषा संबंधी परीक्षाएँ निर्धारित करना उचित नहीं हैं ।

११. सांविधानीक ग्रंथों के अनुवाद तथा कानूनी पारिभाषिक शब्दावली आदि के निर्माण की उचित योजना बनाने तथा संपूर्ण कार्य की व्यवस्था करने के लिए भारत के विभिन्न भाषाभाषी विधि-विशारदों के स्थायी आयोग की उच्च स्तरीय समिति का निर्माण किया जाना चाहिए ।

१२. अखिल भारतीय तथा उच्चस्तरीय केंद्रीय सेवाओं की परीक्षाओं के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को चलने दिया जाए तथा कुछ समय बाद हिंदी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाए । साथ में हिंदी और अंग्रेजी दोनों को वैकल्पिक माध्यम के रूप में चलने दिया जाए । इन परीक्षाओं में दो भाषाओं के प्रश्नपत्र (एक तो हिंदी का और दूसरा अन्य आधुनिक भारतीय भाषा का जो विद्यार्थी की इच्छा पर निर्भर करता हैं ।) अनिवार्य रूप से रहे । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के

प्रशासन की भाषा रहने तक अंग्रेजी का एक प्रश्नपत्र भी अनिवार्य होना चाहिए । क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकृत करने के पक्ष पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

१३. सन् १९६५ तक भारत सरकार के राजकाज की प्रधान भाषा अंग्रेजी रहे और इस अवधि में हिंदी गौण राजभाषा रहें (यदि चाहे तो हिंदी को मुख्य राजभाषा एवं अंग्रेजी को गौण राजभाषा में रखा जा सकता था।) १९६५ के बाद हिंदी प्रधान राजभाषा रहे तथा अंग्रेजी को सह राजभाषा का स्थान दिया जाए। संसद अपने अधिनियम द्‌वारा अंग्रेजी के प्रयोग के लिए जो सीमा एवं क्षेत्र निर्धारित करेगी, तब तक आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग जारी रहे ।

इस तरह से संसदीय राजभाषा समिति ने अपने सुझावों में राजभाषा आयोग के निवेदनों को पूर्णत: ओजल कर दिया। संसदीय राजभाषा समिति के इन सुझावों से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए पुरुषोत्तम दास टंड़न तथा सेठ गोविंददास ने कहा कि सरकार ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाए हैं। समिति के एक सदस्य फ्रेंक एंथनी ने हिंदी के विरुद्‌ध अंग्रेजी का जम कर समर्थन किया। यूँ माने की उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया की अंग्रेजी को भारतीय संविधान की अष्ठम् अनुसूची में जोड़ दिया जाए तभी इस देश का उद्धार हो सकता हैं ।

संसदीय राजभाषा समिति ने अपने प्रतिवेदन में राजभाषा आयोग के अधिकांश

निवेदनों को स्वीकार करने की राय राष्ट्रपति को दी । अत: राष्ट्रपति ने २७ अप्रैल, १९६० को संघ की राजभाषा के संबंध में एक आदेश जारी किया ।

### १.४.४ संघ की राजभाषा से संबंधित राष्ट्रपति का आदेश– १९६०

संसदीय राजभाषा समिति की रिपोर्ट पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४४ के खंड-६ द्वारा प्रदत शक्तियों का प्रयोग करते हुए तथा राजभाषा आयोग के निवेदनों पर समिति द्वारा दी गई राय को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति ने संघ की राजभाषा के संबंध में २७ अप्रैल, १९६० को एक आदेश जारी किया । इस आदेश द्वारा निम्नलिखित निर्देश दिए गएँ :

1. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती के लिए परीक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी बनी रहे और कुछ समय बाद हिंदी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए । (अब यहाँ अंग्रेजी का मोह क्यों नहीं छूटता यह समझ में नहीं आ रहा यदि ऐसा मान लिया जाए कि दक्षीण भारत के लोगों को हिंदी नहीं आती अत: अंग्रेजी को रखा जाए, किंतु समस्या तो ज्यों कि त्यों रही उत्तर भारत के लोगों अंग्रेजी में दिक्कत होती हैं, तो जब दोनों भाषाओं को मुख्य रखने में समान समस्या हैं तो उचित यही रहेगा कि इस मौके पे भारतीय होने के नाते हिंदी भाषा का ही मुख्य एवं अंग्रेजी को गौण रखा जाए ।)

   बाद में किसी प्रकार की नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग किया जाए ।

२. निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण एवं समन्वय का प्रयत्न किया जाए तथा इसके लिए शिक्षा मंत्रालय आवश्यक व्यवस्था करते हुए एक आयोग का गठन करें ।

३. समस्त प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद किया जाए तथा उसमें एकरूपता का ध्यान रखा जाए । असांविधिक अनुवाद शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया जाए और सांविधिक अनुवाद विधि मंत्रालय करे ।

४. केंद्रीय सरकारी विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आंतरिक कार्यों के लिए हिंदी का प्रयोग करें और जनता के व्यवहार में प्रादेशिक भाषा का प्रयोग किया जाए कर्मचारियों की भर्ती तथा विकेंद्रीकरण आदि में इस जरूरत का ध्यान रखा जाए ।

५. संसदीय अधिनियम एवं विधेयक अंग्रेजी में बनते रहें किंतु उनका प्राधिकृत हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए । यह विधि मंत्रालय का उत्तरदायित्व हैं ।

६. प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही भाषाएँ परिक्षा के माध्यम रहें ।

७. उच्चतम न्यायालय की भाषा अंतत: हिंदी होनी चाहिए । उच्च न्यायालय के नियमों, आज्ञप्तिओं और आदेशों के प्रयोजनों के लिए हिंदी और अन्य राज्यों की राजभाषाओं का वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जा

सकेगा । इस संबंध में विधि मंत्रालय को आवश्यक कार्रवाई करनी चाहिए ।

८. एक मानक विधि कोश बनाने, हिंदी में कानून बनाने और कानूनी शब्दावली के निर्माण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग गठित किया जाए।

९. शिक्षा मंत्रालय हिंदी प्रचार की व्यवस्था करे और इस कार्य में प्रवृत्त गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता करें ।

१०. तृतीय श्रेणी से नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थानों के कर्मचारियों और कार्यप्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य बना दिया जाए, जिनकी आयु १ जनवरी १९६१ को ४५ वर्ष से कम हो । गृह मंत्रालय टंककों, आशुलिपिकों कों हिंदी टंकण और आशुलिपि का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करे ।

राष्ट्रपति के २७ अप्रैल, १९६० के आदेश के पैरा १४ में यह व्यवस्था की गई हैं कि गृह मंत्रालय एक ऐसी योजना तैयार करने और उसे कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे जो संघ के प्रशासन में हिंदी का प्रयोग सरल बनाने के प्रारंभिक उपायों से संबंधित हो । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए गृह मंत्रालय ने संबंधित मंत्रालयों से विचार विमर्श करने के बाद एक कार्यक्रम तैयार किया । इस

कार्यक्रम पर मंत्रिमंडल का अनुमोदन मिल जाने के पश्चात् २१ मार्च, १९६१ को गृह मंत्रालय ने एक कार्यालय ज्ञापन के द्वारा इस कार्यक्रम को जारी किया। कार्यक्रम में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण, अहिंदी भाषी कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण देना, नियमों, मैन्युअलों आदि के अनुवाद का काम, जिसे संघ के सरकारी कामकाज के लिए हिंदी को लागू करने से पूर्व आवश्यक समझा जा सकता है, संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रगामी प्रयोग में सहायता करने के लिए कुछ प्रारंभिक उपायों को पूरा करने के लिए अंतिम तारीखें आदि भी निश्चित की गई। इसके अलावा सभी मंत्रालयों से निम्न लिखित प्रबंध करने का अनुरोध किया गया था:-

१. सरकारी संकल्प अब हिंदी में भी जारी किया जाएगा।

२. अन्य सरकारी गैर सरकारी संस्थानों से आए हिंदी पत्रों का उत्तर हिंदी में ही दिया जाएगा।

३. फोर्मस, रजिस्टरों और स्लीप आदि में अंग्रेजी के साथ साथ हिंदी का प्रयोग भी किया जाएगा।

४. जिन चुने हुए अनुभागों में अधिकतर कर्मचारी हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखते हैं, उनमें फाइलों पर टिप्पणी में हिंदी के प्रयोग की अनुमति देना, तथा

५. भारत के राजपत्र के कुछ भागों को हिंदी में भी प्रकाशित करना।

इसके साथ ही, कुछ अन्य प्रयोजनों हेतु हिंदी का प्रयोग करने के लिए प्रशासनिक आदेश जारी किए गए जो इस प्रकार से हैं:

१. सरकारी आयोजनों के लिए निमंत्रण पत्र आदि हिंदी में जारी करना,

२. हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों में संबंधित परिपत्र, आदेश आदि और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के साथ पत्र-व्यवहार,

३. भारत सरकार और उन राज्यों के बीच पत्र-व्यवहार के लिए हिंदी का प्रयोग किया जाना, जिन्होंने राजभाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दी हैं । (गुजरातने राजभाषा के रूप में हिंदी का स्वीकार किया है।)

४. लैटर हेड (पेड), लिफाफे, कार्यालय की मुद्राओं आदि के लिए,

५. हिंदी भाषी क्षेत्रों में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को सुचना पत्र जारी करना,

६. भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालय के तार के पतों का पंजीयन ।

७. नए सरकारी संगठनों का नाम रखना,

८. हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित स्थानीय अथवा शाखा कार्यालयों द्वारा केंद्रीय मंत्रालयों से प्राप्त पत्रों के उत्तर,

९. कर्मचारियों के कल्याण संबंधी कार्यक्रम के सामान्य आदेश तथा परिपत्र जारी करना,

१०. हिंदी में आए हुओ पत्रों को फाईल करके अलग से रखना और जब आवश्यकता हो तो उसी संस्था या कार्यालय से हिंदी में बात करना ।

११. जो परिपत्र स्थायी आदेश के रूपमें हो तथा प्रशासनिक अनुदेशों के संबंध में हो अथवा जो कार्यविधि साहित्य के रूप में हों, उनका हिंदी

अनुवाद साथ-साथ जारी करना ।

१२. स्थानीय कार्यालयों और व्यक्तियों को भेजे जाने वाले लिफाफों पर एड्रेस लिखना ।

## १.४.५ राजभाषा अधिनियम, १९६३

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४३ के खंड-२ में यह व्यवस्था हैं कि संविधान लागू होने के १५ साल तक की अवधी तक राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा । अर्थात् भारतीय संविधान के लागू होने के पंद्रह वर्ष बाद यानी २६ जनवरी, १९६५ से समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का प्रयोग होना चाहिए था, लेकिन इस व्यवस्था को लागू न होने देने तथा १९६५ के बाद भी अंग्रेजी के प्रयोग को संघ के समस्त सरकारी प्रयोजनों के लिए जारी रखने के उद्देश्य से राजभाषा अधिनियम, १९६३, संविधान के अनुच्छेद ३४३ के खंड-३ के अधीन बनाया गया । इस अधिनियम से संबंधित विधेयक १३ अप्रैल, १९६३ को लोकसभा में तथा ३ मई, १९६३ की राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया । यह अधिनियम लोकसभा में २५ अप्रैल, १९६३ की तथा राज्यसभा में ७ मई, १९६३ को पारित हुआ । इस के बाद इसे राष्ट्रपति को स्वीकृति मिलने पर यह राजभाषा अधिनियम, १९६३ के रूप में लागू हुआ । इस अधिनियम का मूलपाठ इस प्रकार है।

o **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ :**

१. यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, १९६३ कहा जाएगा ।

२. अधिनियम की धारा-३, २६ जनवरी १९६५ के दिन से लागू होगी और इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तारीख के प्रवृत होंगे, जिसे केंद्र

सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे तथा इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेगी ।

- **परिभाषाएँ :**

इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो

१. नियत दिन से धारा-३ के संबंध में जनवरी १९६५ का २६ वां दिन अभिप्रेत हैं और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के संबंध में वह दिन अभिप्रेत हैं जिस दिन को वह उपबंध प्रवृत्त होता हैं ।

२. यहाँ जब हिंदी की बात हो रही हैं तो उसका मतलब- जिसकी लिपि देवनागरी हैं वह हिंदी।

- **संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए संसद में प्रयोगार्थ अंग्रेजी भाषा का बना रहना ।**

१. संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा नियत दिन से ही

- संघ के उन राजकीय प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जानी थी, तथा
- संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी । परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया हैं, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए

अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी। परंतु यह और कि जहाँ किसी ऐसे राज्य, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अनाया है, के बीच पत्राचार जैसे प्रयोजनों के लिए हिंदी को प्रयोग में लाया जाता है, वहाँ हिंदी में ऐसे पत्रादि के साथ उनका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा। परंतु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के, उसकी सहमति से पत्रादि के प्रयोजन के लिए हिंदी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और किसी ऐसे मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग में कोई बाधा नहीं हैं।

२. उपधारा (१) में निर्दिष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहाँ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी या अंग्रेजी भाषा-

- केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे किसी ऐसे संस्थान के बीच;
- केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के बीच;
- केन्द्रीय सरकार के स्वामीत्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी

या कार्यालय के बीच, प्रयोग में लाई जाती है, वहाँ उस तारीख तक जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग कार्यालय या निगम या कंपनी का कर्मचारीगण हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद यथास्थिति, अंग्रेजी या हिंदी में दिया जाएगा ।

३. उपधारा १ में निर्दिष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिंदी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही-

- संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेसविज्ञाप्तिं के लिए, जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी के कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं।
- संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज-पत्रों के लिए ।

- केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम था कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए प्रयोग में लाई जाएगी ।

४. उपधारा १,२ या ३ के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना केंद्रीय सरकार धारा ८ के आधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए, जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग अनुभाग कार्यालय के कार्य हेतु प्रयोग में लाया जाना है, और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टरूप से यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिंदी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं, वे प्रभावीरूप से अपना काम कर सकें और यह भी केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उनका कोई अहित नहीं होगा।

५. उपखंड-१ खंड (क) के उपबंध और उपधारा-२, उपधारा-३ और उपधारा-४ के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधानमंड़लों द्वारा, जिन्होंने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अस्वीकार किया, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के प्रत्येक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ।

## १.४.६ राजभाषा (संशोधित) अधिनियम, १९६७ :

राजभाषा (संशोधित) विधेयक, १९६७ लोकसभा में २७ नवंबर, १९६७ को प्रस्तुत किया गया तथा १६ दिसंबर, १९६७ को लोकसभा ने उसे पारित कर दिया। लोकसभा द्वारा संशोधनों सहित पारित इस विधेयक को राज्यसभा ने २२ दिसंबर, १९६७ को पारित कर दिया। ८ जनवरी, १९६८ को इसे राष्ट्रपति ने इसे अनुमोदन दे दिया। इसका विवरण निम्नानुसार हैं।

o **संक्षिप्त नाम:** यह अधिनियम राजभाषा संशोधित आधिनियम, १९६७ कहा जाएगा।

(१) राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन, जिसके अनुसार संविधान के लागू होने के १५ वर्ष बाद, अर्थात १९६५ के बाद भी संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए तथा संसद के प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा पहले की तरह प्रयोग में लाई जाती रहेगी। परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा नहीं स्वीकारा है, के बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी को प्रयोग में लाए जाने पर हिंदी के ऐसे पत्रादि के साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद भेजना होगा। परंतु यह और कि जहाँ किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रयोग में लाया जाता है, वहाँ, हिंदी में ऐसे पत्रादि के साथ साथ उसका अंग्रेजी-

अनुवाद भेजा जाएगा । परंतु यह भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया हैं या किसी अन्य के साथ उसकी सहमती से पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा ।

(२) उपधारा (१) में से किसी बात के होते हुए भी, जहाँ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी या अंग्रेजी भाषा;

(i) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या कार्यालय के बीच;

(ii) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी या उसके कार्यालय के बीच;

(iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी के बीच प्रयोग में लाई जाती है, वहाँ इस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या निगम या कंपनी का कर्मचारी वृंद हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद यथास्थिति अंग्रेजी या हिंदी में भी दिया जाएगा ।

(३) उपधारा (२) में से किसी बात के होते हुए भी हिंदी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही,

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं,

(ii) संसद के किसी सदन या उनके समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज-पत्रों के लिए;

(iii) केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं, निविदा-प्रारूपों के लिए प्रयोग में लाई जाएगी ।

(४) उपधारा (१), (२) या (३) के उपबंधों पर प्रभाव डाले बिना केंद्रीय सरकार धारा (८) के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उस भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए मंत्रालय, विभाग,

अनुभाग या कार्यालयों में प्रयोग में लाया जाना हैं और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे तथा जनसाधारण के हितों का ध्यान रखा जाएगा तथा इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ में कार्यरत हैं तथा जो या तो हिंदी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं, वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह केवल इस आधार पर कि वे दोनों भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसे कोई नुकसान न होगा ।

धारा (१) के खंड (क) में उपबंध और उपधारा (२), (३) और (४) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यमंडलों के विधान मंडलों द्वारा, जिन्होंने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्णोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए प्रत्येक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ।

इस तरह से राजभाषा (संशोधन) अधिनियम १९६७ संविधान के प्रावधानों के अनुसार हिंदी के राजभाषा के रूप बहुमुखी विकास के समस्त द्वार नहीं खोल पाता बल्कि अंग्रेजी की स्थिति अधिक मजबूत कर देता हैं । सबसे ज्यादा अखरने वाली बात यह हैं कि इस विधेयक में मुख्य रूप से यह प्रावधान किया गया हैं कि अंग्रेजी सरकारी कामकाज में सह राजभाषा के रूप में तब तक चलती रहेगी जब तक अहिंदी भाषी राज्य हिंदी को एकमात्र राजभाषा बनाने के लिए सहमत न हो जाएँ । इस से तो यह साबित होता हैं कि यह संशोधन अंग्रेजी का दबदबा भारतीय भाषा नीति में सदैव

रखने के लिए बनाया गया हैं । इस अधिनियम के अनुसार, जिस राज्य ने हिंदी को सरकारी कामकाज के लिए नहीं अपनाया है, उस राज्य के साथ केंद्रीय सरकार अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करेगी तथा हिंदी को अपनाने वाले राज्यों के साथ हिंदी में पत्राचार किया जाएगा । इस के साथ ही, सरकारी संकल्पों, सरकारी आदेशों, नियमों, सूचनाओं, प्रशासनिक रिपोर्टों, प्रेस विज्ञप्तियों आदि में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी का भी प्रयोग किया जाएगा । संविदाओं, करारों, निविदा फार्मों आदि में भी हिंदी एवं अंग्रेजी का प्रयोग किया जाएगा ।

इस प्रकार हिंदी की संवैधानिक व्यवस्था को लागू करने के नाम पर तथा भारत की सामासिक संस्कृति को बनाए रखने के बहाने देश के मुर्धन्यों ने एक द्विभाषीय जटिल दुविधात्मक समस्या का निर्माण कर दिया । परिणाम स्वरूप आज सरकारी काम-काज के लिए कोई भी सरकारी कर्मचारी हिंदी या अंग्रेजी दोनों में से किसी एक भाषा में काम करने के लिए स्वतंत्र हैं । और इस स्वतंत्रता का फायदा उठाते हुए कर्मचारी हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी में ही ज्यादा काम करते हैं क्योंकि उन्हें सरल लगता हैं फिर भले ही आम जनता की समझ में कुछ न आए ।

### १.४.७ संसद द्वारा पारित संकल्प

गृह मंत्रालय के १८ जनवरी, १९६८ के आदेश द्वारा संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित निम्नलिखित संकल्प आम जनता की जानकारी के लिए प्रकाशित किया गया:

१. जबकि संविधान के अनुच्छेद ३४३ के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी रहेगी और उसके अनुच्छेद ३५१ के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार

वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, यह संघ का कर्तव्य होगा । यह सभा संकल्प करती हैं कि हिंदी के प्रसार एवं विकास की गति बढ़ाने हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक वेल्यु (मूल्यांकन) रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी और सभी राज्य सरकारों को भेजी जाएगी ।

२. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त १४ मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया हैं। और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक हैं कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाय किए जाने चाहिए ।

यह सभा संकल्प करती हैं कि हिंदी के साथ-साथ इन सभी भाषाओं के समन्वित विकास हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से कार्यक्रम तैयार किया जाएगा । और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे भाषाएँ शीघ्र समृद्ध हों और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें ।

३. जबकि एकता की भावना के संवर्धन और देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा हेतु यह आवश्यक हैं कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रिभाषा सूत्र को

सभी राज्यों में पूर्णत: कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी किया जाना चाहिए ।

यह सभा संकल्प करती हैं कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में, हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के, दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को स्वीकारते हुए और अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबंध किया जाना चाहिए ।

४. और जबकि यह तय करना आवश्यक हैं कि संघ की लोकसेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों को पूर्ण सुरक्षित रखा जाए ।

यह सभा संकल्प करती हैं कि-

(क) उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोडकर, जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन हेतु केवल अंग्रेजी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिंदी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यतः अपेक्षित होगा, और

(ख) परिक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोकसेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधी परिक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषांओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक

माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।

इस प्रकार, १८ जनवरी, १९६८ के आदेश के माध्यम से जारी संसद के दोनों सदनों के संकल्प से हिंदी के साथ-साथ भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट भाषाओं के विकास हेतु जोर दिया गया । अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति देकर सभी अन्य अनुमतियों को निरस्त्र कर दिया गया ।

### १.४.८ राजभाषा नियम- १९७६

राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ की उपधारा ४ के साथ पठित धारा-८ द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजभाषा अधिनियम, १९७६ बनाया गया। केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए गए राजभाषा नियम- १९७६ तामिलनाडु राज्य को छोड़कर समस्त भारत पर लागू होते हैं । इन्हें २८ जून, १९७६ को जारी किया गया। इन नियमों में किए प्रमुख प्रावधानों का विवरण इस प्रकार से हैं ।

१. ये नियम केंद्रीय सरकार के सभी कार्यालयों पर लागू होते हैं । केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त आयोग, समितियों, अभिकरणों तथा केंद्रीय सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रणाधीन नियम या कंपनी के कार्यालय आदि भी केंद्रीय सरकार के कार्यालय की परिभाषा में आते हैं ।

२. इन नियमों के अनुसार संपूर्ण भारत को भाषायी प्रयोग की दृष्टि से पहली बार तीन क्षेत्रों- 'क', 'ख', 'ग' में बाँटा गया हैं ।

| **क–क्षेत्र** | **ख–क्षेत्र** | **ग–क्षेत्र** |
|---|---|---|
| १. बिहार | ८. गुजरात | क्षेत्र ‘क’ |
| २. हरियाणा | ९. महाराष्ट्र | और ‘ख’ |
| ३. हिमाचल प्रदेश | १०. पंजाब | को छोडकर |
| ४. मध्य प्रदेश | ११. चंदीगढ़ | सभी क्षेत्र |
| ५. राजस्थान | | का समावेश |
| ६. उत्तरप्रदेश | | हो जाता हैं । |
| ७. अण्डमान निकोबार | | |

३. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से पत्र आदि ‘क’ क्षेत्र के राज्यों को हिंदी में भेजे जाएंगे । यदि किसी असाधारण परिस्थितियों में कोई पत्रादि इन्हें अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनका हिंदी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा ।

४. इन नियमों के अनुसार केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से ‘ख’ क्षेत्र के राज्यों एवं संघ शासित क्षेत्रों के साथ पत्रादि हिंदी में भेजे जाएँगे । यदि ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता हैं तो उसका हिंदी अनुवाद भी साथ में भेजा जाएगा । लेकिन इन राज्यों में किसी व्यक्ति को भेजे जानेवाले पत्रादि हिंदी या अंग्रेजी दोनों में से किसी एक भाषा में भेजे जा सकते हैं ।

५. ‘ग’ क्षेत्र के राज्यों के साथ पत्रादि व्यवहार सामान्यत: अंग्रेजी में होगा।

६. 'ख' और 'ग' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बिच पत्राचार हिंदी अथवा अंग्रेजी में हो सकता हैं ।

७. हिंदी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर हिंदी में ही दिए जाएँगे । जब कभी कोई आवेदन, अपिल या अभ्यावेदन हिंदी में किया जाए या उस पर हिंदी में हस्ताक्षर हो तो उसका उत्तर हिंदी में दिया जाए ।

८. केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी जिसे हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है, तकनीकी और विधिक दस्तावेजों को छोडकर किसी हिंदी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग नहीं कर सकता ।

९. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैन्युअल, संहिताए और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य हिंदी और अंग्रेजी दोनों में द्विभाषिक रूप से तैयार किए जाएँगे । सभी फार्मों और रजीस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, सूचना सूचनापट्ट तथा स्टेशनरी आदि की अन्य प्रतियाँ हिंदी और अंग्रेजी में होंगी ।

१०. प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह यह सुनिश्चित करें कि राजभाषा अधिनियम और इन नियमों का समुचित रूप से अनुपालन किया जाता हैं ।

इस के साथ ही, समस्त कार्यालयों एवं विभागों से अनुरोध किया गया हैं ।

१. प्रदर्शिनियों में जनता की सुविधा के प्रचार माध्यम के रूप में हिंदी का पर्याप्त उपयोग किया जाए ।

२. जब राज्य सरकारों से हिंदी में पत्र प्राप्त हों तो वे उनसे ऐसे पत्रों के लिए अंग्रेजी में अनुवाद की मांग न करें। यदि आवश्यकता महसूस हों तो ऐसे पत्रों के अनुवाद की व्यवस्था संबंद्ध मंत्रालय या विभाग स्वयं कर लें।

३. ऐसे अधिकारी और कर्मचारी जो जनता के सीधे संपर्क में आते हैं और जिनको बिल्ला लगाना पड़ता है, यदि वे हिंदी भाषी क्षेत्रों या महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब और चंदीगढ़ में काम कर रहे हों तो बिल्ले हिंदी में भी लगाएँ।

४. केंद्रीय सरकार के सभी मंत्रालय / विभाग तथा हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित उनके संबंद्‍ध या अधीनस्थ कार्यालय, जो जनता से सिधे संपर्क में आते हैं, अपने यहाँ प्रमुख स्थान पर इस आशय का सूचना पट्ट लगाएँ कि उनके यहाँ हिंदी में भरे हुए फार्म आदि सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं।

राजभाषा अधिनियम में संसद के किसी सदन में प्रस्तुत किए जाने वालें सभी विधेयकों अथवा उनके संशोधनों के अंग्रेजी के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनके प्राधिकृत हिंदी अनुवाद देने का उपबंध हैं। यह १९७० बजट सत्र से अनौपचारिक रूप से लागू किया गया था। अब इसको १ अक्टुबर, १९७६ से औपचारिक रूप से लागू कर दिया गया हैं।

पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों तथा चंदीगढ़ और अंडमान एवं निकोबार संघशासित क्षेत्रों में स्थित अधीनस्थ कार्यालयों और निगमों, कम्पनियों तथा उद्‌यमों से हिंदी के उपयोग संबंधी तिमाही प्रगति रिपोर्ट भी मंगाई जाती हैं।

दिल्ली से बाहर आयोजित होने वाली राजभाषा कार्यान्वयन समितियों की बैठकों में वहाँ के हिंदी शिक्षण योजना के वरिष्ठ अधिकारियों को भी आमंत्रित करने के अनुदेश जारी किए गए हैं, क्योंकि वे राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से जुड़े हुए हैं तथा इन बैठकों में लिए गए निर्णय उनके लिए भी उपयोगी होते हैं । साथ ही, ये अधिकारी राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के बारे में इन बैठकों में उपयोगी सलाह भी दे सकते हैं ।

केंद्रीय हिंदी समिति के अनुमोदन से ऐसे आदेश जारी किए गए हैं कि केंद्रीय सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रणाधीन निगमों, कंपनियों आदि द्‌वारा जो माल तैयार होता है, उस पर विवरण अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी दिया जाए । केंद्रीय हिंदी समिति का अनुमोदन से यह निर्णय लिया गया हैं । अहिंदी भाषी क्षेत्रों में स्टेशनों आदि के नामपट्टों और जनता की सूचना के लिए लगाए जानेवाले सूचना बोर्डों में सबसे उपर क्षेत्रीय भाषा की लिपि, उसके बाद देवनागरी लिपि और सबसे नीचे रोमन लिपि का प्रयोग किया जाए ।

केंद्रीय पुलिस बलों और रक्षा-सेवाओं के कर्मचारियों की नामपट्टीयों में देवनागरी और रोमन लिपि का प्रयोग करना चाहिए, लेकिन टोपियों और कंधों पर जो बिल्ले लगाए जाते हैं । उनमें केवल देवनागरी लिपि का प्रयोग किए जा सकता हैं ।

इस प्रकार से स्पष्ट हैं कि राजभाषा हिंदी की संवैधानिक व्यवस्थाओं का कार्यान्वयन केंद्र सरकार लगातार कर रही हैं, साथ ही राजभाषा नीति के कार्यान्वयन में इस बात का भी ध्यान रखा गया हैं कि द्‌विभाषी नीति के कारण किसी का अहित न हो ।

# १.५ संविधानी फलक पर हिंदी की विकास यात्रा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी की संवैधानिक स्थिति में स्थिरता, विकास एवं उन्नयन लाने के लिए विविध सरकारी विभागों को यह कार्य सोंपा गया । कि आप हिंदी के प्रचार, प्रसार एवं अभिवृद्धि में अपना योगदान दिजीए । उसके बाद हिंदी का विकास योजनाबद्ध एवं पूर्ण गति से होता चला गया । हाँ, अभी कुछ क्षतियाँ प्रतित होती हैं । किंतु योग्य समय आने पर इन में भी सुधार आने की आशा है ।

केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने स्वैच्छिक हिंदी संस्थानों को आर्थिक सहायता, हिंदी अध्यापकों के लिए अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थाओं का खर्च विश्वविद्यालयों के स्तर की मानक पुस्तकों का हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन, सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले साहित्य का अनुवाद, विश्वकोश, शब्दकोश, प्राइमर और रीड़र आदि का निर्माण और प्रकाशन तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का हिंदी में विकास तथा अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के विकास की योजनाएँ आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं । अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी शिक्षण, टंकण, आशुलिपि की कक्षाएँ चलाना, पुस्तकालयों की स्थापना, हिंदी माध्यम के स्कूलों, अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए आर्थिक सहायता भी शिक्षा मंत्रालय द्वारा दी जाती है। इसी कार्यक्रम के लिए केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंड़ल नामक एक स्वायत्त संस्था की (इकाई) स्थापना की हैं । यह आगरा में हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्था का संचालन कर रहा हैं ।

१९५१ में शिक्षा मंत्रालय में हिंदी एकक की स्थापना हुई जिसे बाद में प्रभाग में परिवर्तित कर दिया गया । राजभाषा आयोग तथा संसदीय राजभाषा समिति के

निवेदनों के परिणाम स्वरूप मार्च, १९६० को शिक्षा मंत्रालय के अधिनस्थ कार्यालय के रूप में- 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' की स्थापना हुई । २७ अप्रैल, १९६० के आदेशानुसार निदेशालय को संघ के सभी असांविधिक मैन्युअलों, फार्मों, नियमों का अनुवाद सौंपा गया। निदेशालय ने कई शब्दकोंशों, द्विभाषिक शब्दकोशों और हिंदी विश्वकोशों का संकलन किया हैं तथा अहिंदी भाषियों और विदेशियों के लिए कुछ हिंदी पाठ्यमालाएँ तैयार की हैं । निदेशालय अहिंदी भाषी प्रदेश के विद्यार्थीयों को पुरस्कार तथा हिंदी प्रदेश की यात्रा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करके प्रोत्साहन देता हैं तथा नवलेखक शिबिरों का आयोजन भी करता हैं । इसी के प्रयास से देवनागरी लिपि को मानक रूप देने की दृष्टि से हिंदी टंकण यंत्र एवं टेलिप्रिंटर के की-पेड को अंतिम रूप दिया गया ।

राष्ट्रपति के २७ अप्रैल, १९६० के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना अक्टूबर, १९६१ में की गई । इस संदर्भ में कृषि, मानविकी इंजीनियरी, समाज विज्ञान आदी डिग्री स्तर की शब्दावली तथा रेल, सूचना तथा प्रसारण, परिवहन, नौवहन, पर्यटन तथा रक्षा और डाक व तार आदि से संबंधित शब्दावली, भौतिकी, रसायन, गणित, वनस्पति शास्त्र आदि विषयों पर प्रारंभिक पारिभाषिक शब्दवलियाँ तैयार की गई हैं।

केंद्र सरकार के गृह मंत्रालय ने कर्मचारियों को हिंदी सिखाने के लिए पूरे देश में १७५ से भी अधिक केंद्रों में हिंदी प्रशिक्षण की कक्षाएँ चलाई हैं । प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ के पाठ्यक्रम निर्धारित करके अपने कर्मचारियों को हिंदी का ज्ञान दिया है।

१९७३ से सभी मंत्रालयों और विभागों को हिंदी कार्यशालाएँ चलाने के अनुदेश दिए गए । सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए देश के प्रमुख शहरों में हिंदी टाइपिंग और हिंदी-आशुलिपि सिखाने के केंद्र खोले हैं ।

१ मार्च १९७१ से केंद्रीय अनुवाद ब्युरो की स्थापना की गई । ब्युरो सरकारी कार्यालयों के मैन्युअलों आदि का अनुवाद करने के अलावा सरकारी उपक्रमों, प्रतिष्ठानों, कंपनियों और राष्ट्रीय कृत बैंकों की असांविधिक सामग्री का भी अनुवाद करता हैं । इसके अतिरिक्त रक्षा मंत्रालय, रेल मंत्रालय और डाक-तार के अनूदित मैनुअलों आदि के पुन: निरीक्षण का काम भी ब्युरो करता है । केंद्र सरकार के कार्यालयों आदि में कार्यरत अनुवादकों को ब्युरो द्वारा सेवाकालीन अनुवाद प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

२६ जून, १९७५ को भारत सरकार ने स्वतंत्र राजभाषा विभाग की स्थापना की । इसके द्वारा संविधान के राजभाषा से संबंधित उपबंधों का कार्यान्वयन, केंद्रीय हिंदी समिति तथा संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित कार्य, राजभाषा हिंदी की संवैधानिक व्यवस्था, राष्ट्रपति के २७ अप्रैल, १९६० के आदेश, राजभाषा अधिनियम, १९६३ और भाषा से संबंधित सरकार के १८ जनवरी, १९६८ के संकल्प के उपबंधों से संबंधित कार्यों का समन्वय, केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी शिक्षण योजना, विभिन्न मंत्रालयों, विभागो द्वारा स्थापित हिंदी सलाहकार समितियों से संबंधित कार्य का समन्वय करता हैं । २७ अप्रैल, १९६० को जारी किए गए राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार स्थापित राजभाषा आयोग ने प्रमुख

कानूनों का हिंदी पाठ तैयार किया हैं । साथ ही भारत सरकार की अधिसूचनाएँ, साधारण आदेश और नियम तथा संसद के सदन में पुन: स्थापित विधेयक और संशोधन, भारत सरकार द्वारा किए गए करार, अनुबंध पत्र, संविदा का अनुवाद भी यह आयोग करता हैं ।

भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों आदि में राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ गठित हो गई हैं जिनमें हिंदी के कामकाज से संबंधित प्रगामी प्रयोग का मूल्यांकन किया जाता हैं तथा हिंदी की अभिवृद्धि हेतु उपाय किए जाते हैं ।

कम्प्यूटर में देवनागरी लिपि तथा भारतीय भाषाओं के प्रयोग की सुविधाओं के विकास के संबंध में इलेक्ट्रोनिकी विभाग तथा उनके आयोग द्वारा विशेष कदम उठाए गए हैं । ई.सी.आई.एल. हैदराबाद, बिरला इंस्टीट्युट ऑफ टेक्नोलोजी एंड साइंस, पिलानी, टाटा ब्रदर्स, मुंबई आदि ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

इनके अतिरिक्त, राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए समय-समय पर निर्देश जारी किए गए हैं, जैसे कि हिंदी में प्रशिक्षण की अनिवार्यता, हिंदी प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहन और सुविधाएँ, हिंदी टाइप लेखन और हिंदी आशुलिपि सीखने के लिए सुविधाएँ और प्रोत्साहन, डाकियों को हिंदी का प्रशिक्षण, भर्ती के उपरांत हिंदी आशुलिपि का पूर्णकालिक प्रशिक्षण दिया जाना, अनुवाद के अनिवार्य प्रशिक्षण की व्यवस्था, अनुवाद का अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, बैंकों तथा उपक्रमों के कर्मचारियों के लिए अनुवाद का प्रशिक्षण आदि ।

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए प्रोत्साहन भी दिए जाते है; जैसे-

राजभाषा शील्ड तथा ट्राफी प्रदान करने की योजना, सरकारी कामकाज में मूल हिंदी टिप्पण आलेखन के लिए प्रोत्साहन, विशिष्ट क्षेत्रों में मूल कार्य हिंदी में टाइप आशुलिपि कार्य करने के लिए प्रोत्साहन भत्ता, सबसे अच्छा कार्य करने वाली नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को पुरस्कारादि । राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु भी निर्धारित किए गए हैं । जैसे: सांविधिक और कानूनी उपबंधों का अनुपालन, राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए न्युनतम पदों का सृजन, अनुपालन हेतु प्रशासनिक प्रधान  का उत्तरदायित्व, समितियों के माध्यम से कार्यान्वयन, नियमों के अनुपालन के लिए अनुवाद कार्य की व्यवस्था, सरकारी कामकाज में मानक शब्दावली का प्रयोग आदि । इनके अतिरिक्त राजभाषा विभाग द्वारा राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए हर वर्ष वार्षिक कार्यक्रम बनाया जाता हैं जिसमें 'क', 'ख' तथा 'ग' क्षेत्र के लिए लक्ष्यबिंदु निर्धारित किए जाते हैं । केंद्रीय सरकार के स्वामित्व या नियंत्रणाधीन कंपनियों, निगमों आदि के लिए विशेष कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय कृत बैंकों के लिए भी कार्यक्रम बनाए जाते हैं । इस तरह हिंदी की संवैधानिक व्यवस्था को कार्यरूप देने में केंद्र सरकार सचेत हैं तथा हिंदी की संवैधानिक व्यवस्थाओं को वह भली भाँति कार्यरूप देने में प्रयासरत हैं ।

- (अनुच्छेद-३५० का विस्तरित विवरण)
- शिकायतों को दूर करने के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा ।

प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत को दूर करने के लिए संघ या राज्य के

किसी अधिकारी या प्राधिकारी को यथा स्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा ।

**१. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ ।**

प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानिय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों की शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगे जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

**२. भाषाई अल्पसंख्यक–वर्गों के लिए विशेष अधिकारी**

- भाषाई अल्पसंख्य का वर्गों के लिए विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगे ।
- विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य हागा कि वह इस संविधान के अधिन भाषाई अल्प संख्यक वर्गों के लिए उपबंधित आरक्षण उपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेशण करें और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को रिपोर्ट दे और राष्ट्रपति एसी सभी रिपोर्टो कों संसद के प्रत्येक सदन में रखवाएँगे और संबंधित राज्य सरकारों को भिजवाएँगे ।

## १.६ राजभाषा हिंदी का एक और पहलू :-

संविधान में राजभाषा हिंदी की भूमिका कुछ इन मुद्दों पर आधारित हैं जैसे-

- संघ की राजभाषा के रूप में,
- राज्यों और प्रदेशों के बीच संपर्क भाषा के रूप में
- संघ और राज्यों के बीच तथा एक दूसरे राज्यों के बीच पत्राचार की भाषा अर्थात् संपर्क भाषा के रूप में ।

इनमें दूसरी भूमिका तो हिंदी निभाती हैं जिसमें इसे आंशिक सफलता प्राप्त है। छः हिंदी राज्य एवं एक केंद्रशासित राज्य दिल्ली प्रदेश में राजभाषा हिंदी का प्रचलन हैं । हिंदी का विस्तार, प्रसार और परिष्कार कार्य पूर्णरूप से चालू है ।

संघ की राजभाषा के रूपमें हिंदी को मात्र संवैधानिक मान्यता प्राप्त है, किंतु राष्ट्रभाषा का मसला तो अभी वैसा का वैसा ही जटील हैं । क्यों कि आम जनता हिंदी को भ्रमवश राष्ट्रभाषा समझ रही हैं । हालाँकि हिंदी को केवल राजभाषा का ही सम्मान प्राप्त हुआ हैं राष्ट्रभाषा का नहीं । राजभाषा उसे कहते हैं जो राष्ट्र की राजकाज चलाने की भाषा हो और उनके मुख्यत: चार क्षेत्र है- शासन, संविधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका इन चारों में जिस भाषा का प्रयोग हाता हैं उसे राजभाषा कहते हैं। और उसी प्रकार जो भाषा संपूर्णता के धरातल पर विचार और भाव की अभिव्यक्ति कर सके वह राष्ट्रभाषा होती हैं । वे राष्ट्र के प्रत्येक विभाग एवं क्षेत्र से जुड़ी हुई होती हैं । राष्ट्र के प्राय: लोग अपने व्यवहार के लिए उस भाषा का उपयोग करते हैं । खैर आज भी हिंदी केवल राजभाषा ही बनी हैं किंतु भविष्य उज्ज्वल हैं राष्ट्रभाषा के स्थान पर भी हिंदी ही आसीन होगी ।

आज भी कुछ नेताओं को अंग्रेजी का मोह नहीं छुटा कारण द्विभाषा नीति के अंतर्गत सत्ता एवं प्रशासन के कार्य हिंदी अंग्रेजी के अनुवादित रूप में संपादित होते हैं। राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के लिए राजभाषा मंत्रालय, हिंदी निदेशालय, गृह मंत्रालय की हिंदी-शिक्षण योजनाएँ प्रयोजित हैं। प्रत्येक विभाग में राजभाषा अधिकारी या हिंदी अधिकारी कार्यरत हैं। हिंदी प्राध्यापक अहिंदी भाषी कर्मचारी एवं अधिकारियों को हिंदी प्रशिक्षण देकर प्रवीण और प्राज्ञ के प्रमाणपत्र प्राप्त करने में सहयोग भी देते हैं, किंतु आज भी कार्यालयी भाषा हिंदी नहीं अंग्रेजी हैं।

हिंदी तो युग-युग से संपर्क भाषा रही है, पर जनगण के बीच राजसत्ता के लिए नहीं। अत: संविधान में इसे संपर्क भाषा की संज्ञा प्राप्त होती हैं। अहिंदी भाषी राज्य अंग्रेजी की अपेक्षा अन्य भाषाओं में नहीं, हिंदी में पत्राचार करने को प्रेरित होते हैं। क्योंकि संविधान की धारा ३४६ में यह प्रावधान हैं कि केंद्र और राज्यों के बीच पारस्परिक संप्रेषण या पत्राचार आदि की भाषा भी वही होगी जो संघ की राजभाषा हैं।

१९६३ में राजभाषा अधिनियम में संशोधन कर अहिंदी भाषी राज्यों के लिए अंग्रेजी को ही सह राजभाषा का दायित्व सौंपा गया और केंद्र एवं अन्य राज्यों के बीच हिंदी के बदले अंग्रेजी में ही विनिमय होंगे। परिणामस्वरूप तामिलनाडु, कैरल, आंध्र प्रदेश, कर्णाटक, असम, बंगाल उड़ीसा, काश्मीर, मणिपुर आदि राज्य हिंदी के बदले अंग्रेजी को महत्त्व देने के लिए कृत संकल्प हैं। सभी योजनाओं और संस्थाओं पर राजसत्ता का आधिपत्य एवं वर्चस्व है, अत: राजभाषा हिंदी के बदले अंग्रेजी ही विधि, न्याय, व्यापार, शिक्षा, परीक्षा, प्रशासन, सत्ता संचालन की भाषा हैं। त्रिभाषा सूत्र

सपना मात्र हैं । नौकरशाही के सेवा में वर्चस्व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की बाढ़ में हिंदी तिरोहित होती जा रही हैं । हिंदी में तकनीकी, वैज्ञानिक, व्यापारिक, वाणिज्यिक, प्रशासनिक सभी क्षेत्र एवं विभागों की शब्दावलियों का कार्य मानों संपन्न हो गया हैं । हिंदी समाचार, पूरी संचार प्रणाली, टी.वी. चैनल और खेल- कोमेंट्री सब हिंदी में होता हैं, कम्प्युटर के लिए हिंदी वैज्ञानिक और संगत हैं किंतु प्रशासन और शासन संचालन आज भी अंग्रेजी में ही चल रहा हैं । नागरी लिपि की वैज्ञानिकता भी प्रमाणित है, किंतु नौकरशाही और राजनीति नहीं चाहतीं कि जन सामान्य की सहभागिता सत्ता, प्रशासन और सेवा में हो । अतः अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेजी को थोपने का षडयंत्र जारी हैं । आज अंग्रेजी स्वामिनी भाषा हैं और भारतीय भाषाएँ दासी । इस बर्बरता से मुक्ति अपेक्षित हैं । यह संभव तभी होगा जब प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएँ होंगी ।

उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी हिंदी में करवाई जाए । अंग्रेजी से छुटकारा पाने के लिए भारतीय भाषाओं से ही साहित्य, शब्द-भंड़ार, कथ्य, तथ्य, शिल्प, भाषिक संरचना, संस्कार, व्याकरण, लिपि की मुख्य्य विशेषताएँ आदि को हिंदी अंगीकृत एवं आत्मसात कर ले, ताकि हिंदी में अन्य भाषा के लोग अपनी संपदा का दर्शन हिंदी भाषा में कर सकें ।

राजभाषा, संपर्क भाषा और राष्ट्र भाषा हिंदी के प्रति आत्मीयता, समर्पण और अनन्यता के लिए, हिंदी साहित्य में निहित सामाजिक, मानवीय, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, अध्यात्मिक मूल्यों से परिचित होने के लिए साहित्य का अनुवाद भी अन्य भारतीय भाषाओं में अपरिहार्य हैं । यहाँ पर डॉ.शंकर दयाल सिंह का यह वाक्य याद

आ जाता है- 'हम समाज की पहली तथा सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि अपनी देशी भाषाओं को पुन: अपनाएँ, हिंदी को उसके राष्ट्रभाषा के स्वाभाविक पद पर पुन: प्रतिष्ठित करें और अपने समस्त प्रांतीय कार्यों को अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं में तथा राष्ट्रीय कामों को हिंदी में करना शुरू करें ।'

केवल कानून और नियमों की बातें दोहराते रहकर हिंदी के प्रयोग की मात्रा बढ़ने की आशा करना व्यर्थ है । विशेष प्रयत्न होना चाहिए- हृदय परिवर्तन का । राष्ट्रीय अस्मिता, संस्कृति और स्वाभिमान की पहचान भी इसमें सहायिका सिद्ध होगी। मैं मानता हूं हिंदी भाषा का दायित्व अभिव्यक्ति का दायित्व मात्र नहीं है, यह सर्वस्वीकार और सर्वमान्य जन चिंता का संस्कार भी है । विकास की गति में शिथिलता का कारण संपूर्ण जन की भागीदारी का अभाव भी है । अत: सबकी सहभागीता सुनिश्चित करने के लिए संस्कार की भाषा मातृभाषा में ज्ञान-दान के साथ सामाजिक संस्कृति की भाषा अस्मिता की स्वतंत्रता और स्वत्व की भाषा के रूप में भी स्वीकार करना होगा। तब हिंदी का जय होगा और भारत को अपना सही सम्मान प्राप्त होगा।

# अध्याय-२
# राजभाषा के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्र

यह बात आज निर्विवाद सत्य हैं कि हिंदी भाषा किसी एक क्षेत्र विशेष की न रह कर समग्र विषयों को अपने आप में समेटे हुए हैं । पिछले कुछ वर्षों में हिंदी में वैश्वीकरण के कारण काफ़ी बदलाव आया हैं । कुछ लोगों की यह धारणा थी कि हिंदी केवल साहित्य की ही भाषा हैं । लेकिन अब हिंदी को एक विशाल फलक प्राप्त हुआ हैं । आज हिंदी ने साहित्य से आगे बढ़कर बदलते हुए नए और विकसित भारत के साथ कदम मिलाया है । जिससे भारत की अखंड़ितता एवं अस्मीता बरकरार रहें। हिंदी ने तकनिकी, प्रौद्योगिकी मीडिया, खेल-कूद, विज्ञान, बैंक, चिकित्सा, प्रशासन, जनसंचार और वाणिज्य जैसे विषयों में पदार्पण करके सामान्य जन को भी कृतार्थ किया हैं ।

प्रवर्तमान हिंदी प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में उभरी हैं । अंग्रेजी में इसे फंक्शनल हिंदी कहा जाता हैं । यहाँ पर प्रयोजन का अर्थ विशिष्ट विषय परक प्रयोग, अर्थात् प्रयोजन का अर्थ उन प्रयोगों से हैं, जो आधुनिकता के परिणाम स्वरूप भाषाओं को करने पड़ते हैं ।

दूसरे शब्दों में कहे तो प्रयोजनमूलक भाषा में संपर्क तथा संप्रेषण की आवश्यकता होती हैं और इसकी अभिव्यक्ति, ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्र, प्रशासन, विधि, पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रयोजनों के रूप में होती हैं । सामान्य रूप से

प्रयोजन मूलक हिंदी की अभिव्यक्ति में व्याकरण संमत शुद्धता और सामाजिक महत्ता की ओर विशेष ध्यान रखना पड़ता हैं

भाषा का सही विकास तब ही संभव हैं जब वह भाषा उनमुक्त रूप से अन्य भाषाओं से शब्दों का आदान प्रदान करें । क्योंकि यह कतई संभव नहीं कि एक ही भाषा के पास इतने शब्द हो कि वह सभी विषयों को न्याय दे पाएँ । भाषा सामाजिक व्यवहारों की वस्तु हैं लेकिन समाज के संदर्भ हंमेशा एक समान नहीं होतें । पारंपरिक एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से समाज के भी परिवर्तन होते हैं । प्रौद्योगिकी अनुसंधान से संबद्ध संस्थान का एक अलग समाज हैं । और वित्तीय संस्थाओं का समाज दूसरा अलग समाज है । इसी प्रकार प्रशासन, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग आदि का भी अपना भिन्न समाज हैं। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भाषा और लहेजा होता हैं उसी प्रकार हर विशिष्ट समाज जो किसी बड़े समुदाय की एक इकाई है, उसकी भी 'अपनी भाषा होती है। और उससे जुड़े समाज की भी अपनी भाषा का अपना अलग व्यक्तित्व होता हैं । एक बड़े समाज के अंतर्गत विभिन्न प्रयोजनों से जितने भी भिन्न समाज निर्मित होते है उन सब की अपनी भाषा भी किसी हद तक अलग-अलग होती हैं । जो प्रयोग के विशिष्ट प्रयोजन के कारण उस भाषा के सर्व सामान्य रूप के परिवर्तक कहे जा सकते हैं । सामान्यत: किसी भाषा के ये विविध परिवर्तक, उसके प्रयोजन विशेष पर आधारित होते हैं ।

इस प्रकार हिंदी अपने विशिष्ट आयामों के कारण बृहद भाषा के रूप में विकसित होती जा रही हैं । चूँकि इस अध्याय में हमें उन विभिन्न क्षेत्रों का सामान्य

परिचय प्राप्त करना हैं जिन क्षेत्रों में हिंदी का उपयोग करने पर आयोग ने बल दिया हैं । निचे दिए गए क्षेत्रों में हम देखेंगे, हिंदी का प्रयोग, प्रावधान, प्रवर्तमान स्थिति एवं संभावनाएँ ।

## २.१ राजभाषा के विभिन्न प्रयुक्ति क्षेत्र

| | | |
|---|---|---|
| प्रशासन | दूरदर्शन | चिकित्सा |
| डाक विभाग | दूरभाष | पर्यावरण |
| उड्डयन | आयकर | खेल |
| आकाशवाणी | लेखाकार | आरोग्य |
| मिडीया | दूरसंचार | प्रौद्योगिकी |
| विज्ञापन | | |

## २.२ राजभाषा हिंदी और प्रशासन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतने हिंदी को राजकाज की भाषा के रूप में प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रस्थापित किया । जिस से अपने देश का प्रशासकिय कार्य अपनी भाषा में हो सके । राजभाषा के पद पर पहुँचने तक हिंदी ने कई धूप-छाँह देख ली थी । आयोग ने धारा-३४३-३५१ निर्धारित कर के हिंदी के विकास के लिए एवं उपयोग के लिए सिमा निर्धारण कर दिया ताकि जो सामान्य जनता हैं वह कार्यालयों में होने वाले व्यवहारों को समज सके । किंतु हमारी अंग्रेजी की औलादे पीछा नहीं छोड रही थी और सरकार के अनेक प्रयत्नों के बावजूद मनचाहा परिणाम नहीं प्राप्त हो रहा था ।

वैसे तो सरकारी कार्य कलापों एवं काम-काज में हिंदी का प्रयोग करने में कोई संवैधानिक अडचन नहीं हैं अपितु व्यावहारिक रूप से अंग्रेजी का प्रभाव बना है । हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रशासनिक क्षेत्र में स्थापित करने के लिए राजभाषा अधिनियम भी बनाया गया और उस में काफी संशोधन भी हुए लेकिन फायदा तो आखिरकार अंग्रेजी को जारी रखने के लिए ही हुआ । सभी आदेश, निर्देश, अधिसूचनाएँ मिलकर भी हिंदी को कार्य रूप देने में सफल न हो पाए ।

संघ के राज्य क्षेत्रों की सूची में हिंदी प्रमुख भाषा हैं । उत्तर प्रदेश में औसतन ९५ प्रतिशत, राजस्थान ९३ प्रतिशत, बिहार में ८५ प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में ९० प्रतिशत, चंदीगढ में ६० प्रतिशत और दिल्ली में ८५ प्रतिशत लोग हिंदी लिख-पढ, बोल और समझ सकते हैं । फिर भी इन राज्यों के सरकारी कामकाज में तो अंग्रेजी का ही प्रचलन हैं । एक प्रकार से हिंदी की उपेक्षा होती दिखाई देती है, कि इतनी बडी तादात में हिंदी जानने वाले होते हुए और सरकार का आदेश होते हुए भी यहाँ अंग्रेजी का बहुमान हैं, मानो सबके अंतःकरण में अंग्रेजी बसी हुई हैं । जनता भी निर्माल्य हैं कभी हिंदी के पक्ष में और अंग्रेजी के विरुद्ध आवाज नहीं उठाती ।

राजभाषा के रूप में सरकारी कामकाज में अंग्रेजी के स्थान पर उसके व्यावहारिक रूप से प्रयोग का प्रश्न सामने आता है तो अनेक प्रकार की परिस्थितिजन्य विवशताएँ और बाधाएँ हमारे समक्ष आ जाती हैं । भाषा नीति है, अधिनियम भी है, कानून और प्रावधान आदि की व्यवस्था हैं । राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ भी हैं, प्रगति की तिमाही रिपोर्ट भी ली जाती हैं (केवल कागज पर दिखाने मात्र का काम

होता है), हिंदी कार्य के निरीक्षण की व्यवस्था भी हैं परंतु क्या हम उन सब के बावजूद भी हिंदी को उनके सही मुकाम तक पहुँचाने में सफल हुए हैं ?

दर-असल हम अंग्रेजी के मोह से ऐसे चिपके हैं कि उनके प्रभाव तले हिंदी का ही नहीं वरन अन्य भारतीय भाषाओं का भी गला घोंट रहे हैं । हमारे अधिकारी एवं कर्मचारी दल अपनी प्रतिभा दिखाने हेतु यथा कथा अंग्रेजी जाड़ते रहते हैं । अपना वर्चस्व कम न हो जाए उस हेतु से हम अंग्रेजी को पकड़े रहते हैं । मुझे-याद है, हमारे एक मित्र जो कि पेशे से शिक्षक थे और वह भी हिंदी के; एक दफा हवाईमथक पर किसी खूबसूरत लड़की ने पुछ लिया कुछ अंग्रेजी में, अब अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए वे भी अंग्रेजी में शुरु हो गए हालाँकि टूटी-फूटी अंग्रेजी से ही काम चला रहे थें । वे चाहते तो उस महिला से हिंदी में बात कर सकते थें लेकिन नहीं । यह एक अंधापन है । हमें अपनी भाषा का गौरव पहले होना चाहिए । वैसे ही जहा कहीं भी हिंदी अपनाने की बात होती हैं तो तुरंत ज्ञान-विज्ञान की प्रगति लिए अवरोधक है और उसे में न अपनाने की सलाह दी जाती, जबकि विश्व के अनेक देश अंग्रेजी के बिना भी वैज्ञानिक उन्नति में काफ़ी आगे हैं । अब तो तकनिकी शब्दावली आयोग ने चिकित्सा विज्ञान एवं वाणिज्य में भी हिंदी के शब्दकोश उपलब्ध करा दिए हैं ।

खरे अर्थ में कहे तो हिंदी में कार्य करने की मानसिकता होनी चाहिए । तभी अंग्रेजी का मोह छुट सकता है । सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग करने के बावजूद हिंदी की अपेक्षित प्रगति प्रशासनिक कार्यों में नहीं हो पाई है । हिंदी में कामकाज को बढ़ावा देने के लिए प्रशासनिक स्तर पर अनेक अनुभाग, तत्संबंधी

शाखा-प्रशाखाएँ स्थापित तो की गई परंतु ये सब केवल अनुवाद एजंसियाँ बनकर रह गई। इनसे खाना पूर्ति के लिए हिंदी में काम तो कराया जाता हैं पर न इन्हें महत्त्वपूर्ण विभाग माना जाता है और न इनके कार्य को कोई अहमियत दी जाती है।

प्रशासनिक तंत्र में वातावरण अंग्रेजीमय है, अत: उच्चाधिकारी अपने स्तर पर हिंदी को हीन मानते हुए उन्हें छोड़ अंग्रेजी को पकड़ते हैं। हाँ इन में कुछ अपवाद रूप कर्मचारी भी हैं। जो हिंदी को बढ़ावा देने के लिए सदा प्रयत्नशिल रहते हैं। प्रशासनिक और सिविल सेवाओं से जुड़े अधिकांश अधिकारियों को हिंदी रास नहीं आती और निचे के कर्मचारीगण उनके भय से चाहते हुए भी दैनिक कार्यों में हिंदी नहीं अपना सकते। इसी कायरता के कारण हमें मजबुरन अंग्रेजी का स्वीकार करना पड़ता है। कचहरियों में टाइपिस्ट एवं आशुलिपिक हिंदी का ज्ञान रखते हैं फिर भी उनका उपयोग नहीं किया जाता। द्विभाषी फार्म होने के बावजूद भी अंग्रेजी में ही फार्म भरे जा रहे हैं। अंग्रेजी प्रशासन तंत्र में अपना अड्डा जमाए बैठी है। कमाल की बात यह है, जब हिंदी के प्रयोग की बात आई तो माध्यम परिवर्तन की समस्या सामने आ गई।

अच्छा होता अगर, जब देश आजाद हुआ तब उसी वक्त हिंदी को राजभाषा घोषित कर दिया जाता और सरकारी सभी कामकाज में अनिवार्य रूप से उसके प्रयोग पर बल दिया जाता। अफ़सोस ऐसा नहीं हुआ और बीच में जो समय बीत गया, उसमें कई प्रकार के भाषाई और राजनीतिक दबाव उभर आए जिससे हिंदी के प्रयोग मार्ग में बाधा पड़ी। चूँकि सरकारी तौर पर पर्याप्त प्रयत्न किए जा चूके थें मगर हिंदी को अभी तक न तो वह गौरव मिला है जो संविधान ने इस भाषा को दिया हैं और न ही

इसका प्रयोग अपेक्षित स्तर तक हो पा रहा है ।

अहम मुद्दा यह हैं कि जहाँ उच्च अधिकारी हिंदी में कार्य करने की पहल करेंगे, हिंदी के प्रति निष्ठा और लगन बनाएँगे वहाँ अधिनस्य कर्मचारी अपने आप ही प्रेरित होकर हिंदी से जुड़ जाएँगे और कार्यालयों में स्वाभाविक रूप से ही हिंदी में व्यवहार होने लगेगा । आज हिंदी को व्यावहारिक रूप से प्रयोग की भाषा बनाना आवश्यक है। आज का युग इलेकट्रोनिक मिडीया का युग है । इस की सहायता से किसी भी मुसीबत का सामना किया जा सकता है । शब्दावली, अनुवाद, मानक प्रारूप तथा कार्यालय साहित्य हिंदी में उपलब्ध कराया जा सकता हैं ।

कार्यालयों में जितना भी प्रशासनिक काम होता हैं उसमें विशेष प्रकार के फार्मों, प्रपत्रों, नियमों, संहिताओं, अधिनियमों आदि का प्रचलन हैं ।

यह सारा साहित्य अंग्रेजी में हैं और इतने वर्षों से प्रयोग में आ रहा हैं; इस कारण अंग्रेजी में काम करना आसान हो जाता है । यदि इसकी मानक भाषा उपलब्ध हो जाए तो यही सारा काम अंग्रेजी के बदले हिंदी में करना सुविधाजनक हो सकता है । भाषा को मानक बनाने का कार्य जारी ही है । परंतु अभी इस में पूरी तरह से सफलता हाँसिल नहीं हुई हैं ।

जब इन सारे कागजातों का अनुवाद किया जाता हैं, तब कुछ तकनिकी शब्दों के कारण भाषा बाझिल-सी हो जाती हैं । जो अर्थ का अनर्थ कर देती है । पूर्व के अनुभव इस बात की पुष्टि करते हैं, कि इस प्रकार की अनुवादी हिंदी भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में बाधक ही सिद्ध हुई है ।

सरकारी कामकाज में जन सामान्य की समझ में आ सकने वाली भाषा अथवा सरल शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए । इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि सरकारी कामकाज में हम ऐसी भाषा का प्रयोग करें, जिसे अर्थ स्पष्ट हो जाए, तथा जिस के लिए लिखि जा रही है, उसकी समझ में भी आसानी से आ जाए ।

गड़बड़ तब पैदा होती हैं जब भाषा क्लिष्ट, पांड़ित्य पूर्ण और साहित्यिक शब्दावली से युक्त होती हैं । प्रशासन क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए यह परम आवश्यक हैं कि भाषा को लोक भोग्य बनाना चाहिए और उसके सरलतम रूप का प्रयोग होना चाहिए ।

आज सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग करने में जो कठिनाइयाँ आ रही हैं, उस के मूल में कोई तकनिकी या अन्य बाधा नहीं हैं वरन अपने अधिकारियों की ही मंद गति जिम्मेदार है ।

केवल हिंदी भाषा और साहित्य की पुस्तके ही नहीं अपितु विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान तथा वाणिज्यिक विषयों की पुस्तके यदि हिंदी में उपलब्ध करा दी जाएँ, तो स्वत: ही इस भाषा का विकास हो जाएगा परंतु रोजगार में अंग्रेजी जुडी होने के कारण हिंदी माध्यम की ओर लोगों का लगाव नहीं बनता। दरसल जितनी प्रतियोगिता परीक्षाएँ हैं, उनमें अंग्रेजी की अनिवार्यता बनी हुई है । इसी स्थिति में अंग्रेजी माध्यम में पढ़े छात्रों को ही लाभ मिलता है । ग्रामीण छात्र, जो अंग्रेजी ज्ञान से अनभिज्ञ है और हिंदी पृष्ठभूमि वाले छात्रों को इस संबंध में हानि उठानी पडती है । ऐसे क्षेत्र में केवल दो-तीन प्रतिशत तक अंग्रेजी जानने वाले बाजी

मार लेते हैं । और प्रशासनिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण स्थानों पर उन्ही का बोलबाला रहता हैं ।

हिंदी को समुचित सम्मान और आदर देने के लिए हमें अपने मन से हिंदी के साथ जुडना होगा । साधन जुटाकर और संकोच छोड़कर व्यावहारिक और दैनिक कामकाज में हिंदी का प्रयोग जब जन सामान्य करने लगेगा, तो निश्चयही कहा जा सकता हैं कि जनसंगठनों, संस्थाओं, कार्यालयों और प्रशासनों का कार्य जो भी हिंदी में होने लगेगा । जन सामान्य से जुडा हुआ है, वे स्वत: ही हिंदी में काम करने लगेंगे।

यहाँ हिंदी की स्थापना का अर्थ अंग्रेजी की समाप्ति नहीं है, वरन अपनी भाषा का बहुमान करना और गौरव बढ़ाना है । जो लोग अंग्रेजी में पढ़ना लिखना चाहते हैं, इस भाषा के विद्वान बनना चाहते हैं उन्हें कौन रोकता है ? हमें सभी भारतीय भाषाओं का सम्मान करते हुए कार्य व्यवहार करना चाहिए और प्रशासन के क्षेत्र में हिंदी को उसका उचित स्थान दिलवाना चाहिए ।

सरकारी काम-काज में यदि सुचारु रूप से हिंदी का प्रयोग आरंभ हो जाए तो भाषा संबंधी सभी समस्याओं का निराकरण हो जाए । इसी कारण तो हम प्रति वर्ष विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों में हिंदी दिवस मनाते हैं । हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा भी मनाते हैं । इस से देश में हिंदी के प्रति चेतना जागृत होती हैं । राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित वार्षिक कार्यक्रमों को लागू करना, नोटिंग-ड्राफ्टिंग, हिंदी में टांकण, आशुलिपि आदि में प्रतियोगिताएँ, निबंध, वाद-विवाद आदी के आयोजन एवं प्रतियोगिताएँ की जाती हैं । जिसके कारण हिंदी में काम करने की मानसिकता बने ।

मूल रूप से हिंदी में कार्य करने पर पुरस्कार भी दिए जाते हैं । राजभाषा निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक आदि के रूप में आज २५ हजार से अधिक लोग कार्य कर रहे हैं । वास्तव में जब तक हिंदी को रोजी-रोटी और नौकरियों तक नहीं जोड़ा जाएगा तब तक हिंदी की प्रगति कुछ कुंठित-सी रहेगी । प्रशासनिक हिंदी को अनुवाद की भाषा बनने से रोकना हैं । मूल रूप से हिंदी में काम करने की आदत को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।

कुछ मंत्रालयों में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि हुई हैं और धिरे-धिरे हो भी रही है। जरूरी आदेशों, कागजातों आदि का अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा हैं । काम नहीं हो रहा ऐसा नहीं किंतु गति काफ़ी धीमी है । इसमें वृद्धि की मात्रा के प्रतिशत कम है। मुख्यत: सरकारी संस्थानों में मुहरे, फाइल-कवर, नामपट्ट व हिंदी संबंधी बैठकों का आयोजन एक सरकारी खाना पूर्ति माना जा रहा है और हिंदी मात्र हिंदी-प्रभागों व अनुभागों तक ही सिमटकर रह गई हैं ।

फिर भी हम भविष्य के प्रति आशावान हैं । और उसी उम्मीद से कि राजभाषा हिंदी का प्रयोग अधिक से अधिक होगा, हिंदी में सरकारी काम करने की पूर्ण मानसिकता बनेगी । इसी में हिंदी का हित एवं भारतीय भाषाओं का हित हैं साथ ही स्वतंत्र भारत की अनिवार्यत: यही पहचान है ।

## २.३ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में हिंदी

इस सत्य से कतई नहीं मुँह मोड़ा जा सकता कि आज यदि भारत विश्व के विकसित राष्ट्रों की श्रृंखला में अग्रेसर हुआ हैं तो वह विज्ञान के विविध आविश्कार एवं

वाणिज्य तथा प्रौद्योगिकी के कारण हुआ है । आज भारत के पास वह सब कुछ हैं जो एक विकसित राष्ट्र के पास होना चाहिए । किंतु एक समस्या यह हैं कि दुनिया के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए तकनिक एवं आविष्कार के क्षेत्र में निरंतर प्रवृत रहना चाहिए और उसके लिए हमारे वैज्ञानिकों के पास पर्याप्त मात्रा में इसका साहित्य चाहिए और यह सारा साहित्य कुछ गिनी-चुनी भाषाओं में ही प्राप्त हैं, तो सवाल आता हैं सारे साहित्य का अपनी भाषा में अनुवाद करने का । लेकिन अपनी ऐसी कोन सी भाषा में अनुवाद करे तो, सामुहिक रूप से एक ही स्वर उठा हिंदी में ।

आज बड़े जोर सोर से विज्ञान, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी का अनुवादीय काम चल रहा हैं । इस से जुड़ी समस्या एवं समाधान को विस्तार से देखें ।

इस युग को विज्ञान युग कहें तो कोई अतिश्योक्ति न होगी । आज ऐसी कोई कल्पना नहीं होती जिसे हकीकत में तपदिल न किया जा सके । राष्ट्र के सारे छोटे बड़े गाँव आज हमारे मान्य मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्रभाई मोदी के E-gram इ-ग्राम प्रोजेक्ट के तहत जुड़े हुए हैं । टेलीफोन, इन्टरनेट, विडीयो कोन्फरन्स, मोबाइल, कम्प्युटर यह सब विज्ञान की देन है।

सन् १८१३ में इलाहबाद में विज्ञान परिषद् की स्थापना की गई । इसका उद्देश्य था कि हिंदी के माध्यम से, बढ़ते हुए ज्ञान को भारत के सामान्य नागरिक तक पहुँचाया जाए । तब से 'हिंदी विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन अखंड़ित रूप से हो रहा है ।

सन् १९५२ में वैज्ञानिक शब्दावली (बोर्ड) के मार्गदर्शन में और १९६० में भारत के महामहिम राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली

आयोग का गठन किया गया । आयोग में विषय के विशेषज्ञ विद्वानों की अध्यक्षता में कार्य आरंभ हुआ । प्रथम अध्यक्ष के रूप में डॉ. दौलतसिंह कोठारी जैसे वैज्ञानिक थें।

इस में पारिभाषिक शब्दावली, भौतिकी, जीवविज्ञान, प्राणिविज्ञान, इंजीनियरींग चिकित्सा तथा कम्प्युटर एवं ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों की शब्दावली का कार्य किया गया । आज भी विभिन्न विषयों से संबंधित पारिभाषिक शब्द समूहों का प्रकाशन मानव संसाधन विकास मंत्रालय के (शिक्षा विभाग) के इस कार्यालय द्वारा किया जा रहा हैं ।

हिंदी को अपना दायित्य निभाने की पहल विज्ञान, तकनीकी और प्रौद्योगिकी विषयों पर मूल रूप से हिंदी में पुस्तके लिखकर करनी होगी । आज कम्प्युटर के माध्यम से अनेक क्षेत्रों, शिक्षण पद्धति, व्यवसाय, रोजगार अनुसंधान व्यवस्था, कार्यालय प्रयोगशाला, आयुर्विज्ञान तथा भाषा शिक्षण आदि में कार्य किया जा रहा हैं। कम्प्युटर से रोजगार के भी नए रास्ते खुले है, कार्यों को गति और शक्ति मिली है। और हिंदी प्रकाशन की दुनिया में एक क्रांति हुई है ।

अब उच्चतर माध्यमों में जैसे विज्ञान, इंजीनियरींग, कम्प्युटर, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में हिंदी माध्यम से शिक्षा प्राप्त की जा सकती है । उच्च शिक्षा ही नहीं वरन वैज्ञानिक विषयों में हिंदी माध्यम से शोध कार्य भी संभव है । आज हिंदी में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की उच्च स्तरीय संगोष्ठीयाँ, पुस्तक पत्रिकाओं को प्रकाशित किया जा रहा है । प्रकाशन कार्य शालाएँ, विभिन्न परियोजनाएँ इस दिशामें आयोजित की जाती हैं । आज राज्य सरकारों, केंद्र सरकारों की विभिन्न प्रतियोगी

परीक्षाओं के लिए प्रकाशित वैज्ञानिक पत्रिकाए भी हिंदी में उपलब्ध हैं ।

हमें अंग्रेजी के विरुद्ध की मानसिकता नहीं बनानी है । और ऐसा भी नहीं है कि मात्र हिंदी-हिंदी ही करते रहो, आज पूरे विश्व में अंग्रेजी भाषा चल रही हैं तो दुनिया के साथ कदम मिलाने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक हैं जितना मातृभाषा का । पर जब तक बाजी अपने हाथ में हो तो हिंदी के पक्ष में फैसला लें, क्योंकि यह अपनी भाषा हैं और हमें अपनी भाषा पर अभिमान होना चाहिए ।

आज देश-विदेश में दिन-प्रतिदिन हो रहे वैज्ञानिक आविश्कार, ज्ञान-विज्ञान संबंधी प्रगति की अद्‌यतन जानकारी यदि हमे समय-समय न मिले तो हम दुनिया से पिछड़ते जाएंगे । मात्र भाषाएँ सीखने से व ज्ञान-विज्ञान की खबरों को जान लेने से विकास संभव नहीं हैं । आज विश्व में ऐसे अनेक देश हैं । जिन्हों ने अपनी भाषा के माध्यम से ही विज्ञान एवं प्रौद्‌योगिकी के क्षेत्र में विशेष प्रगति की हैं, चिन और जापान इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं । किसी भी स्वाभिमानी देश ने अपनी राष्ट्रभाषा की किंमत पर विदेशी भाषा को महत्त्व नहीं दिया । दुनीया का श्रेष्ठतम ज्ञान केवल अंग्रेजी भाषा साहित्य में है, यह भ्रामक है ।

देश के संशोधकों, वैज्ञानिकों के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी एवं प्रौद्‌योगिकी साहित्य हिंदी में पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए । रची जानेवाली पुस्तके भी लोगों द्‌वारा, अनुसंधानकर्ताओं द्‌वारा स्वीकार की जानी चाहिए । आज वैज्ञानिक चिंतन प्रौद्योगिकी का चिंतन मूल रूप से हिंदी में ही होना चाहिए; यदि अंग्रेजी में होता हैं तो उस श्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करा कर हिंदी में भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए ।

विदेशी खोंजों, अनुसंधानों की अद्यतन जानकारी हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भी प्राप्त हो । आज इंजीनियरी, मेडिकल, भूगोल, शास्त्र, विज्ञान, भौतिकी, रसायन, भू.विज्ञान, मौसम विभाग और न जाने कितने ही ऐसे क्षेत्र है, जिनकी गहन शिक्षा एवं जानकारी हिंदी में संतोषकारक ढंग से नहीं दी जा रही हैं । इस के लिए ठोस और रचनात्मक कार्य करने की अत्यंत आवश्यकता हैं । हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य की रचना अत्यंत गौण हैं । अधिकांश वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद उपलब्ध है। इन ग्रंथों की भाषा इतनी अव्यवस्थित और जटिल हैं कि वह साधारण पढ़े-लिखे लोगों की समझ में ही नहीं आती । दरअसल यह अनुवाद की समस्या है थोड़ा विस्तार से समझे तो श्रेयकर रहेगा ।

## २.३.१ वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ ।

हाँलाकि वैज्ञानिक साहित्य तथ्य प्रधान होता हैं, अत: वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ भी साहित्यिक अनुवाद से सर्वथा अलग होती है । वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में एक सुविधा यह भी रहती है कि उसमें अभिव्यक्ति शैली और अर्थगत संरचना की जटीलता नहीं होती । इस की शैली बिल्कुल सपाट होती है । अत: अनुवादक को शैलीगत स्तरों पर ध्यान केंद्रीत करने की अधिक आवश्यकता नहीं होगी । वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की प्रमुख चार समस्याएँ हैं ।

१. पारिभाषिक शब्दावली की समस्या

२. विषय का समुचित ज्ञान

३. भाषा की विषयानुकूल वैज्ञानिकता

## १. पारिभाषिक शब्दावली ।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी साहित्य के अनुवाद में प्रमुख समस्या पारिभाषिक शब्दों की आती हैं । अंग्रेजी, रुसी, जर्मन, फ्रेंच आदि विश्व की ऐसी कई समृद्ध भाषाएँ हैं, जिनमें पारिभाषिक शब्दों का अभाव नहीं । इसका कारण हैं कि इन भाषाओं के वैज्ञानिक विश्व में अग्रणी हैं तथा नित नए अनुसंधान इन्हीं के द्वारा होते रहते हैं। अतः इन भाषाओं में पारिभाषिक शब्द आविश्कार के साथ ही निर्मित होते हैं । भारत मे यह आविश्कार अंग्रेजी के माध्यम से आते हैं । यहाँ प्रकृति के बदलने पर अनुवाद करने से शब्द विकृत बन जाता हैं और अर्थ परिवर्तन हो जाता है । इस निवारण हेतु, जैसे कि हमने आगे देखा शिक्षा मंत्रालय ने पारिभाषिक शब्दावली बनाने का विधिवत कार्य आरंभ किया ।

अनुवाद एवं शब्दावली निर्माण में आयोग ने कुछ सिद्धांत भी रखे । यहाँ स्थानाभाव के कारण उसका विवरण नहीं दिया जा रहा हैं ।

## २. विषय का समुचित ज्ञान

किसी भी अनुवाद में विषय का समुचित ज्ञान भी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता हैं । यह साहित्य नहीं कि अपने मौलिक विचार डाल दें और मसालेदार बना ले यहाँ तो पूरा दारो-मदार विषयवस्तु पर निर्भर होता हैं । वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी के विषयों का अनुवाद करते समय किसी भी विषयगत सूचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में तबदिल करते समय अनुवादक का ध्यान यथार्थता एवं परिशुद्धता पर सर्वाधिक केंद्रित होता हैं । यदि अनुवादक मूल तथ्यों से हट जाता है तो उसकी यह गलती कदापि क्षम्य न हो सकेगी ।

अनुवाद चाहे साहित्यिक हो या वैज्ञानिक, अनुवादक में कुछ समान योग्यताओं की आवश्यकता होती है; जैसे विचारशीलता, विवेकशीलता, मेधा सहज ज्ञान, परिश्रमशीलता आदि एक अनुवादक के अपेक्षित गुण हैं। विषयगत ज्ञान के अभाव में अनुवाद में अधिकतम भूलें अनुवादक कर बैठता है। अतः भाषा और विषय ज्ञान संबंधी योग्यताएँ वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक के लिए नितांत आवश्यक हैं। आज विश्व में विज्ञान की कई बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं जिनमें से कुछ शाखाएँ जैसे:

भौतिकी, रसायन, चिकित्सा आदि के साहित्य का अनुवाद करने के लिए सामान्य नहीं परंतु विषय संबंधी विशेष एवं गहन ज्ञान की आवश्यकता होती हैं। विज्ञान के विषय से अनभिज्ञ अनुवादक से वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद कराने से भयंकर भूलें हो सकती हैं। शब्द कोशीय ज्ञान के आधार वह '**Atomic Plant**' का अनुवाद '**आणविक पौधा**' भी कर देगा। जो वैज्ञानिक साहित्य के लिए किसी मजाक से कम नहीं।

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि वैज्ञानिकी साहित्य के अनुवादक के लिए भाषा ज्ञान के साथ-साथ संबंधित विषय का ज्ञान होना अनिवार्यत: आवश्यक है।

### ३. भाषा की विषयानुकूल वैज्ञानिकता।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक को वैज्ञानिक साहित्य के अनुकूल तर्कपूर्ण भाषा का प्रयोग करना चाहिए ताकि विषय की परत-दर-परत भाषा के प्रवाहपूर्ण ढंग से खोली जा सके।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक को बड़ी सरलता रहती है, बसर्ते उसके पास

संबंधित विषय के पारिभाषिक शब्द प्रचुर मात्रा में होने चाहिए । भाषा के साथ माथापच्ची साहित्यिक अनुवाद की तुलना में वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में कम होती हैं ।

भाषा की विषयानुकूल वैज्ञानिकता कई बार पारिभाषिक शब्दावली की विसंगतियों के कारण भी छिन्न-भिन्न हो जाती हैं । पारिभाषिक शब्दावली में निम्नांकित विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं ।

- व्यवहारगत विसंगतियाँ
- रचनागत विसंगतियाँ
- अंतर व्यवहार संबंधी विसंगतियाँ
- अर्थगत विसंगतियाँ

अंततोगत्वा कहा जा सकता हैं कि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी साहित्य के अनुवाद में अनुवादक को तथ्यात्मकता का पुन: प्रस्तुतीकरण करना चाहिए तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की संबंधित क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए ताकि भाषा में प्रयुक्त करना चाहिए ताकि भाषा में प्रयुक्त शब्दों की एकरूपता रहे ।

## २.४ दूरसंसार माध्यम और (मीडिया) हिंदी

आधुनिक युग में संचार माध्यमों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । संचार माध्यमों से ही हम इस विराट संसार से संपर्क बनाए हुए है रोज की घटनाओं की जानकारी हमें संचार माध्यमों के द्‌वारा शीध्र मिल जाती है । आज समाचारपत्र,

रेडियो, टेलीविजन ही संचार के महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं । आज कम्प्युटर, मोबाईल, इन्टरनेट आदि आधुनिक उपकरण भी इसमें अपना अहम स्थान बनाए हुए है । समाचारपत्रों के माध्यम से हम तमाम दुनिया की घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, उसके बिना हम दुनिया के घटनाचक्र की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते हैं । यह बात मात्र समाचार पत्र ही नहीं अन्य संचार माध्यमों पर भी लागू होती है । आज रेडियो, दूरदर्शन-आदि सुनने या देखने की आवश्यकता क्या है ?

इन सभी संचार माध्यमों की, हिंदी के प्रचार-प्रसार में क्या भूमिका रही है ? हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी फिल्में, हिंदी संगीत व दूरदर्शन आदि ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । आज हिंदी फिल्मों के कारण अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी, यहाँ तक कि भारत के बाहर भी हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ हैं । रेडियों या टेलीविजन पर हिंदी के समाचार और साथ अंग्रेजी के समाचार नियमित रूप से सुनकर काफी लोगों ने हिंदी के ज्ञान में वृद्‌धि की है ।

एक उदाहरण से पता लग सकता हैं कि हिंदी की महत्ता क्या हैं और जन समुदाय किस हद तक हिंदी को पसंद करता हैं । '**Star News**' एक अंग्रेजी समाचार प्रसारित करने वाली चैनल थी । जो कुछ साल पहले हिंदी समाचार देने वाली चेनल में बदल गई ।

आकाशवाणी और दूरदर्शन की हिंदी, समाचार और अन्य कार्यक्रमों में सरल और सभी की समझ में आनेवाली हिंदी हो । हिंदी का एक स्वरूप संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का हैं तो दूसरा उर्दू, अरबी-फरसी शब्दों का खुलकर प्रयोग करने का हैं। अतः सरल और प्रचलित शब्दों को जों आम जनता तक आसानी से पहुंच सकें, जिन्हें

आसानी से समस्त देश का जनमानस समज सके, उसका प्रयोग होना अपेक्षित है। आज दक्षिण भारतियों, बंगला भाषियों के लिए संस्कृतनिष्ट हिंदी आसान व सरल है। जब कि पंजाब आदि उत्तर के राज्यों के लोगों के लिए उर्दू शब्दावली अधिक आसान होती हैं।

अत: आकाशवाणी और दूरदर्शन की हिंदी में हमें साहित्यिक व परिष्कृत हिंदी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। विशेष साहित्यिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त, समाचार आदि में हमें आम बोल-चाल की शब्दावली का ही अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। कुछ अंग्रेजी के शब्द भी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं ने आत्मसात् कर लिए हैं, तो समय-समय पर उनका भी प्रयोग करना उचित होगा। इससे हिंदी तथा हमारी अन्य भारतीय भाषाओं का शब्द-भंड़ार समृद्ध होगा।

हिंदी और उर्दू में सामान्यत: कोई विवाद नहीं हैं परंतु हिंदी की अपनी स्वतंत्र पहचान हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, जारखंड़ राँचि-उतरांचल और बिहार में इसे दूसरी भाषा का दर्जा भी दिया गया है। जो हिंदी के विकास का द्योतक हैं। इस बात में कोई विवाद नहीं कि संचार माध्यमों की भाषा सरल, सरस, सुबोध एवं सबकी समझ में आसानी से आनेवाली होनी चाहिए। आज हिंदी में अनेक ज्ञान-विज्ञान आदि के शब्दों का निर्माण हो गया हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के कार्यालय, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग को, सभी-ज्ञान विज्ञान के विषयों के हिंदी पर्याय, तकनीकी और पारिभाषिक शब्दकोशों का निर्माण कर दिया हैं। अत: तकनीकी या पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तो आरंभ में कठिन होगा परंतु धीरे-धीरे यह भी सरल

लगने लगेगा । इसे मिलता एक उदाहरण देखें । भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा'', मन बड़ा चंचल हैं उसे वशमें रखों और मुझमें ध्यान लगाओ' तब अर्जुन कहता हैं कि ''प्रभु जब भी आप में मन लगाने की कोशिष करता हूँ तो वह विचलित हो जाता हैं।'' प्रत्युत्तर में योगेश्वर कहते हैं, ॥ ''अभ्यासेन तु कौंतेय इत द्रुस्थित्:'' ॥ लगातार अभ्यास करने से किसी भी कौशल्य को हस्तगत किया जा सकता हैं ।

**'करत करत अभ्यास जडमति होत सुजान ।'**

जब अंग्रेजी के तकनीकी शब्द याद करने पड़ते हैं तो फिर हिंदी के तकनीकी शब्दों की क्लिष्टता के संबंध में चर्चा बेफिजुल हैं ।

पहले दूरभाष संचार के माध्यम बने और अब कम्प्युटर के साथ जुडकर दूर संचार टैक्नोलोजी में नए-नए आयाम जुड़ते जा रहे हैं । सूचना का आदान-प्रदान नेटवर्क के अंदर और नेटवर्कों के बीच संभव जो जाने से दूरियाँ कम होने लगी हैं । देश के अंदर सूचना का आदान-प्रदान सूचना नेटवर्कों से राजभाषा हिंदी में और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी में होने की व्यवस्था, आर्थिक और सामाजिक रूप से आवश्यक है । सामाजिक, राजनैतिक और व्यापारिक स्तरों पर सूचना का आदान-प्रदान और इन सूचनाओं को प्राप्त करने में दूरसंचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार विचारों के संप्रेषण एवं सम्यक आदान-प्रदान के लिए भाषा का व्याकरण महत्त्वपूर्ण है । उसी प्रकार दूरसंचार साधनों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए इलेक्ट्रोनिक मानकों का महत्त्व हैं ।

दूर संचार में भौगोलिक दूरियों पर स्थित उपकरणों का जाल (नेटवर्क) ऐसा

हो कि उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक संतोष दे सके, जैसे टेलेक्स सुविधा शीघ्र मिल सके, एस.टी.डी. कोल जल्दी मिले, अधिक से अधिक लोगों को दूरभाष की सुविधा मिले। दूरभाष बिल निश्चित समय पर और विवरण सहित आए। दूरभाष पर प्रश्नोत्तर कम से कम समय में दिए जाएँ इत्यादि।

नेटवर्क प्रबंधन कार्य केंद्रीकृत अथवा विकेंद्रीकृत हो सकते हैं।

प्रमुख रूपेण उसे चार श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

- नेटवर्क प्रशासन
- नेटवर्क अनुरक्षण
- नेटवर्क प्रणाली
- नेटवर्क सुरक्षा

हिंदी के प्रयोग संवर्धन की दृष्टि से नेटवर्क प्रशासन पर चर्चा तक ही सिमित रहना उचित होगा।

महानगर टेलीफोन निगम लि.(M.T.N.L.) ने दूरसंचार सेवाओं को अधिक प्रभावी और संतोषकारक बनाने के लिए कम्प्युटरीकरण की बृहद योजना बनाई है। कार्य क्षेत्रों का विभाजन अधिकारी स्तर पर किया गया हैं। लगभग ७५० कार्य क्षेत्र चुने गए हैं।

## २.४.१ निर्देशिका प्रश्न सेवा प्रणाली

इस समय प्रणाली द्वारा बंबई और दिल्ली की कम्प्युटरी कृत निर्देशिकाओं से चौबीसों घंटे, दिन-रात में कभी भी प्रश्न कर सकते हैं। अभी यह निर्देशिकाएँ अंग्रेजी

में हैं, हिंदी में करने की प्रक्रिया चालू है। सीमित अनुवाद के साथ अथवा अलग से हिंदी में निर्देशिकाएँ तैयार करके इस सेवा को हिंदी में भी कम्प्युटरीकृत किया जा सकता है।

## २.४.२ दोष निवारण सेवा प्रणाली

शिकायतों को दर्ज कराना, जाँच के लिए मीकेनिक को भेजना, समीक्षा सांख्यिकी रिपोर्ट तैयार करना इसके प्रमुख कार्य हैं। दोषों और दोष निवारण दल का विश्लेषण आवश्यक है- जिससे दोष निवारण सेवा को बेहतर बनाया जा सके, जनशक्ति उपभोक्ता के उपकरणों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। इस समग्र प्रक्रिया में हिंदी का व्यवहार श्रेय कर होगा।

## २.४.३ दूरभाष विलम प्रणाली

यह प्रणाली समय का बचाव करने में कारगर हैं। इस से बील समय पर बनाए और भेजे जा सकेंगे। बिलों में पूरे विवरण देने से भुगतान कर्ता को संतोष भी होगा और भुगतान जल्दी किए जाएँगे। बिल से संबंधित सिकायतों को शीघ्र निपटाया जा सकेगा।

इसमें हिंदी का प्रयोग वह व्यवहार बहुत आसान हैं। साथ में यह जानकारी भी सिद्ध होगा।

## २.४.४ उपभोक्ता सेवा केंद्र

यह महत्त्वपूर्ण केंद्र बिंदु हैं जहाँ से उपभोक्ताओं को विविध प्रकार की जानकारी उपलब्ध कराई जाती है, जैसे दूरभाष कनेक्शन दिए जाने की तिथि, प्रतिक्षा सूची,

दोषयुक्त लाइन की वर्तमान स्थिति, दूरसंचार की दरें, बिल भुगतान और भुगतान न करने पर लाइन न काटने की जानकारी इत्यादि ।

## २.४.५ बेहतर संचार मिशन

अप्रैल १९८६ में बहेतर संचार मिशन आरंभ हुआ । इसके अंतर्गत ६ कार्यक्रम हैं: दूरभाष कोल, सफलता दर, टेलेक्स सेवा, ट्रेक कोल सेवा, निर्देशिका, प्रश्न सेवा और बिल विश्वसनीयता को सुधारना, दोष दर को कम करना । इस दिशा में सफलता मिलि हैं । इसके कार्यान्वयन प्रबंधन में हिंदी का प्रयोग संभव हैं और यह बहुत सहायक सिद्‌ध होगा ।

## २.४.६ हिंदी में कम्प्युटर संचार की टेक्नोलोजी

कम्प्युटर पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में काम करना अब संभव हैं । यह सुविधा जिस्ट कार्ड आई.वी.एम.सी. (Zist card I.V.M.C.) अनुसंगत माइक्रो कोम्प्युटर पर लगाने से संभव हैं । सूचना का आदान-प्रदान तुरंत ही संभव हो जाएगा। इंडिया स्किष्ट स्टांडर्ड कोड फोर इन्फोरमेशन इंटर चेंज का मानकीकरण किया जा चुका हैं । यह मानक प्रचलन में हैं । इसमें रोमन के लिए ७ बिट का आस्की मानक कोड संलग्न है । और इसमें इतने ही कोड एक भारतीय लिपि के लिए बन जाते हैं । ध्वन्यात्मक की-पेड (keypad) का मानक भी प्रचलन में है ।

अभी टेलेक्स पर कोर्ड और 'की-पेड' के डिजाइन इलेक्ट्रोनिकी विभाग के मानकों से भीन्न हैं । इस में कोई शंका नहीं कि भविष्य में वे समान होंगे जिससे टेलेक्स मशीनों को कम्प्युटर नेटवर्क से जोड़ा जा सके । निटेल, टाटा बरोज,

एच.टी.एच. ने इलेक्ट्रोनिक दूरमुद्रक टेलीप्रिंटर बनाए हैं (Fax) जिन्हें द्विभाषी मशीन के रूप में काम में ला सकते हैं। इन के लिए प्रस्तावित मानकों में हिंदी के कोडवाला डेटा (Data) को संप्रेषण भी सुनिश्चित किया जाना आवश्यक हैं।

आज के इस बदलते युग में सूचना का आदान-प्रदान ही प्रमुख हैं। दुनिया भर की माहिती आज आप तक इन्टरनेट, टेलीविजन, फोन, फेक्स पहुँचाई जाती हैं। इन सभी के कारण इन के उपकरणों और तकनीकों में भी परिवर्तन आया हैं। सामान्य उदाहरण ले तो जहाँ आज से दस साल पहले बीना वायर के फोन की कल्पना भी न थी किंतु आज मोबाईल हमारे सामने हैं। वो भी केमेरा, म्युझिक प्लेयर सहित यहाँ तक कि इन्टरनेट भी अब हमारे सेल फोन पर उपलब्ध हैं। जब ऐसे बड़े आविश्कार होते हैं, तो हमारे वैज्ञानिक उसमें भी कुछ फेर-बदल कर भारतीयों के अनुरूप उस उपकरण को बदल देते हैं। जैसे मोबाईल में भारतीय भाषाओं के विकल्प दिए जाते हैं।

लेपटोप, नोटबूक, टेबलेट जैसे अत्याधुनिक कोंपेक्ट कम्प्युटर में भी आज हिंदी एवं प्रादेशिक भाषाओं के फोंट उपलब्ध हैं। माना जाता हैं, इन्टरनेट पूरे विश्व को जोडता हैं तो आज इन्टरनेट में भी जो प्रमुख सर्च एंजीन हैं जैसे, याहु, गूगल (yahoo, googal) आदि उसमें भी हिंदी के विकल्प मौजूद हैं।

उपर्युक्त पूरे विचार विमर्श के आधार पर कहा जा सकता हैं कि जहाँ दूरसंचार में हिंदी का प्रयोग होने के कारण अधिक से अधिक लोग उनका फायदा उठाते हैं, तो दूसरी और ये उपकरण बनाने वाली अंतर्राष्ट्रीय कम्पनीयाँ भी लोगों की जरुरतों को

ध्यान में रखकर उन्हीं की भाषा की सुविधा उपलब्ध कराती हैं । और हिंदी संचार माध्यम की एक प्रमुख भाषा के रूप में उभर कर सामने आई हैं ।

## २.५ विज्ञापन क्षेत्र में हिंदी

### २.५.१ विज्ञापन की समज

'विज्ञापन' आज उपभोक्तावादी संस्कृति में लोगों में तरह-तरह का शौक पालने तथा उन्हें उस वस्तु की ओर आकर्षित बनाए रखने के बड़े ही आकर्षक, हृदयहारी, विशुद्ध व्यावसायिक स्तर पर किए गए लुभावने प्रयास हैं जो उपभोक्ताओं को विज्ञापित वस्तु की ओर लालायित करके उसे उस वस्तु मात्र की लत डालने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं । वैसे 'विज्ञापन' मूल रूप से राजनैतिक अर्थशास्त्र का हिस्सा हैं पर विश्वविद्यालय के कोमर्स के अभ्यासक्रम में 'व्यापार संगठन' अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम में मार्केटिंग के ये हिस्से हैं, तो विज्ञापन कला के पाठ्यक्रम में ये पत्रकारिता के अंग हैं । इस दृष्टि से विज्ञापन चाहे किसी भी क्षेत्र में आएँ पर ये हैं मूलत: विशुद्ध व्यावसायिक प्रक्रिया ही जिसके लिए प्रसारक, प्रकाशक या मीड़िया को भुगतान अनिवार्य रूप से करना होता हैं ।

विज्ञापन दृष्य या श्राव्य रूप में होते हैं तथा सूचनात्मक के अपने आवश्यक गुण के कारण बाजार तथा उपभोक्तावर्ग पर व्यापक प्रभाव डालते हैं अत: विज्ञान कोमर्स, अर्थशास्त्र, पत्रकारिता, संस्कृति तथा संचार के साथ-साथ समाजशास्त्र को भी अपना क्षेत्र बनाते हैं । विज्ञापन का एक मात्र उद्देश्य किसी वस्तु उत्पाद या सेवा के विक्रय यो लाभ को बढ़ाना होता हैं ।

मार्केटिंग में विज्ञापनों की अहम् भूमिका होती है । मार्केटिंग मुख्य चार हिस्से जैसे (१) निर्माण (२) कीमत (३) प्रमोशन (४) वितरण में विज्ञापन मूलत: प्रमोशन का हिस्सा है । विज्ञापन विज्ञापित वस्तु या ब्रांड को प्रमोट भी करते हैं । पेकजिंग के आकर्षक मार्केटिंग मिक्स में विज्ञापन धुरी का काम करते हैं । इस तरह विज्ञापन उत्पाद और उपभोक्ता के बीच सेतु का काम करते हैं ।

विज्ञापन में एक संदेश कुछ लोगों को लक्ष्य में रखकर उन्हें किसी वस्तु की ओर प्रेरित करने को उद्देश्य से होता हैं अत: विज्ञापन की इस आर्थिक, सामाजिक प्रक्रिया में उद्देश्य भी सुस्पष्ट होते हैं, यथा: संभवित उपभोक्ताओं के बीच किसी निश्चित उत्पाद या सेवा का परिचय देकर उनमें उत्पाद या सेवा के प्रति रूचि जाग्रत करना, विक्रेता के लिए ग्राहक पैदा करके बिक्री बढ़ाना, सर्वत्र अपनी पहुँच बनाना, बाजार की स्पर्धा का सामना करना और बिक्री बढ़ाना, उत्पादक की साख (विस्तार) बढ़ाना और बेहतर गुणवत्ता के साथ अविरत रूप से सेवा प्रदान करने की वचनबद्धता प्रस्तुत करना, प्रभावाली ढंग से वस्तु का विज्ञापन प्रस्तुत करके डीलरों तथा ग्राहकों को उत्पाद की ओर आकर्षित करता तथा डुप्लीकेट ब्रांडों (नकल) से सावधान करना आदि ।

विज्ञापनों का मुख्य काम ग्राहक या उपभोक्ता के उत्पादक वस्तु या सेवा के निकट लाकर उनमें समझ शक्ति पैदा करके उत्पादक एवं ग्राहक में सुद्रढ तालमेल बिठाना होता है । उपभोक्ता को उत्पाद के संबंध में सचेत करके उसे अपनी विज्ञापित वस्तु के अनुकूल बनाके अपने उत्पाद का उपभोक्ता बनाकर संतोष या आनंद प्रदान

करके अतिरिक्त सुख प्रदान करना भी हैं ताकि यह अतिरिक्त सुख उसे उस जैसी अन्य वस्तु की ओर आकर्षित न होने दे ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि विज्ञापन किसी उत्पाद या सेवा के संदेश को संभावित ग्राहकों को उस उत्पाद या सेवा का उपभोक्ता बनाने की एक लुभावती गतिविधि है । इस गतिविधि में किया गया विज्ञापन पर उत्पादक का व्यय भी उपभोक्ता की ओर स्थानांतरित हो जाता है, तथा विज्ञापन खर्च के उत्पाद की कीमत में जुड़ जाता हैं फिर भी उपभोक्ता उसे खरीदने के लिए दौड़ा चला आता है । मेरा मानना है कि विज्ञापन उपयोगित मूल्य और विनिमय मूल्य के बीच की ऐसी सुव्यवस्थित कड़ी हैं जो अभाव के शुद्ध खालीपन की ओर ले जाती हैं ।

## २.५.२ विज्ञापन के बारे में

विज्ञापन कला का विकास इंग्लेंड में हुआ था । और आधुनिक विज्ञापन कला का विकास अमरीका में हुआ । सन् १८४० से १९१५ का समय अमरीका मे आधुनिक विज्ञापन के जन्म का समय माना जाता है । पहली विज्ञापन एजंसी भी अमरीका में ही बनी तथा ततकालीन अराजकता ने औद्योगिक विकास में तेजी पैदा करके विज्ञापनकला को ओर शय दिया मतलब पानवाया ।

भारत में आधुनिक विज्ञापन का इतिहास प्रिंट मीडिया से जुड़ा हुआ हैं । इनकी शुरुआत अंग्रेजी कंपनी जे.वाल्टर टामसन ने की । जे. वाल्टर टामसन की विज्ञापन कंपनी आज की 'हिंदुस्तान टामसन' हैं । चैथे-पांचवे दशक तक कुछ भारतीय विज्ञापन कंपनियाँ भी बनीं । १९३०-४० के बाद प्रिंट मीडिया के अलावा सिनेमा और रेडियो

में भी विज्ञापन आने लगे । १९५० का दशक विज्ञापनों का स्वर्ण काल रहा । भारतीय ग्रामीण बाजार का पहली दफा सर्वेक्षण हुआ । विज्ञापनों में तेजी आई । सिनेमाघरों में दो-तीन मिनट की विज्ञापन फिल्में दिखाई जाने लगीं । १९५६ में कलकत्ता में पहला विज्ञापन कलब बना । प्रेस सिंडीकेट की रचना हुई । पश्चात् मार्केटिंग रेटिंग इन्डेक्स बनने लगे । दूरदर्शन को एक शक्तिशाली विज्ञापन माध्यम के रूप में पहचाना गया चूँकि पूरे भारत में मात्र दूरदर्शन चेनल का प्रसारण ही हो रहा था अतः अधिकतर लोगों को आकर्षित करने के लिए इन विज्ञापनों में भाषा का माध्यम केवल हिंदी ही रखा जाता था ।

१९८२ में रेडियो कोमर्शियल शुरू किए गए । कलर टी.वी. ने इसमें और रंग भरे । इंटरनेशनल एडवर्टाइजिंग एसोसिएशन का भारतीय अध्याय खुला । दूरदर्शन पर प्रयोजन आरंभ हुआ । १९९० में सेटेलाइट टी.वी. के आने से चैनलों के क्षेत्र में क्रांति आने से दूरदर्शन की पहुँच के साथ विज्ञापन ने कदम से कदम मिलाने की कोशिश करते-करते उडान ही भरनी शुरू कर दी । इस से पहले १९८२ के एशियाड ने टी.वी. को रंगीन बना ही दिया था और एशियाई खेलों के सिधे प्रसारण के साथ स्पोर्ट शूज दिखने लगे और खेल जूते लोकप्रिय होकर बाजार के केंद्र में आ गए और इस तरह अन्य वस्तुओं को विज्ञापित होकर बाजार गर्म करने के लिए लालायित कर गए जिसकी अंधी दौड़ आज भी बढ़ चढ़कर मची हुई हैं ।

### २.५.३ विज्ञापन में हिंदी

आज यह बात देखते ही माननी पडती हैं कि भारत में दूरदर्शन के अलावा जो प्राइवेट सेटेलाइट चैनल हैं जो ज्यादा से ज्यादा लोग देखते हैं, वे सभी हिंदी चैनल

हैं, चाहे वो 'झी' हो या 'सोनी टी.वी.', 'सब', 'स्टार' या कोई और । अब जाहीर सी बात हैं कि विज्ञापन एजंसिया भी उन्हीं चैनलों में अपने विज्ञापन प्रसारित करना चाहेंगी जो सबसे ज्यादा दर्शकों द्वारा देखी जाती हो । अत: इन सब चैनलों में वह अपना विज्ञापन देना पसंद करेंगे । चैनल हिंदी होने के कारण विज्ञापन भी प्राय: हिंदी में होते हैं ।

'इंडिया टुडे' का एक अध्ययन हैं जो विज्ञापन हिंदी में प्रसारित होता हैं उसकी माँग ज्यादा होती हैं । अन्य भाषा में प्रसारित हुए विज्ञापनों की तुलना में । इससे सिद्ध होता हैं कि भारत के विज्ञापन में हिंदी ने अपनी पकड़ जमा ली हैं । आगे के विज्ञापन की भाषा नामक अध्याय में यह मुद्दा विशेष स्पष्ट हो जाएगा ।

## २.५.४ विज्ञापन की भाषा

आज विज्ञापन हमारी जरूरतों को सुनिश्चित करने का काम करते हुए हमारी सुरुचि, इच्छा, आवश्यकता, स्टेटस आदि तय करने का काम करते हैं । रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, समाचार पत्र- पत्रिकाओं, होर्डींग्स बोर्ड, खरीद-वस्तुएँ, पोस्टकार्ड, इलेक्ट्रीक बील, टेलीफोन बील, गेस की रसीद, कोपी-किताबें सभी विज्ञापनों से भरे पडे हैं । उपभोग्य वस्तुएँ इनमें प्रमुखता से छाई रहती हैं । उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन साहित्यिक भाषा के व्यावसायिक पुट से मिश्रित होते हैं ।

चूँकि विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य विज्ञापित वस्तु के संबंध में उपभोक्ता को वस्तु की ओर आकर्षित करना और ग्राहक बनाने हेतु अपील करना होता हैं । अत: इस अपील का भाषायी प्रस्तुतीकरण चित्ताकर्षक, हृदयहारी और प्रभावशाली होगा

ही। विज्ञापन की भाषा आकर्षक, स्मरणीय, पठनीय, प्रभावी और विक्रय शक्तियुक्त होनी चाहिए ।

- उदाहरणः ''ठंडा मतलब कोका कोला !''

  यह वाक्य लोगों के दिलो दिमाग में छा गया हैं ।
- उदाहरणः सचिन तेंदुलकर एक पेय के विज्ञापन में कहता है-

  ''बुस्ट इस अ सिक्रेट ओफ माय एनर्जी ।

भाषा में अलंकारों, मुहावरों और सूत्रात्मक वाक्यों को अपना कर विज्ञापन कर्ता विज्ञापन की भाषा में चार चाँद लगा देता हैं । विज्ञापन की भाषा में निम्न लिखित गुण सर्वथा अपेक्षित हैं ।

१. विज्ञापन की भाषा संक्षिप्त किंतु पूर्ण होनी चाहिए ।

२. सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता है ।

३. अतिशयोक्ति एवं कृत्रिमता के लिए स्थान नहीं होना चाहिए ।

४. वस्तु से संबंधित आवश्यक गुणों और विशेषताओं का समावेश होना चाहिए ।

५. समयानुकूलता तथा नवीनता का पुट आवश्यक रूप से होना चाहिए ।

## २.५.५ विज्ञापन की भाषा के गुण

प्रो. एस.आर.डावर ने विज्ञापन को आकर्षक बनाने के लिए निम्न लिखित गुणों का होना आवश्यक माना हैं ।

१. ध्यानाकर्षण: अटेंशन वैल्यू

२. सुझाव तत्त्व: सजेस्टिव वैल्यू

३ स्मरणीयता: मेमोराइजिंग वैल्यू

४. विश्वसनीयता: कन्वीक्शन वैल्यू

५. भावात्मकता: सेंटीमेंटल वैल्यू

६. शिक्षणात्मकता: एज्यूकेटिव वैल्यू

७. प्रवृत्तिगत तत्त्व: इंस्टिंक्टिव वैल्यू

विज्ञापनों की भाषा के अनुवाद में मिक्षिका के स्थान पर मक्षिका रखकर अनुवाद नहीं किया जा सकता बल्कि भाव पकड़कर अनुवाद करना चाहिए । लेकिन और अधिक दिक्कत का सामना तब करना होता हैं जब मल्टीनेशनल कंपनियाँ अपने उत्पादों का अलग-अलग विज्ञापन अंग्रेजी भाषा में मूल रूप से बनवाकर फिल्मा लेती है और उसी विज्ञापन को मात्र विविध भाषाओं में डब करके प्रस्तुत करने के लिए अनुवाद करती हैं । ऐसे अनुवाद अनुवादक के सूझबूझपरक दृष्टिकोण तथा समस्त सावधानियाँ बरतने के बावजूद भी भाषायी दृष्टि से अंग एवं ओष्ठ संचालनगत वैषम्य दर्शक देख ही लेते हैं, फिर भी, विज्ञापित वस्तु अपना आकर्षण इस भाषागत विवशता के बावजूद भी बरकरार रख पाती हैं ।

दूरदर्शन, विविध चैनलों, समाचारपत्रों आदि में विज्ञापन ही विज्ञापन भरे होते हैं । दूरदर्शन के विविध चैनलों के कार्यक्रम प्रायोजित कार्यक्रम होते हैं जो विज्ञापित वस्तुओं की ऑक्सीजन पाकर ही प्रस्तुत हो पाते हैं । आज विज्ञापन मीडिया की आमदनी का अच्छा जरिया सिद्ध हो चुका हैं । अत: विज्ञापनों की भाषा और उसके अनुवाद की भाषा को आशानुरूप और अधिक सजना-सँवरना पड़ेगा ।

## २.६ खेल जगत और हिंदी

विश्व बाजार में आज तो खेल जगत भी अछुता नहीं हैं । आज खेल केवल खेल न रहेकर एक व्यवसाय के रूप में उभर रहा हैं । यह बात देखते ही बनती हैं कि खेल चाहे कोई भी हो उसके स्पोन्सर बड़ी-बड़ी कंपनियाँ ही होती हैं । इन खेलों के टूर्नामेंटों का आयोजन करके वे कंपनियाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना सिक्का जमाना चाहती हैं ।

भारत जैसे बहुआयामी राष्ट्र में खेल, खास करके होकी, क्रिकेट एक खेल के रूप में नहीं किंतु एक जनून की दृष्टि से देखा जाता हैं । भारत की एक तीहाई जनता इन खेलों का सिधा प्रसारण देखती हैं । इन परिस्थिति को देखकर खेल जगत में सबसे बड़ा बदलाव यह आया हैं । जो भी खेल दूरदर्शन द्वारा प्रसारित होता हैं । उनकी भाषा या कोमेंट्री हिंदी में ही होती हैं । जिनसे सभी लोग खेल का सही मजा ले सके । इन का सबसे बड़ा उदाहरण ले, तो अभी डी.अेल.अेफ. की होने वाली आइपीएल (इन्डीयन प्रीमीयर लीग) की श्रृंखला हो या २०-२० का वर्ल्ड-कप में भाषा माध्यम तो हिंदी ही होता हैं । अत: इस दृष्टि से कहा जा सकता हैं कि खेल में हिंदी ने अपना स्थान जमा लिया है ।

साहित्य या प्रशासनिक हिंदी से खेल की हिंदी बिलकुल अलग होती है । वाक्यरचना, उदाहरण, अनुवाद, शब्द सभी अंगों में परिवर्तन आ जाता है । उन परिवर्तनों और समस्याओं को विस्तार से निम्न रूप से देखा जा सकता हैं ।

## २.६.१ खेल की भाषा

खेलों की विपुलता होते हुए भी कुछ खेल क्रिकेट, वोलीबोल, फुटबोल, जिन्मास्टिक, आर्चरी, स्वीमिंग, दौड़, कार रेस, धुडदौड़, गोल्फ, विम्बल्डन टेनिस, टेबल टेनिस, कबड्डी आदि विशेष लोकप्रिय हैं । क्रिकेट तो इन सब में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं । क्रिकेट ने जनमानस में ऐसा जादुई लगाव पैदा कर लिया है कि- लोग अपना सारा काम बंद करके भी क्रिकेट मैच देखते हैं ।

क्रिकेट खेल से कोई भी वास्ता न रखने वाला सामान्य व्यक्ति भी इसका भरपूर आनंद उठाने लगा हैं तभी तो भारी कींमत होने पर भी स्टेडियम में सारे के सारे टिकट हाथों हाथ बिक जाते हैं तथा सीधे प्रसारण होने पर लोग मैच होने तथा हार-जीत का फैसला होने तक अपने सारे काम छोडकर टी.वी. से चिपके रहते हैं । अब तो ऊँची कींमत पर नकली टिकटों का भी कौभांड हुआ और उनका पर्दाफाश भी हुआ । सीधे शब्दों में, खेलकूदों का आयोजन व्यावसायिकता का जामा पहनकर उँची आमदनी का साधन बन चुका हैं । कभी किसी खास सिगारेट ने तो कभी उँची टाइटन जैसी घड़ियों ने खेलों का प्रायोजन करके खासी कमाई करके लोकचाहना का भरपूर फायदा उठाया हैं । उपभोक्तावाद के आधुनिक युग में स्पोर्टस स्टारों ने वस्तुओं के विज्ञापनों में अपनी खेल छवि को प्रस्तुत करके संबंधित वस्तुओं को अपने चाहकों में खूब बिकवाया है; साथ ही अपनी जेब भी खूब गर्म की हैं । अब यह सूत्र भी बनजाए तो उस में कोई नई बात नहीं कि-

'खेल में हिट तो सब जगह फिट'

भारत में खेलों के लिए बड़ा ही जोशीला माहोल सर्वत्र व्याप्त हैं तभी तो भारत में बहिरंग खेलों में होकी, फूटबोल, कबड्डी, खो-खो, तलवारबाजी, शुटींग आदि, घरेलु खेलों में शतरंज, कैरम, टेबल टेनिस, आदि तथा विदेशी खेलों में बास्केटबोल, बेडमिंटन, टेनिस आदि मशहूर होकर लोक प्रचलित हो गए हैं। खेलों ने अब अंतर्राष्ट्रीय धरातल प्राप्त कर लिया हैं तथा खेलों को व्यापक धरातल देने के उद्देश्य ने व्यावसायिकता का आवरण इन पर चढ़ा दिया गया है।

## २.६.२ अनुवाद समस्या एवं समाधान

खेलकुद का आकाशवाणी, दूरदर्शन, विविध चैनलों से सीधा प्रसारण होने पर तथा लोकप्रियता, व्याप्ति, राष्ट्रीयता, खेल की भावना आदि के बहाने बड़े उत्पाद गृहों ने इनकी लोकप्रियता को ताड़कर अपने उत्पादों द्वारा प्रायोजित करके या बीच-बीच में विज्ञापन दे-देकर मारी मुनाफा कमाने का खासा साधन बनाकर धन-यश लूटने की बखूबी कोशिश की है और इस कोशिश में भारी-सफलता भी हासिल की है।

खेलों के सीधे प्रसारण ने खेल कमेंटेटरों के लिए बड़ा ही अच्छा कैरियर बनाने का खजाना खोला हैं। भाषा पर अधिकार रखने वालों तथा संबंधित खेल तकनीक की जानकारी रखने वाले लोगों के लिए तो यह कैरियर सोने में सुहागा के समान सिद्ध हुआ हैं। बड़े-बड़े खिलाड़ी खेल से निवृत्ति लेने के बाद खेल कमेंटेटर बनने के सपने देखते हैं तथा जो बन जाते हैं उनका कैरियर और अधिक आगे बढ़ जाता है। जैसे 'नवजोत सिंह सींधु', सुनील गावस्कर, सबा करीम आदि। ऐसे लोगों के कैरियर में खेलकूद की भाषा, उसके तकनीकी शब्दों की पकड, तकनीक सूक्ष्म

जानकारी, उपयुक्त शैली आदि में महारत हासिल करने की आवश्यकता होती हैं। जो कमेंटेटर इसमें जितना अधिक अनुभवी, वह उतना ही अधिक कमेंटरी करने के लिए फिट। खेलकुद की भाषा में मूल, अनूदित, अर्ध अनूदित आदि शब्दावली का बखूबी प्रयोग होता है।

जो खेल विदेशों से लोकप्रिय होते-होते हमारे यहाँ आए हैं, उनमें विदेशी पारिभाषिक शब्द भी पर्याप्त मात्रा में हैं जिन्हें यथावत् अपनाने के सिवा ओर कोई चारा नहीं। जैसे क्रिकेट के शब्द-विकेट, रन, सेंचुरी, स्ट्रोक, स्लिप, पिच आदि; टेनिस में सिंगल, डबल, स्टार आदि; फूटबोल में गोल पैनल्टी, वोक आउट, फ्रि हिट, किक आदि। ऐसे ही भारतीय खेलों में अरबी-फारसी के शब्द; जैसेः शतरंज (चेस) में बेगम, वजीर, बादशाह, मोहरे, मात आदि। कई विदेशी खेलों के हिंदी शब्द भी बनाए गए हैं। और ये प्रचलित भी हुए:

जैसे: इनिंग के लिए पारी,

ड्रो के लिए अनिर्णीत मुकाबला,

ओपनिंग बैट्समेन के लिए सलामी बल्लेबाज,

फोर के लिए चौका, १०० के लिए शतक,

वैसे ही खेलकूद की भाषा में अर्ध अनूदित शब्द भी देखने को मिलते हैं;

जैसे: शानदार फोर्म, एकलटीम, पुराफोर्म आदि।

खेलकूद की भाषा भी एक प्रयुक्ति है। विशिष्ट प्रयोजन मूलक क्षेत्र होने के कारण पारिभाषिक, अर्धपारिभाषिक शब्दावली, प्रयोग एवं भाषा शैली की दृष्टि से खेलकूद की हिंदी भाषा अपनी स्वतंत्र पहचान बना चुकी हैं। यह हिंदी खेलकूद की

भाषा के रूप में प्रचलित हो गई हैं। खेलकूद के मनोरंजन से प्रत्यक्ष रूप में जुड़े होने के कारण खेलकूद की भाषा की वाक्य रचना चलताऊ, चटपटी एवं मुहावरेदार बन गई हैं। कमेंटेटर प्रभावशाली अर्थ में भाषा का प्रयोग करने के चक्कर में असामान्य वाक्य रचना भी निर्मित कर देता हैं जो कोमेंटरी के श्रोताओं को बड़ी आसानी से पूरी तरह गले उतर जाती हैं। व्याकरणिक दृष्टि से वाक्यरचनागत चुनाव भी उसे बखुबी करना होता हैं। कमेंटेटर का मुख्य काम भाषा के बहाव में खेल की रोचकता का मिश्रण करके प्रभावी रूप से श्रोताओं के कान में उतारना होना हैं ताकि खेल में दर्शक और श्रोता डूबकर उसका आनंद ले सकें और कोमेंटरी खेल बाधक नहीं अपितु साधक सिद्ध हो सकें। खेल की भावना का वर्चस्व भी इससे बना रहता हैं तथा खेल की समीक्षा भी होती रहती है। इस दृष्टि से कमेंटरी उत्साह की तरह को उपर तक ले जाने में सहायक होती हैं।

खेल का प्रमुख उद्देश्य चूँकि मनोरंजन है अत: संबंधित खेल की विशिष्ट शब्दावली बार-बार आकर कमेंटेटर की लच्छेदार भाषा की मिठास में घुल-मिलकर अलग ही मंतव्य पर बल देकर नीरसता को खत्म करके जानदार भाषा का बहाव एक लहर के रूप में व्याप्त करती हैं जिसे खेल भावना की लहर कहा जाता है। जानदार भाषा खेल को वेग देने का काम करती है। इस लिहाज से खेलकूद की वाक्य रचना, भाषा शैली, कहने का ढ़ंग बड़ा ही प्रभावशाली बनकर दर्शकों एवं श्रोताओं दोनों के गले आसानी से उतर जाता हैं। कुछ देखे :-

- जुझारू खिलाड़ी, चकमा देना, धाक कायम करना,
- गेंद लपकना, घुँएदार बल्लेबाजी, रिकोर्ड को धोना,
- कांटेदार मुकाबला, भिडंत होना, महारथी गेंदबाज,

खेल में किसी टीम की हार तो किसी की जीत निश्चित होती है । लेकिन खेल भावना उन्हें जीत का जश्न मनाने तथा हार से सबक सीखकर अपनी कमजोरियों को सुधारकर पुन: मैदान में उतरकर अगली बार हार को जीत में बदलने के लिए प्रेरित करती है और इस तरह इस खेल की भावना में इजाफा होता रहता है । जीते हुए खिलाडियों की भाषा का उल्लासमय होना तथा हारे हुए खिलाडियों की भाषा का विषादमय होना स्वाभाविक ही है । हारती या जीतती तो मात्र कुछ सदस्यों की टीम है लेकिन प्रयोग होता हैं-अमुक देश हारा या अमुक देश जीता ।

अत: खेलों का देश के स्वाभिमान से जुड़ जाना भी स्वाभाविक ही है । अंतर्राष्ट्रीय खेलों या ओलंपिक आदि में किसी देश की टीम के जीतने पर उस देश में अपार खुशी का माहोल छा जाता है, लोग अपनी खुशी व्यक्त करने के लिए तमाम तरीकों का इस्तमाल करते हैं, ढोल बजाते हैं, पटाखें फोड़ते हैं, नाचते हैं, खुशियाँ मनाते हैं । अपने देश की टीम वापसी पर उसकी गर्मजोशी से स्वागत करते हैं । राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केंद्रीय मंत्री, राज्यपाल आदि जितकर आए खिलाडियों को दावत देते हैं और उनका हौसला बढ़ाते हैं । साथ में खेल पुरस्कारों से प्रोत्साहित भी करते हैं ।

विजय की ओर अग्रसित टीम का मनोबल बढ़ाने के लिए कमेंटेटर की भाषा

भी उल्लास का पथ पकडती जाती है; यथाः दबदबा बनाए रखना, शीर्ष स्थान बनाना, सनसनी फैला देना, जौहर दिखाना, हथिया लेना, पूरे रंग में आना आदि । हार की ओर बढ़ने पर उत्साह को क्षीण करने वाली शब्दावली आ ही जाती है; जैसे: करारा झटका, घुटने टेक देना, फीका प्रदर्शन, पिट जाना, खरा न उतरना आदि ढुलमुल शब्दावली का प्रयोग ।

खेलकुद की भाषा में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली खेल के रूख की ओर भी संकेत करती जाती है । कमेंटेटर की भाषा शब्द एवं वाक्य रचना से पता चलता जाता है कि खेल किस टीम के पक्ष में आगे बढ़ रहा है । और उसका रूख किस ओर है।

उपर्युक्त पूरे विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि खेलकुद की भाषा हिंदी ने अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है तथा एक स्वतंत्र प्रयोजन मूलक हिंदी के रूप में पनपकर अपनी सर्वथा भिन्न स्वतंत्र शब्दावली विकसित कर ली है । खेल बुलेटिनों का प्रसारण, विभिन्न खेल पत्रिकाओं का नियमित रूप से निकलना, समाचार पत्रों में खेल पर कई पन्ने रहना तथा खेल खेल विशेषज्ञों का खेल की तकनीकों पर गहन चिंतन करना खेल-भावना के स्वस्थ विकास के साथ खेल को व्यावसायिक रूप देकर राष्ट्रीय भावना में इसके स्वरों को मिलाने का स्वस्थ प्रयास है । खेल जगत ने अनुवादकों कों के लिए अच्छा क्षेत्र पैदा किया है तथा समाचार पत्रों के खेल जगत के पन्ने तथा खेल पत्रकारिता में खेल से संबंधित अच्छे अनुवादकों की खपत तथा रोजगार मिलने के अच्छे अवसर भी उपलब्ध हुए हैं ।

दुभाषिए की क्षमता से परिपूर्ण अनुवादक कमेंटेटर के रूप में अपना कैरियर भी

बनाने लगे हैं। खेलकूद की भाषा के अनुवाद में खेलकूद की सूक्ष्म जानकारी के साथ विशिष्ट खेलकूद के क्षेत्र में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों के साथ विशिष्ट मुहावरों एवं भाषाशैली की समक्ष नितांत आवश्यक है। सर्वाधिक आवश्यकता है नियमित कलम घिसने या गले पर इस क्षेत्र की भाषा को विराजित करने की।

## २.७ बीमा व्यवसाय में हिंदी

दरअसल बीमा क्षेत्र एक स्वायत् सत्ता न रहेकर जन सामान्य के अधिकार की व्यवस्था बन गई है। बीमा का प्राचीन इतिहास विस्मृति के गर्भ में समाया हुआ हैं। बीमा की आधुनिक अवधारणा भी चार सौ वर्षों से अधिक पुरानी नहीं है। इस बीच मुस्लिम बहुल देशों में कहीं भी बीमा का प्रयत्न हुआ हो, ऐसे संकेत उपलब्ध नहीं है। परंतु आश्चर्य का विषय है कि 'बीमा' शब्द की व्युत्पति फारसी के 'बीम' शब्द से हुई है जिसका अर्थ भय या डर होता है अनपेक्षित हानी के भय निवारण को ही बीमा कहते हैं। पारिभाषिक रूप में एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की हानि को अपेक्षाकृत बड़े जन समुदाय में बाँट देना ही बीमा है। मनुष्य सदैव से अपनी संपत्ति को प्यार करता आया हैं। इसी के फलस्वरूप सबसे पहले संपत्ति का बीमा प्रारंभ हुआ। मानव जीवन का बीमा तो उसके बाद की बात है।

### २.७.१ बीमा अनुवाद एव समस्याएँ

बीमा की अवधारणा बहुत प्राचीन बताई जाती है। इसका उल्लेख हमारे पौराणिक ग्रंथों में भी मिलता हैं परंतु इस उल्लेख से यह कतई स्पष्ट नहीं हो पाता कि बीमा का तत्कालीन स्वरूप क्या था, बहर हाल यह एक सामाजिक सुरक्षा के रूप में संयुक्त

परिवार में व्याप्त था, इतना आभास तो मिलता ही है । जैसा कि हम जानते हैं, आज बीमा व्यवसाय एक विशाल उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है यहाँ तक कि पहले मात्र भारतीय जीवन वीमा निगम था अब तो कई सारी कंपनियाँ स्वायत रूप से बीमा व्यवसाय में अपनी जड़े जमाने की फिरात में हैं जैसे- रिलायंस, बजाज आलीयांस, टाटा, ए.आइ.जी., स्टेट बैंक, आइ.डी.बी.आई., आइ.सी.आइ.सी.आइ., कोटक महिन्द्रा और भी ढेर सारी । ये सारी कंपनियाँ विविध प्रकार की लुभावनी पोलिसियाँ ग्राहक को भरोसा दिलाकर बैचती हैं । इन प्लानों में ग्राहक को कम प्रिमीयम भरना होता हैं और ज्यादा पैसे और सुरक्षा मिलती है । क्योंकि यह कंपनियाँ ग्राहक से पैसे लेकर अपनी ही किसी योजना में उसका निवेश कर देती है और समय आने पर बाजार मूल्य के हिसाब से ग्राहक को भुगतान कर देती है । यह सारी स्कीम और प्लान प्राय मध्यमवर्गीय कर्मचारी ओर सामान्य लोगों के फायदे के लिए होते है, अत: उन लोगों के साथ व्यवसाय करने के लिए उन्हीं की भाषा में समझाना सरल होता है । अंग्रेजी के बदले हिंदी भाषा ही इस व्यवसाय का श्रेष्ठ माध्यम है । आज इन सभी कंपनियों ने प्रादेशिक, हिंदी और अंग्रेजी ऐसे तिन भाषाओं को सामूहिक रूप से चूना है ।

भारत में अंग्रेजों के आगमन और अंग्रेजी शासन स्थापित होने के बाद बीमा व्यवसाय नई अवधारणा के साथ एक उद्योग के रूप में प्रारंभ हुआ । विदेशी कंपनियों के साथ देशी कंपनियों ने भी बीमा कार्य का प्रारंभ किया । जैसा कि हमने उपर देखा कि जो विदेशी कंपनियाँ थीं वह भारत में अपने ग्राहकों को प्राप्त करने के लिए भारतीय भाषाओं का सहारा लेने लगीं तो देशी कंपनिओं ने मूल भारतीय भाषाओं के

साथ अपनी अलग बीना कंपनियाँ खोली क्योंकि पहले के समय में अर्थात् अंग्रेजों के समय में राजकाज की भाषा अंग्रेजी होने के कारण सारा कार्य अंग्रेजी में ही होना था। बीमा संबंधी प्रारूप पोलीसी तथा अन्य साहित्य अंग्रेजी में रचा गया था ।

चूँकि बीमा का कार्य उस समय धनी, शिक्षित व्यक्तिओं तक ही सीमित था सो देशी भाषाओं के प्रयोग की आवश्यक ज्यादा महसूस हुई किंतु बादमें समय के साथ यह विचारधारा भी बदली । अब बीमा सामान्य मनुष्य के लिए भी है । स्वतंत्रता के बाद यह परिवर्तन और भी व्याप्त हुआ । स्वदेशी आंदोलन के परिणाम स्वरूप देशी भाषाओं का वर्चस्व बढ़ने लगा । सरकार के प्रयासों के कारण भी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग को बल मिला । जीवन बीमा उद्योग के १९५६ में राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, उनके उद्देशों के तहत बीमा का प्रसार सुदूरवर्ती क्षेत्रों में आवश्यक हो गया। परंतु सुदूर अंचलों में अंग्रेजी भाषा न तो कोई लिख-पढ़ सकता है और न ही कोई समझ सकता है । अत: जन भाषा ही एक मात्र व्यवसाय की भाषा का माध्यम बनने योग्य थी ।

उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, अंडमान निकोबार के क्षेत्र अन्य आंचलिक बोलियों के साथ मुख्य हिंदी भाषी क्षेत्र हैं। इनमें हिंदी बोलनेवालों की संख्या लगभग ३८ करोड हैं ।

अत: हिंदी राजभाषा होने के साथ ही जो बीमा साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध था उसके हिंदी में अनुवाद की समस्याएँ प्रस्तुत हुई ।

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कार्य को आज भी उतना महत्त्व नहीं दिया जाता हैं जितना कि उसे मिलना चाहिए। इसका कारण हैं कि अनुवाद की सृजनात्मकता के प्रति अज्ञानता और कुछ सीमा तक इस संबंध में दुराग्रह, वास्तव में अनुवाद-विज्ञान, शिल्प और कला तीनों ही हैं। अनुवादक एक सृजनकर्ता होता है और उसका उत्तरदायित्व मौलिक लेखक से कहीं अधिक गंभीर होता है।

संविधान में हिंदी को राजभाषा का स्थान मिलने के बावजूद हिंदी की स्थिति दयनीय बनी रही। अंग्रेजी मानसिकता के कारण हिंदी को स्वेच्छा से नहीं अपनाया गया। लोगों में हिंदी प्रेम क्यों जाग्रत नहीं हो सकता यह अलग से विचारणीय विषय है परंतु इसके मूल में यह बाधा अवश्य रही हैं कि हिंदी माध्यम से शिक्षा प्राप्त लोगों को रोजगार के अधिक अवसर सुलभ नहीं हुए। जीवन बीमा संस्था में तथा अन्य वित्तिय संस्थाओं में यह मानसिकता आज भी विद्यमान है जिसका ज्वलंत उदाहरण है नौकरी के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं का अंग्रेजी में संचालित होना।

बीमा व्यवसाय के ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार के साथ हिंदी में अनुवाद की तीव्र आवश्यकता अनुभव की गई। दूसरी और राजभाषा नीति के परिपालन की कानूनी बाध्यता के कारण भी अनुवाद के शरण में जाना पड़ा। परिणामतः अनुवाद केवल आवश्यकता की परिपूर्ति और उत्तरदायित्व का निर्वाह मात्र बन पड़ा। 'भारतीय जीवन बीमा निगम' भी इन्हीं बाध्यताओं की सीमा में रहकर ही अनुवाद की ओर मुड़ा। इससे कई समस्याएँ और उभरी लेकिन उसके निराकरण के प्रयासों का अभाव ही रहा।

○ बीमा साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं :

**१. अस्थायी अनुदित साहित्य**

इसमें विज्ञापन, परिपत्र, कार्यालय आदेश, प्रेस विज्ञप्ति, सूचनाएँ आदि सम्मिलित है।

**२. स्थायी अनुदित साहित्य**

इसके अंतर्गत संविदा, पोलीसी, दस्तावेज, लेखन सामग्री, मैनुअल आदि समाहित है।

अस्थायी साहित्य हेतु, हिंदी या अंग्रेजी में कार्य करने का विकल्प उपलब्ध है। विज्ञापन और प्रेस-विज्ञप्तियों के माध्यम से संस्था का जन-मानस से सीधा संपर्क जुड़ता है। विज्ञापन, व्यावसायिक विज्ञापन एजंसियों द्वारा परिमार्जित किए जाने के कारण उच्च कोटी की संप्रेषणीय भाषा में प्रसारित किए जाते हैं। प्रेस विज्ञप्तियाँ मूल रूप से अंग्रेजी में लिखि जाति है और विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा हिंदी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में अनुदित करके जारी की जाती है।

स्थायी अनुदित साहित्य के अंतर्गत पोलीसी, दस्तावेज की भाषा महद अंश में कानूनी अधिक और व्यावहारिक कम है। इसका हिंदी में सरल, सुबोध और सहज अनुवाद आवश्यक है ताकि पोलीसी धारक उन शर्तों को भली-भाँति समझ सकें जिनका परिपालन करना उनके लिए संभव या इच्छनीय है। अनुदित सामग्री की जटीलता के कारण पोलीसी धारक पोलीसी की शर्तों एवं सुविधाओं को समझने से भी वंचित रह जाता है। इसके कारण शिकायतें उठती हैं और उनका निराकरण अलग से करना पड़ता है।

निगम एक जनसेवा संगठ है, जिसका कार्यव्यापार देश के सुदूर क्षेत्रों तक परिव्याप्त है। अपने पोलीसी धारकों से संविदाओं की दीर्घ अवधि में पत्राचार द्वारा

पोलीसी सेवा सुलभ कराए रखना निगम का व्यावसायिक उत्तरदायित्व है । इस दिशा में कर्मचारियों के उपयोग हेतु नियमावलियों और मार्गनिर्देशिकाएँ हिंदी भाषा में उपलब्ध कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है । पोलीसी सेवा संबंधी सभी मैनुअल हिंदी में अनुदित हुए हैं, प्रस्ताव पत्र, विवरणिका आदि भी हिंदी में उपलब्ध हैं । कार्यालय में दैनिक कार्य में प्रयोगार्थ बीमा शब्दावली भी हिंदी में प्रकाशित की गई है । केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषदने 'जीवन बीमा- टिप्पणियाँ और प्रारूप' नामक पुस्तिका प्रकाशित की है ।

यहाँ फार्मों, नियमावलियों के अनुवाद तथा बीमा शब्दावली के संकलन पर विचार करना समीचीन होगा ।

'फोर्म' अत्यंत व्यापक शब्द है और इसके विभिन्न अर्थ हैं, यथा-साँचा, प्रारूप, स्वरूप, आकार, रचना, विन्यास, ढाँचा आदि । कार्यालयों के संदर्भ में संकुचित अर्थ का प्रयोग करते हुए एक विशिष्ट प्रकार के खले पन्ने को फोर्म कहने की परंपरा मिलती है ।

'फोर्म कार्यप्रणाली को सरल सुस्पष्ट और सुविधाजनक बनाते हैं । इनका आंतरिक और बाह्य प्रयोग होता है । इनके प्रयोग में समय, श्रम और व्यय की बचत तो होती ही है, साथ ही कार्यप्रणाली में गतिशीलता आती है, अभिलेख रखने में सुविधा होती है अध्ययन विश्लेषण, निरूपण का क्षेत्र व्यापक बनता है तथा आवश्यक और अनपेक्षित बातों से मुक्ति मिलती है । अपने स्वरूप के कारण फार्म में वर्णानत्मकता या विवरणात्मकता को कम स्थान मिला होता है परंतु मूल फोर्म जो बीमा संविदा का आधार है, काफी विस्तृत होता है ।

निगम के प्रयोगार्थ लगभग सभी फोर्म मूलत: अंग्रेजी में ही होते हैं और आवश्यकतानुसार उनका अनुवाद हिंदी में किया जाता है । आम तौर से अधिकांश अनुदित फोर्मों की भाषा सरल होती है परंतु विधिक दृष्टिकोण सन्निहित होने पर भाषा असहज हो जाती है । दरअसल बात प्रस्तावपत्र में दी गई प्रस्तावक की घोषणा और पोलीसी फार्मों से है । यहाँ उनके विस्तार की आवश्यकता नहीं है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पोलीसी-सेवा से संबद्ध जीवन बीमा निगम के सभी मैनुअल, अभिकर्ता हेतु मैनुअल तथा अन्य विषयों से संबंधित कुछ मैनुअल हिंदी में अनुदित किए गए हैं, कार्यालय के दैनिक कार्य में सहायक यह अनुदित साहित्य स्तरीय कतई नहीं हैं । अनुवाद न केवल जटील है, हिंदी प्रयोग भी सरल नहीं है । यह तो भलीभाँति विदीत हैं कि अनुवाद ने न तो हिंदी भाषा को समृद्ध बनाया है और न ही उसके स्वरूप को निखारा हैं । हाँ अभिव्यक्ति में अवश्य विकास हुआ हैं परंतु साथ ही सहजता का मानो ह्रास ही हो गया । इन विसंगतियों के कारणों पर समग्र रूप से विचार करने पर हम समस्या के मूल तक पहुँचकर उसका उपचार कर सकते हैं।

o **समस्या के प्रमुख कारण ये हैं ।**

१. अनुवाद कार्य प्रारंभ करने से पूर्व इस हेतु निगम के पास कोई निश्चित योजना नहीं थी, इस कारण अनुवाद हेतु आवश्यक उपादान भी नहीं जुटाए जा सके ।

२. अनुवाद आरंभ से पूर्व बीमा व्यवसाय में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों का मानकीकरण नहीं किया गया । यह कार्य अभी तक अपूर्ण है । इस कारण अनुवादकों ने स्वेच्छा से काम लिया । एक ही अंग्रेजी शब्द के

लिए विभिन्न स्थानों पर अलग अलग हिंदी शब्द प्रयोग किए गएँ। जैसे 'नोमिनेशन' के लिए कहीं 'नामन' शब्द प्रयुक्त हुआ तो कहीं नामांकन लिखा गया। 'लेप्स' के लिए 'बंद' और 'कालातीत' दो शब्द मिलते हैं।

३. अनुवाद कार्य में स्वेच्छाचारिता का कारण है प्रशिक्षित या अनुभवी अनुवादकों की सेवाओं का अभाव। अनुवाद का कार्यभार हिंदी प्रकोष्ट पर डाला गया। हिंदी प्रकोष्ट के लिए अधिकारियों और कर्मचारियों का चयन करते समय यह ध्यान नहीं रखा गया कि वे हिंदी की पृष्ठभूमि से जुड़े हो क्योंकि प्रकोष्ट का मुख्य कार्य राजभाषा कार्यान्वयन तक सीमित रहा है।

४. पदबंधों के कोश, पारिभाषिक शब्दावली तथा बीमा में प्रयुक्त कुछ अति विशिष्ट शब्दों की व्याख्या करने का कार्य अपूर्ण रहा। निगम में प्रचलित बीमा शब्दावली एक अपूर्ण प्रयास भर तक सीमित है।

उपर्युक्त बातों को देखकर सहज निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय जीवन बीमा निगम में हिंदी प्रयोग और अनुवाद कार्य दुर्दशा के द्वार पर है।

इन अनुवाद समस्याओं के लिए संक्षेप में कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं।

१. शब्दों के मानकीकरण हेतु एक स्वतंत्र समिति की रचना होनी चाहिए। इन समिति के सभ्य केवल दोनों भाषाओं के ज्ञाता ही नहीं अपितु बीमा परीक्षाओं और व्यवस्था क्षेत्र से भी परिचित हो। इस में शब्दों के मर्म, गहराई और विषय संबंधता आसानी से आत्मसात् की जा सकेगी।

२. मानकीकृत शब्दों को संकलित कर पुस्तक रूप में सभी कार्यालयों में पहुँचाया जाए प्राय: उच्च स्तर पर कार्य हो जाता हैं परंतु नीचे तक जाते-जाते प्रवाह अवरुद्‌ध हो जाता है ।

३. अति प्रचलित शब्दों, पदबंधों, वाक्यों के संदर्भ से जुड़े शब्द लिए जाए और वैकल्पिक शब्दों की भी व्यवस्था की जाए ।

४. शब्दों के सरलीकरण का मोह त्यागा जाए क्योंकि इससे जहाँ भाषा में विरूपता आती है, वहीं प्रयोगकर्ता को सीखने के लिए कुछ शेष नहीं रहता । हाँ, दुरुहता से बचना अपरिहार्य होगा और प्रचलित शब्दों को सही संदर्भ से जोड़ना होगा ।

## २.८ आकाशवाणी और हिंदी

वैसे तो आगे के प्रकरण 'जसंचार माध्यम में आकाशवाणी (रेडियो) का समावेश हो जाता है किंतु यहाँ केंद्र सरकार के कार्यालय के रूप में होनेवाले हिंदी प्रयोग एवं प्रसारण में कार्यक्रमों को हिंदी भाषा प्रयोग पर तथा आकाशवाणी के स्वरूप को विशिष्ट रूप से देखा गया है ।

### २.८.१ परिचय

संचार के माध्यमों में एक के बाद एक अनेक तकनीकी आविष्कार हो रहे हैं । टेलिफोन के बाद रेडियो की खोज ने संचार प्रक्रिया को दूरस्थ स्थानों तक संभव बना कर मनुष्य एवं समाजों को आपस में जोड़ा है । रेडियो ऐसा संचार माध्यम है, जिससे व्यापक जन समुदायों तक एक साथ संदेश पहुँचाया जा सकता है ।

ट्रांजीस्टर संचार का सस्ता सुविधाजनक एवं लोकप्रिय साधन बन गया हैं । निरक्षर लोग भी इस माध्यम से रुचिपूर्वक संदेश ग्रहण कर सकते हैं ।

एक साथ बैठकर मनोरंजन परक कार्यक्रम सुन सकते हैं, देश-विदेश के समाचार सुन सकते हैं, घटनाओं का विश्लेषण समझ सकते हैं, नई-नई जानकारियाँ पा सकते हैं।

प्रिंट मीडिया की सबसे बड़ी सीमा यह हैं कि वह निरक्षरों की विशाल जन संस्था के लिए अनुपयोगी है । दूसरी सीमा यह हैं कि समाचार पत्र तक समाचार पहुँचने, समाचार-पत्र (अखबार) मुदित होने और व्यापारी द्वारा पाठकों तक पहुँचने के बीच अधिक समय व्यय हो जाता है । इस तरह प्रिंट मीडिया समाचारों को उतनी तीव्र गति से नहीं पहुँचाता जितना रेडियो पहुँचाता है ।

## २.८.२ आकाशवाणी विकास एवं स्वरूप

भारत में रेडियो प्रसारण का इतिहास सन् १९२६ से शुरु होता है । मुंबई, कोलकाता तथा चेन्नइ में व्यक्तिगत रेडीयो क्लब स्थापित किए गए थें । इन क्लबों के व्यवसाइयों ने एक प्रसारण कंपनी गठित करली थी और निजी-प्रसारण सेवा शुरु कर दी । १९२६ ई. में ही भारत सरकार ने इस प्रसारण कंपनी को देश में प्रसारण केंद्र स्थापित करने का लाइसंस (अनुमति) प्रदान किया । इस कंपनी की ओर से पहला प्रसारण २३ जुलाई १९२७ को बंबई से हुआ । इसे प्रसारित किया था इंडिया ब्रोडकास्टींग कंपनी ने ।

कोलकाता केंद्र का उदघाटन गवर्नर सर स्टेनली जैक्सन ने किया था । २६ अगस्ट १९२७ को बंगला में समाचार बुलेटिन का प्रसारण हुआ था । इस प्रकार बंगला

को प्रादेशिक भाषाओं में सबसे पहले रेडियो पर समाचार बुलेटिन के रूप में प्रसारित होने का श्रेय प्राप्त है ।

दरअसल यह एक संघर्षपूर्ण शुरुआत थी । कम शक्ति के मध्यम तरंग, प्रेषक, लाईसेंस की अपेक्षा कम आय तथा लागत की अधिकता आदि कारणों से यह कंपनी बंद होने की स्थिति में आ गई । १९३० में सरकारने प्रसारण सेवा का प्रबंध अपने अधिकार में ले लिया । उसी समय सरकार ने 'इंडियन ब्रोडकास्टींग सर्विस' के नाम से एक नया सरकारी उपक्रम शुरु किया । इसके अधिन मुंबई और कोलकाता के केंद्र कार्य करने लगें । अब इसका नाम 'इंडियन स्टेट ब्रोडकास्टींग सर्विस (I.S.B.S.) हो गया । यह सर्विस आगे विकसित होती चली गई और बाद में चलकर इसका नाम 'ओल इंडिया रेडियो' हो गया ।

जब देश आजाद हुआ, तो सन् १९५७ में भारत सरकारने इस संगठन का नाम 'आकाशवाणी' घोषित किया, जो मैसुर रियासत के रेडियो स्टेशन का नाम था । किंतु 'आकाशवाणी' नाम का प्रयोग हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में ही हो रहा था अंग्रेजी प्रसारणों और विदेशी सेवा के प्रसारणों में अब भी 'ओल इंडिया रेडियो' ही प्रसारित होता था ।

स्वतंत्रता के बाद से 'आकाशवाणी' का व्यापक प्रसार हुआ । १९४७ में जहाँ सारे देश में मात्र छ प्रसारण केंद्र, एक दर्जन ट्रांसमीटर और दो ढाई लाख रेडियो सेट थें वहीं आज हमारे पास ५०० से अधिक रेडियो स्टेशन हैं जो ९० प्रतिशत के लगभग जन संख्या को अपनी प्रसारण सीमा में लिए हुए हैं । करीब २० करोड या उससे अधिक रेडियो सेट घरों में बज रहे हैं ।

हमारे देश में ही नहीं, दुनिया के प्राय: सभी देशों में रेडियो-प्रसारण की स्थिति में आशातीत प्रगति हुई हैं और इस जन माध्यम को एक व्यापक समाज रुचिपूर्वक अपना चुका है ।

यह रेडियो की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण हैं कि इस जन माध्यम की क्षमता के कारण दुनियाभर में रेडियो सेट की संख्या १९६० से २००८ के बीच नौ गुनी बढ़ी और उसमें भी खास करके एफ.अेम. रेडियो के बाद तो उससे भी अधिक बढ़ी। जैसे 'रेडियो सीटी', 'बीग एफ.एम.', 'रेडियो मिर्चि' आदि । नए-नए देशों में रेडियो स्टेशनों की स्थापना हुई और उनका विस्तार हुआ । १९७५ में १८७ देशों में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार केवल तीन देशों में कोई रेडियो स्टेशन नहीं था । माना जाता हैं कि विश्व के हर तीसरे व्यक्ति को रेडियो प्रसारण सुनने की सुविधा उपलब्ध है ।

## २.८.३ आकाशवाणी सेवा

वर्तमान समय में आकाशवाणी से २४ घंटे में २८४ समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं । एक छोटा सा समाचार बुलेटिन पांच मीनट का और बड़ा १५ मीनट का होता हैं । सामान्य समाचारों के अलावा 'समाचार पत्रों से टिप्पणीयाँ, लोकरुचि के समाचार भी प्रसारित होते हैं । प्रात: आठ बजे समाचार प्रभात और सवा आठ बजे 'मोर्निंग न्युज' के कार्यक्रमों ने समाचार बुलेटीनों को नया आयाम प्रदान किया है । यह मिला-जुला कार्यक्रम समाचारों के साथ किसी एक प्रमुख विषय पर वार्ता, सुबह अखबारों की सुर्खियाँ और फिर मुख्य समाचार दोहराता है ।

श्रोताओं से बात-चित का कार्यक्रम भी प्रसारित होता हैं और विकास यात्रा

जैसे हिंदी कार्यक्रम ने देश की विकास संबंधी गतिविधियों को सामने लाने का अच्छा प्रयास किया है । इसी तरह कुछ और प्रभावशाली कार्यक्रम लोकप्रिय हुए है, जैसे साप्ताहिकी, संसद-सभा, युवावाणी, चुनाव और उनके परिणाम, कृषिमित्र, लाइव कोमेंटरी आदि ।

राष्ट्रीय प्रसारणों के साथ ही आकाशवाणी ने प्रादेशिक सेवाओं को भी महत्त्व दिया है । विभिन्न प्रदेशों की राजधानियों एवं प्रमुख नगरों में आकाशवाणी के ४२ एकांश हैं । जहाँ से १५० समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं । दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रादेशिक भाषाओं के समाचार इन भाषाओं में होते हैं । असमियाँ, नेपाली, कन्नड़, कश्मीरी, डोंगरी, बंगला, मलयालम, उड़िया, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, सिंधी, उर्दू, संस्कृत ।

ये रूपरेखा आकाशवाणी के केवल सूचनापरक कार्यक्रमों, विशेषरूप से समाचार बुलेटिनों की हैं । इसके अतिरिक्त अन्य बीसियों कार्यक्रम हैं परंतु यह उदाहरण के तौर पर है ।

आज रेडियो संचार का एक सशक्त जन माध्यम है । इसकी उपरिहार्यता एवं व्यापकता से कोई परिचित न हो ऐसा नहीं है । यह माध्यम लोगों को आपसी अनुभवों के जरिए एकदूजे से जोड़ता हैं और ऐसे विषय प्रदान करता है, जिन पर संवाद हो सके। एक जागरूक श्रोता का दिन रेडियो से शुरु होता है और रात भी रेडियो की आवाज के साथ बंद होती है । सीमित शब्दों में कहे तो कहा जा सकता है कि रेडियो जन-जीवन का एक आवश्यक कारक बन चूका है इसमें कोई दो राय नहीं । चाहे हम घर में हों, बाहर हों, कही जा रहे हों या कोई काम कर रहे हों, रेडियो एक साथी

का काम करता है । केवल शिक्षित ही नहीं निरक्षर व्यक्ति भी इस जन-माध्यम से आत्मीयता रखते है ।

आकाशवाणी रेडियो कंट्रोल रूम में कई इकाई होती हैं जिसमें एक 'हिंदी युनिट' भी होता हैं जो इस प्रकार से कार्य करता है ।

हिंदी युनिट भारतीय भाषाओं की युनिट से एक स्वतंत्र युनिट है । हिंदी भाषा में प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों का चयन एवं संपादन जहाँ अलग से किया जाता है । प्रत्यक्षत: इस युनिट का संबंध जनरल कंट्रोल रूम से नहीं होता । इस युनिट में अलग से टेलिप्रिंटर आदि लगे होते हैं ।

आकाशवाणी के कार्यक्रमों के दौरान आने वाले विज्ञापन हिंदी में होते हैं । तथा एंकरींग भी हिंदी में किया जाता है । जिस के कारण आकाशवाणी की लोकप्रियता में बढ़ौती हुई है । सामान्य देहाती जनता भी इस कारण थोड़ा-थोड़ा हिंदी सीख गई है। हिंदी का प्रचार-प्रसार करने का यह एक अति सरल एवं उत्तम मार्ग है ।

'आकाशवाणी' के कार्यालयों में भी प्राय: कार्य हिंदी में ही संपन्न होते हैं । सभी अधिकारी अपनी जिम्मेदारियों को समझकर हिंदी में ही कार्यवहन करते हैं । हिंदी ने आकाशवाणी के क्षेत्र में पदार्पण करके अपना एवं राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है ।

आज-कल खुल रहे नए-नए एफ.एम. स्टेशनों में भी मुख्य भाषा के रूप में तो हिंदी ही विद्यमान हैं । इसी से पता चलता हैं कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है ।

## २.९ दूरदर्शन और हिंदी

प्राय: जन संचार माध्यमों को आगे हमने देख लिया है किंतु यहाँ विशेष रूप से दूरदर्शन में प्रयुक्त हिंदी पर संक्षेप में विचार किया जाएगा ।

यहाँ पर एक बात यह समझ लेना आवश्यक है कि दूरदर्शन का अर्थ टेलीविजन और बिना हााईफन के दूरदर्शन एक चैनल के संदर्भ में हैं । हमारे यहाँ का टी.वी. इतिहास देखे तो कुछ इस प्रकार से है ।-

भारत में प्रथम प्रायोगिक टी.वी., केंद्र का उद्घाटन १५ सितंबर, १९५९ को देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हाथों सम्मपन हुआ । १ अप्रैल, १९७६ से हमारे यहाँ टेलीविजन 'दूरदर्शन' नाम से आकाशवाणी से पृथक होकर स्वतंत्र अस्तित्त्व में आया । आज तो इन के ३० से भी उपर चैनल हैं । 'दूरदर्शन' के अलावा भी सैंकडों चैनले अब मिड़ीया के विश्व में प्रविष्य हो चूकी हैं । इन सब के बावजूद जिस प्रकार अनेकों, चेनल, टी.वी. वीडीयो, डी.वी.डी., आ गए फिर भी रेडियो ने अपना स्थान बरकरार रखा उसी प्रकार दूरदर्शन ने समय-समय पर अपने आप को परिवर्तन करके अपना स्थान एवं महत्त्व यथावत रखा है ।

दूरदर्शन अब एक ऐसा माध्यम है जिसे बहेरे-गुंगे भी देख सकते हैं और अंधे सुन सकते हैं । व्यक्ति को समाचार, फिल्में, नई-नई गतिविधियों से परिचित रखकर दुनिया के साथ कदम मिलाने के काबिल बनाया हैं । हमारे देश का दूरदर्शन लोकप्रिय होने के प्रयत्न में कभी-कभी सस्ते मनोरंजन की ओर भी झुक जाता है । वास्तव में दूरदर्शन को ऐसे कार्यक्रमों का निर्माण करना चाहिए जो सूचना परक हो, मनोरंजक ढंग से जन सामान्य को शिक्षित कर सके और जो बुद्धिमता के साथ मनोरंजन प्रदान करे। हमारे दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को दो वर्गों में रखा जा सकता है ।

१. ऐसे कार्यक्रम जिनमें उच्चरित शब्द का महत्त्व सर्वोपरि है ।

और

२. ऐसे कार्यक्रम जिनमें संगीत एवं मनोरंजन ही एक मात्र लक्ष्य है ।

प्रथम वर्ग के कार्यक्रम हैं- समाचार वार्ता, साक्षात्कार, रिपोर्ट, नाटक, धारावाहिक परिचर्चा, रूपक या फीचर, कोमेंटरी, क्रिकेट आदि मेचों का सिधा प्रसारण, वृत्तचित्र (Documentary Film), कवि संमेलन और मुशायरा । यु.जी.सी., एन.सी.ई.आर.टी. के शिक्षा संबंधी कार्यक्रम आदि ।

द्वितीय वर्ग के कार्यक्रमों में आते हैं - फीचर फिल्म, फिल्मी गाने, एवं संगीत, लोकगीत संगीत, पारंपरिक संगीत, सुगम संगीत (Light Classical), शास्त्रीय संगीत, गायन, वाद्य संगीत (instrumental) आदि ।

इनके अतिरिक्त विभिन्न धारावाहिक कार्यक्रम भी बहुत बड़ी संख्या में प्रसारित होते हैं । आजकल तो रियालीटी शो का बोलबाला है । इन कार्यक्रमों में उच्च शब्दावली नृत्य संगीत एवं मनोरंजन का अनोखा मेल होता हैं । ऐसे कार्यक्रम उपर्युक्त दोनों विभागों के मध्य में स्थित है ।

दूरदर्शन के आने के बाद सामान्य जनता में भी शिक्षा का स्तर उपर उठा है। उन में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की विविध लोगों पर अलग-अलग असर देखने को मिली । साहित्यप्रिय लोगों के लिए साहित्य संबंधी कार्यक्रम आ रहे थें । साहसवृत्ति रखनेवालों के लिए एडवेंचर के प्रोग्राम भी प्रसारित होते थें । संगीत में रूचि रखनेवालों के लिए शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम उपलब्ध था । उसी प्रकार खेल के शौकीनों के लिए उनका (खेल) सिधा प्रसारण भी उपलब्ध था ।

विविध कार्यक्रमों ने एक प्रकार से व्यक्ति के जीवन में रंग भरने का काम किया। व्यक्ति का नजरीया बदला, तौर-तरीके बदले, और दूरदर्शन समाज का आइना बनकर सामने आया । इस कारण सेंकडों लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुआ । क्योंकि समय- समय पर दूरदर्शन के प्रादेशिक चैनलों में रोजगार समाचार प्रसारित होते हैं जिनसे पढ़े लिखे लोगों को व्यवसाय प्राप्त हुआ । भारत सरकार का सीधा संपर्क अब आम आदमी से हो गया । राष्ट्र के नाम संदेश में प्रधानमंत्री सीधे देश के लोगों से बात कर सकते हैं ।

प्रायः सभी कार्यक्रम हिंदी में होने के कारण लोगों की हिंदी के प्रति विशेष रूचि बनी । देहाती लोग अब दूरदर्शन के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । शिक्षा संबंधी भी कई विशेष कार्यक्रम प्रसारित होते हैं । पूरे भारतवर्ष को हिंदी के माध्यम से जोड़ ने का काम दूरदर्शन ने बडी दक्षता से किया है । क्योंकि इस चैनल के सारे कार्यक्रम हिंदी में ही प्रसारित होते हैं । अत: लोगों को भी इन्हें समझने के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य लेना पड़ेगा । एक सर्वे के अनुसार पीछले सात वर्षों में दूरदर्शन के कारण लोगों में भाषा, व्यवहार और फैशन में परिवर्तन आया है ।

इस बदलाव को देखकर सोचा जा सकता हैं कि लोग किस हद तक टी.वी. से जुडे हुए हैं। भले ही लोग केवल मनोरंजन के लिए दूरदर्शन को देखते हों, पर साथ ही उनका का ज्ञान भी बढ़ रहा है ।

आज दूरदर्शन पर विदेशी कार्यक्रम एवं समाचार भी हिंदी माध्यम से प्रसारित हो रहे हैं जिन के कारण देश के लोगों को विश्व में हो रही अनेक गतिविधियों के बारे

में जानकारी रहे। यह एक सराहनीय कदम माना जा सकता हैं। दूरदर्शन का राष्ट्रीय चैनल अब विविध प्रांतों में अपने नए प्रांतिय भाषा के चैनल खोल रहा हैं जैसे- गुजराती, पंजाबी, मराठी, बंगाली, कश्मीरी, तमील, कन्नड, मलयालम, उर्दू, उडीया, असमीया आदि इन प्रांतिय चैनलों में भी ज्ञानवर्धक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

दूरदर्शन ने देश की संस्कृति एवं गरीमा को अखंडित रूप से जन-जन तक पहुँचाया हैं दूरदर्शन के माध्यम से पूरा भारत एक सूत्रता में बंधा है। भारतीय अस्मीता को उजागर करने का काम हिंदी धारावाहिको ने किया है। ये धारावाहिक इतिहास को मूर्त रूप में सामने लाता हैं जैसे- भगतसिंह, मिराबाई, राणा प्रताप, टीपु सुल्तान, पृथ्वीराज चौहान, चंदगुप्त मौर्य आदी धारावाहिक लोगों को इतिहास से जोड़ने का काम करते हैं।

विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों में देश के विविध प्रांतों की संस्कृतियों की जलक मिलती हैं। जिनसे प्रत्येक राज्य के लोक-व्यवहार एवं रीति-रिवाज का पता चलता है।

भारत के सभी उपक्रमों में देश की भाषा तो हिंदी ही रहेगी। दूरदर्शन ने भाषा माध्यम के रूप में हिंदी को चुना है जो भारत की राजभाषा है। और लोगों को जोड़ने का काम करती है। यहाँ तक कि अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट टुर्नामेंट में भी कोमेंटरी तो हिंदी में ही बोली जाती हैं ताकि जनता को स्पष्ट रूप से समझ में आ सके।

दूरदर्शन दूर-दराज के इलाकों की माहिती भी हिंदी में प्रसारित करता हैं, जिससे भारत का भौगोलिक परिचय भी प्राप्त हो। चैनल में प्रसारित होने वाले

यात्रासंबंधी कार्यक्रमों से लोगों का अच्छा मनोरंजन भी हो जाता है क्योंकि एक तो नए-नए स्थानों की रोचक जानकारी मिलती है और घर बैठे ही उन स्थानों का लुत्फ उठाया जा सकता है। घर बैठे ही सैर हो जाती है। साथ ही साथ गुनाहखोरी में कटोती हुई है। जनजागृती अभियान जैसे 'बेटी बचाओ', 'दारू व्यसन मुक्ती', 'नीरोध अपनाइये', 'एईड्स से बचों,' 'सर्व शिक्षा अभियान' आदी जन जागृति के अभीयान भी सफल होते हैं। घरेलु हिंसा जैसे किस्सों में भी जागरुकता लाई जाती हैं। भ्रष्टाचार, राजनीति, धर्म-समाज व्यवस्था, अर्थतंत्र ऐसे अनेकों मुद्दों पर ध्यान रखा जा सकता है। और भाषा माध्यम हिंदी होने के कारण सामान्य शिक्षित व्यक्ति भी समझ सकता है।

अत: उपर्युक्त परिचर्चा से यह बात तो स्पष्ट होती है कि दूरदर्शन जैसे दृष्य-श्राव्य माध्यम से आम लोगों में एक आत्मविश्वास कायम हुआ है, ज्ञान की सिमाएँ बढ़ी है, मानवता स्थिर हुई और अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति लगाव बढ़ा है। इनमें कहीं न कहीं हिंदी का भी छोटा-सा योगदान है...

## २.१० बैंकों में हिंदी का स्वरूप

यूँ तो भारतीय बैंक इतिहास बड़ा लंबा-चौड़ा हैं, किंतु उन्हें यहाँ स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। दो पंक्ति में कहना चाहे तो- २६ जनवरी, १९५० को भारतीय संविधान लागू होने के बाद देश में बैंकों का क्षेत्र विस्तार देश के बहुमूखी विकास की दृष्टि से आवश्यक हो गया ताकि देश के गाँवों की आबादी तक बैंकों की पहुँच हो सके। १९ जुलाई, १९६९ को सरकार ने देश के पचास करोड से अधिक

जमापूँजी वाले १४ बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया । २५ अप्रैल, १९८० को ६ अन्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया । भारतीय स्टेट बैंक तथा उसके सात सहायक बैंकों को मिलाकर राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या २८ तक हो गई । राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंकों ने देश के प्रत्येक वर्ग, कारखानों, उद्योगों, किसानों, मजदुरों, उद्यमियों, कुटीर उद्योगों आदि को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराके सराहनीय भूमिका निभाई है ।

## २.१०.१ बैंकों में राजभाषा से संबंधित उपबंधों का पालन

राष्ट्रीयकरण के पश्चात सरकारी क्षेत्र के बैंक प्रत्यक्ष रूप से राजभाषा अधिनियम, १९६३ और राजभाषा नियम, १९७६ की परिधि में स्वत: ही आ गए और केंद्र सरकार की राजभाषा के कार्यान्वयन एवं हिंदी के प्रगामी प्रयोग को उत्तरोत्तर बढ़ाने का दायित्व अन्य सरकारी क्षेत्रों, उपक्रमों आदि की भाँति बैंकों पर भी आया । राजभाषा अधिनियम की धारा ३ के तहत जारी किए जाने वाले प्रलेखों को द्विभाषिक रूप में जारी करने के लिए अनुवाद का ही आश्रय लेना पडा ।

बैंकों को अपनी लेखन सामग्री, सूचना पट्ट, बोर्ड आदि हिंदी में भी उपलब्ध करने पड़े । इस तरह राजभाषा अधिनियमों, नियमों आदि के अनुपालन के लिए बैंकों में हिंदी कक्ष स्थापित हुए तथा हिंदी टंककों, हिंदी आशुलिपिकों, कनिष्ठ वरिष्ठ हिंदी अनुवादकों, हिंदी अधिकारियों, प्रबंधकों आदि के पद सृजित हुए तथा बैंकों के कामकाज को अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी करने के लिए समस्त प्रबंध कर लिए गए और बैंकों में राजभाषा हिंदी में कामकाज होने लगा । आवश्यकतानुरूप पारिभाषिक

शब्दावलियाँ निर्मित हुई । बैंकों की राजभाषा समितियाँ, नगर राजभाषा समितियाँ आदि गठित हुई और बैंकों में होने वाले राजभाषा हिंदी के कार्य की समीक्षा होने लगी तथा मिल बैठकर हिंदी के प्रयोग के संबंध  में आनेवाली समस्याओं के समाधान ढुँढ़े जाने लगे । परिणामत: हिंदी के प्रयोग में गुणात्मक सुधार आया । भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने अन्य सरकारी क्षेत्रों के लिए प्रतिवर्ष निश्चित किए जाने वाले राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित वार्षिक कार्यक्रम की भाँति ‘क’, ‘ख’ एवं ‘ग’ क्षेत्र में स्थित बैंकों के लिए भी प्रतिवर्ष क्रमश: वार्षिक कार्यक्रम निश्चित करके उसे कार्यान्वित कराया, जिससे बैंकों में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई ।

बैंकों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएँ चलाई जा रही हैं; पारितोशिक दिए जा रहे हैं, तथा हिंदी कार्यशालाओं के माध्यम से बैंकों में कार्यरत स्टाफ की हिंदी के प्रयोग के प्रति होनेवाली हिचक को दूर किया जा रहा है । अब स्थिति यहाँ तक पहुँच गई हैं कि बैंकों के पास अपनी पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं । भाषा रूढ़ियाँ हैं तथा समस्त प्रारूप द्विभाषिक रूप में उपलब्ध हैं ।

भारतीय रिजर्व बैंक ने राजभाषा हिंदी के प्रयोग के संबंध में पहल की तथा अहम् भूमिका निभाई । १९७१ में संपन्न पहली चार बैंठकों में रिजर्व बैंक ने चेक बुक जमापर्ची, आवेदन पत्र आदि के मानक फार्म हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्राथमिकता के आधार पर तैयार करके लागू करने के लिए सरकारी क्षेत्र के समस्त

बैंकों को परामर्ष दिया और सामान्य आदेशों, अधिसूचनाओं आदि को द्विभाषिक रूप में जारी करने पर बल दिया । राजभाषा अधिनियम की धारा ३ के लागू होने पर सामान्य आदेशों, नियमों, संकल्पों, अधिसूचनाओं, रिपोर्टों, प्रेस विज्ञप्तियों, संविदाओं, करारों, अनुज्ञापत्रों, निविदा फार्मों आदि को अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी जारी करने के लिए बैंकों को बाध्य होना पड़ा और इससे बैंकों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को गति मिलि ।

चेकों, ड्राफ्टों, प्रलेखों, परिचालनात्मक फार्मों, धारा ३ के अंतर्गत आनेवाले कागजों को अंग्रेजी के साथ हिंदी में जारी करना इतना सरल कार्य नहीं था अत: शब्दकोशों एवं संदर्भ सामग्री के साथ-साथ राजभाषा कक्षों की भी आवश्यकता महसूस हुई और १९७५ के आसपास बैंकों के प्रधान एवं आंचलिक कार्यालयों में राजभाषा कक्ष स्थापित हुए साथ ही १९८० से बैंकों में राजभाषा अधिकारियों आदि की नियुक्तियां होने लगी । बैंकों के राजभाषा अनुभागों ने अनुवाद कार्य के माध्यम से द्विभाषिक स्थिति को बराबर रखने के प्रयास में बैंकों में हिंदी के प्रयोग में आश्चर्यजनक रूप से अभिवृद्धि की ।

भारतीय रिजर्व बैंक ने अंग्रेजी-हिंदी बैंकिंग पदनाम शब्दावली तथा अक्तुबर, १९७७ में कार्यालयी शब्दावली बनाई । इस क्रम में १९८० में बैंकिंग शब्दावली प्रकाशित की गई । रिजर्व बैंक नें राजभाषा हिंदी से संबंधित अपने अन्य विविध प्रकाशनों के साथ दिसंबर, १९८४ में 'टिप्पण और प्रारूप लेखन' नामक एक बृहद ग्रंथ लिखा था और उसे प्रकाशित किया था । इस ग्रंथ में विभागवार एकसो पंद्रह से

भी ज्यादा पत्रों के द्विभाषिक रूप प्रस्तुत किए गए। १९८५ में भारतीय रिजर्व बैंक ने एक बड़े 'बैंकिंग पत्र व्यवहार' नामक ग्रंथ का प्रकाशित किया।

रिजर्व बैंक के इस दिशा में पहल करने से तथा संदर्भ साहित्य के प्रकाशन से अनुवाद कार्य को और गति मिली। रिजर्व बैंक के ही प्रयास से रिजर्व बैंक के मुंबइ के बैंकर्स प्रशिक्षण महाविद्यालय ने अपनी प्रशिक्षण सामग्री में १९८२ से अनुवाद प्रयोग को शामिल किया।

## २.१०.२ बैंकिंग भाषा में अनुवाद

आज जो बैंकिंग अनुवाद हो रहे हैं। उसके विवेचन, विश्लेषण, निरीक्षण-परिक्षण से निम्न लिखित तथ्य उभरकर सामने आते हैं।

### १. अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दों का लिप्यंतरण

बैंकिंग हिंदी में अनुवाद के माध्यम से अंग्रेजी के बहु प्रचलित शब्दों के लिप्यंतरित रूप खूब प्रचलित हो गए हैं, जैसे,

| | | |
|---|---|---|
| बैंक | लोकर | टोकन |
| चेक | वाउचर | कमीशन |
| ड्राफ्ट | पासबुक | प्रीमियम |

### २. शब्दानुवाद पर विशेष बल :

बैंकिंग हिंदी अंग्रेजी से अनूदित रूप में प्रयुक्त होते-होते अपना स्वतंत्र प्रयुक्ति रूप बना पाई हैं, अत: इसमें शाब्दानुवाद पर विशेष बल देने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यथा-

Honorarium - मानदेय

Mortgage - बंधक

Statatury - सांविधिक

Loan - ऋण

Pro rata - अनुपातत:

Adhoc - तदर्थ

Facto - वस्तुत:

**३. वाक्यांशों के अनुवाद पर विशेष बल :**

बैंकिंग अनुवाद में शब्दानुवाद की तरह वाक्यांशों के अनुवाद पर भी विशेष बल दिया जाता है; यथा-

In so far as - जहाँ तक कि

Rate in Force - प्रचलित दर

According to ones ability - यथा शक्ति

Void of commonsense - विवेकशून्य

mild in speech - मधुर भाषी

**४. शब्द प्रयोजन पर विशिष्ट बल :**

बैंकिंग हिंदी में शब्द प्रयोजन पर विशिष्ट बल दिया गया है । बैंकिंग हिंदी एक स्वतंत्र प्रयुक्ति क्षेत्र होने के कारण पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग की विशिष्टता लिए हुए है । पारिभाषिक शब्दों का धरातल होने के कारण पूर्व परंपरा में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों के बड़ी सावधानी से अनुवाद किए गए हैं ताकि मूल की सूक्ष्म अर्थछाया भी

अनूदित शब्द में उतर आए । यथा;

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| Order | Direction | Instaction | demotion | reversion |
| आदेश | निदेश | अनुदेश | पदावनति | परावर्तन |
| Sanction | Approval | Permission | Action | Proceedings |
| स्वीकृति | अनुमोदन | अनुमति | कार्रवाई | कार्यवाही |

### ५. शब्दानुवाद के स्थान पपर भावानुवाद पर बल :

बैंकिंग हिंदी में कुछ ऐसी भी सामान्य एवं विशिष्ट संकल्पनाएँ हैं जिनका शब्दानुवाद हास्यास्पद स्थिति पैदा कर सकता हैं अत: ऐसी संकल्पनाओं के भावानुवाद पर बल दिया जाता हैं, जैसे

Bad debts - बुरा ऋण नहीं परंतु डूबंत ऋण

Broken Account - टूटा खाता नहीं परंतु खंडित खाता

Appreciation of Currency - मुद्रासराहना न होकर मृद्रा में मुल्य वृद्धि

window envelop - खिड़की लिफाफा न होकर पता दर्शी लिफाफा,

kite Bill - पतंग बिल न होकर निभाव हुंडी,

इसी तरह - capital expenditure, Bill and bear, character of security, window dressing, stalt cheque, movement of files का अनुवाद क्रमशः राजधानी व्यय, सांड और भालू, प्रतिभूति का चरित्र, खिडकी सजावट, बासी चेक, फाइलों का आंदोलन न होकर क्रमशः पूँजीगत व्यय, तेजी और मंदि, प्रतिभूति का स्वरूप, उपरी दिखावा, गतावधि चेक, फाइलें रखना होता है ।

## ६. हिंदी की प्रकृति के अनुसार वाक्यों का प्रयोग

बैंकिंग हिंदी अनुवाद में हिंदी भाषी की प्रकृति पर ध्यान न दिया जाए तो स्त्रोत भाषा की प्रकृति लक्ष्य भाषा की प्रकृति पर हावी होने लगती है और वाक्य कठिन एवं जटिल हो जाते हैं । हालाँकि हिंदी भाषा में प्रयोजनमूलक भाषा रूपों की पूर्व परंपरा विद्यमान नहीं हैं तथा स्वतंत्रता मिलने के बाद भारतीय संविधान में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के बाद भी हिंदी को प्रयोजनमूलक भाषा क्षेत्र में अंग्रेजी से कदम मिलते हुए प्रयोजनमूलक भाषा क्षेत्रों में आगे बढ़ने का मौका मिला है, फिर भी, इस अल्पावधि में हिंदी भाषा ने प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में खुब विकास किया हैं । साथ ही हिंदी में पचासियों स्वतंत्र प्रयोजनमूलक भाषा रूप पनप गए हैं, जिनकी स्वतंत्र पारिभाषिक शब्दावली है । बैंकिंग हिंदी भी इन्हीं में से हिंदी भाषा का एक प्रयोजनमूलक भाषा रूप है । बैंकिंग हिंदी ने फिर भी वाक्यगत दुरुहता से बचने का यथा संभव प्रयास किया हैं । अंग्रेजी के लम्बे-लम्बे वाक्यों को अपनी प्रकृति के अनुरूप ही अर्थ के स्तर पर रखा हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता हैं कि बैंकिंग हिंदी एक स्वतंत्र प्रयोजनमूलन भाषा के रूप में विकसित हो चुकी हैं तथा इस प्रयुक्ति क्षेत्र की अपनी स्वतंत्र पारिभाषिक शब्दावली हैं ।

अत: हमने सार्वत्रिक रूप से देखा कि व्यावहारिक तौर पर जितने भी प्रमुख क्षेत्र हैं उन सब क्षेत्रों के अंतर्गत माध्यम के रूप में हिंदी ने अपनी अलग पहचान एवं पकड बनाई है । सभी क्षेत्रों के साथ हिंदी ने अपना तालमेल बना लिया हैं सभी क्षेत्रों की हिंदी थोडी बहुत अलग है, भिन्न है लेकिन यही उसका विशिष्ट गुण एवं लक्षण है विभिन्न क्षेत्रों को समाहित करने के कारण हिंदी भाषा में समृद्धि हुई है ।

# अध्याय–३
# विधि शास्त्र का स्वरूप

किसी विषय पर एक ग्रंथ-लेखक के सामने सबसे पहले जो बड़ा कार्य प्रस्तुत होता है वह उस विषय की परिभाषा देना और उसके क्षेत्र और प्रणाली को बताना है। विधि-विषय पर पुस्तक के लेखक को इस संबंध में कोई छुट नहीं है, किंतु एक सर्वमान्य और एकरूप परिभाषा देना विधिशास्त्र में अपेक्षाकृत एक कठिन कार्य है। विभिन्न देशों में विधि का जन्म और विकास साथ-साथ हुआ हैं और विभिन्न सामाजिक और राजनैतिक दशाओं से हुआ है। विभिन्न देशों में विधि के लिये प्रयोग किए जाने वाले शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ बताते हैं। सामान्यत: एक भाषा के शब्दों का दूसरी भाषा में ऐसा समान शब्द नहीं होता जो ठीक-ठीक उसी अर्थ का बोध कारा सके। दूसरी और समाज के विकास के गत्यात्मक होने के कारण किसी परिभाषा को सबके मानने योग्य होना कठिन है। आधुनिक युग में तेज परिवर्तनों से नई समस्याओं और प्रश्नों का जन्म हो रहा है, और नए समाधान और नई व्याख्याएँ प्रकाश में आई हैं।

आधुनिक विधिशास्त्र सामाजिक विज्ञानों और दर्शन से बड़ी घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। आधुनिक काल में विषय के क्षेत्र में इतनी अधिक वृद्धि हुई हैं और विभिन्न भाषाओं में इस पर इतने भारी साहित्य की रचना हुई है कि इस विषय का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया है। तथापि नए युग ने एक भारी लाभ भी दिया है। वैज्ञानिक आविष्कारों से लोग एक दूसरे के बहुत निकट आए हैं। और इससे विचारों के व्यापक होने और एक समान शब्दों के विकसित होने में सहायता मिली है।

ऊपरवर्णित कठिनाइयों के बावजूद भी ऐसा दृष्टिकोण जो पाठक को विषय की कल्पना करने और बुनियादी बातों को समझने में समर्थ बना सके, सदैव सम्भव हैं ।

## ३.१ विधि की परिभाषा

किसी वस्तु की व्याख्या करना इसकी परिभाषा करने से अधिक सरल है । तथापि किसी विषय के अध्ययन के लिए उसकी परिभाषा बहुत आवश्यक होती है, क्योंकि किसी विषय के अध्ययन की इति, और एक अर्थ में उसका अंत भी उसकी परिभाषा होती है । अनेक कारणों से विधि की परिभाषा देना अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है । प्रथम सभी समाजों में, आदिम समाजों से लेकर सभ्यता के उँचे शिखर पर पहुँचे हुए समाजों तक, एक या दूसरे रूप में विधि होती है। दो समाजों की विधियों के बीच अंतर केवल विकास के प्रक्रम का ही नहीं होता है, अपितु उनकी विशेषताओं में भी होता है । 'विधि' शब्द का अर्थ और इसमें सम्मिलित होने वाली बातें, भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न होती हैं । 'विधि' शब्द का पर्याय हिंदू प्रणाली में धर्म है, मुसलमान-प्रणाली में हुकुम है, रोमन में 'जस' है, फ्रांसीसी में 'ड्रायट' है, जर्मन में 'रिच्ट' है। इन शब्दों का भिन्न-भिन्न अर्थ होता हैं और उनमें भी भिन्न-भिन्न विचार सम्मिलित हैं। विधि की कोई परिभाषा जो इन सभी अर्थों को अपने अन्तर्गत सम्मिलित न कर सके, ठीक परिभाषा नहीं होगी । दूसरे विभिन्न दृष्टिकोण से देखने पर एक ही वस्तु की विभिन्न परिभाषायें दी जा सकती हैं क्योंकि एक दृष्टिकोण दूसरे दृष्टिकोण के विचार को ध्यान में नहीं लेता । इस प्रकार विधिज्ञ, दार्शनिक और धर्मशास्त्री द्वारा दी गई परिभाषाओं में बहुत अंतर होगा । विभिन्न विचारधाराओं ने विभिन्न दृष्टिकोणों

से विधि की परिभाषा दी है । कुछ ने इसकी प्रकृति के आधार पर, कुछ ने अपने को मुख्य्य रूप से इसके स्त्रोतों पर केंद्रित करके कुछ ने समाज पर इसके प्रभाव को लेकर, कुछ ने उसके लक्ष्य या प्रयोजन को लेकर और इसी प्रकार की अन्य बातों के आधार पर इसकी परिभाषा दी हैं । कोई परिभाषा, जिसमें ये सब पहलू नहीं आते एक अपर्याप्त परिभाषा होगी । तीसरे, जैसा कि हम सब जानते हैं, विधि एक सामाजिक विज्ञान है । इसका उद्भव और विकास समाज के साथ होता हैं । आधुनिक काल में समाज के विशाल विकास ने नई समस्याओं को जन्म दिया हैं । विधि से यह अपेक्षा की जाती हैं कि वह अपने भीतर नये क्षेत्रों को सम्मिलित करे तथा नई दिशाओं में गतिमान हो । समाज के साथ चलने के लिए, विधि का कार्य और क्षेत्र सर्वदा परिवर्तित होता रहता है । इसलिए किसी समय विशेष पर दी गई विधि की परिभाषा को सर्वदा बने रहना बहुत कठिन है । कोई परिभाषा जो आज सर्वाधिक पर्याप्त है, कल संकुचित और अपूर्ण साबीत हो सकती हैं । इसी कठिनाई के कारण विधिशास्त्री कीटन ने मत व्यक्त किया हैं कि ''विधि की कोई केवल एक संतोषजनक परिभाषा स्थापित करने का प्रयत्न विधिशास्त्र को एक ऐसे तंग जामें में रख देने का प्रयत्न है जिससे बाहर उमड़ पड़ने के लिए वह उद्यत रहती हैं'' ।

प्राचीन काल से ही प्राय: प्रत्येक विधिशास्त्री ने विधि को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । उनके द्वारा दी गई परिभाषाओं का एक संकलन मात्र ही एक विशाल ग्रंथ बन जाएगा । हम यहाँ उनमें से प्रतिनिधि रूप परिभाषाओं का चयन करेंगे और उनका विवेचन करेंगे । विषय को स्पष्ट और अच्छी प्रकार से समझने के लिए,

हम उन परिभाषाओं का वर्गीकरण करके विवेचन करेंगे । विधि की भिन्न-भिन्न परिभाषाओं को तीन मोटे वर्गों में रखा जा सकता हैं -

१. आदर्शवादी

२. विध्यात्मवादी

३. समाजशास्त्रीय

अब हम इन परिभाषाओं का एक-एक करके विवेचन करेंगे ।

### ३.१.१ आदर्शवादी परिभाषा

इस वर्ग के अंतर्गत रोमन विधिशास्त्रियों और अन्य प्राचीन विधिशास्त्रियों द्वारा दी गई अधिकांश परिभाषाएँ आती हैं ।

- **रोमन लोग–** जस्टिनियन का ड़ाइजेस्ट विधि की परिभाषा 'क्या न्याय है और क्या अन्याय है, का मानक' इस रूप में देता हैं । अल्पियन ने विधि 'जो साम्यापूर्ण और सत् हैं उसको कला या विज्ञान' कहा है । सिसरो ने कहा कि विधि 'प्रकृति में जड़ी हुई श्रेष्ठतम युक्ति है ।' संक्षेप में इन सब परिभाषाओं में व्यक्त किया गया विचार यह है कि न्याय, विधि का मुख्य तत्त्व है । तथापि एक बात ध्यान में रखने की है कि रोमन लोगों को सैद्धांतिक दृष्टिकोण जो कुछ भी रहा हो, व्यवहार में उन्होंने कभी विधि को न्याय के साथ नहीं जोड़ा ।
- **हिंदू दृष्टिकोण–** विधि के बारे में प्राचीन हिंदू विचार यह था कि विधि ईश्वर का समादेश हैं और किसी राजनीतिक वरिष्ठ व्यक्ति- संप्रभु का

समादेश नहीं। राजा भी इसका पालन करने के लिए आबद्ध है और इसको प्रवृत्त करना उसका कर्तव्य हैं। इस प्रकार विधि 'धर्म' का एक अंग है। विधि के बारे में यह दृष्टिकोण होने का कारण हम नैतिक और धार्मिक व्यवस्थाओं को विधिक समादेशों के साथ मिला-जुला हुआ पाते हैं। 'न्याय' का विचार हिंदू-विधि संकल्पना में सदैव विद्यमान रहा है।

## o आधुनिक आदर्शवादी परिभाषाएँ

उपर्युक्त परिभाषाएँ ऐसे काल में दी गई थीं जब कि विधि तथा नैतिक आचार और धर्म के बीच में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। आधुनिक काल में विधि अधिकांशत: धर्म-निरपेक्ष हो गई हैं और यह सामाजिक विज्ञान की स्वतंत्र शाखा के रूप में बन गई हैं। इसलिए विधि की वे परिभाषाएँ जो धर्मपरक दृष्टिकोण से दी गई हैं। अब बिलकुल चलने योग्य नहीं है। तथापि, आधुनिक काल के कतिपय प्रामाणिक विधिशास्त्रियों द्वारा दी गई कुछ परिभाषाओं में न्याय अब भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। उन्होंने विधि की परिभाषा 'न्याय' के शब्दों में की है किंतु उनकी न्याय की संकल्पना वही नहीं हैं जो प्राचीन में विधिशास्त्रियों की है। आधुनिक परिभाषाओं में 'न्याय' का अर्थ है, 'विधिक न्याय' न की कोई अमूर्त 'न्याय'। 'न्याय' को विधि के एक तत्त्व के रूप में लेने के आधार पर ही इन विधिशास्त्रियों को 'आदर्शवादी' वर्ग में रखा गया है, अन्यथा वे 'विध्यात्मवादी' हैं। इस प्रकार की सबसे अधिक प्रसिद्ध परिभाषा सामंड ने की है।

## o सामंड की विधि की परिभाषा

सामंड विधि की परीभाषा इस रूप में करता हैं कि वह न्याय के प्रशासन में राज्य द्वारा मान्य और लागू किया जाने वाला नियम-समूह हैं । दूसरे शब्दों में, न्यायालयों द्वारा मान्य और कार्यांवित किए गए नियम विधि होते हैं । इस परिभाषा की दो ममुख्य बाते हैं- प्रथम, यह कि विधि को समझने के लिए इसके प्रयोजन को जानना चाहिए; दूसरे विधि की सच्ची प्रकृति को जानने के लिए न्यायालयों की ओर देखना चाहिए न कि विधान-मंडलों की ओर । सामंड द्वारा दी गई परिभाषा की अनेक विधिशास्त्रियों द्वारा आलोचना की गई हैं ।

## o सामंड की आलोचना

विनोग्रैडोफ सामंड की इस आधार पर अलोचना करता है कि उसकी विधि की परिभाषा न्यायाधीशों के कार्य को आधार बनाकर चलती है । यह यत्किंचित 'एक मोटरकार की इस रूप में परिभाषा के समान हैं कि यह शोफर द्वारा चलाया जाने वाला एक यान है ।' वह कहता हैं कि 'दवा की उस परिभाषा के बारे में हम क्या समझें जो इस रूप में है कि यह डॉक्टर द्वारा विहित एक औषधि (ड्रग) है ।' परंतु मेरे हिसाब से विनोग्रैडोफ की आलोचना सटिक नहीं है । सामंड की परिभाषा की मुख्य आलोचना यह है कि वह 'न्याय' को विधि के साथ जोड़ देता है । विधि और 'न्याय' एक ही वस्तु नहीं है । विधि वह हैं जो वस्तुत: प्रवृत्त होती है, चाहे यह बुरी हो या भली । 'न्याय' एक आदर्श है जो मनुष्य की नैतिक प्रकृति में आधारित है । इस आलोचना में भी बहुत दम नहीं है । सामंड द्वारा दी गई परिभाषा को पढ़कर यह

देखा जा सकता हैं कि जोर 'विधि' पर दिया गया है और 'न्याय' का अर्थ वह बात हैं जो विधिक है । सामंड का यह तात्पर्य कभी नहीं हैं कि विधि, 'न्याय' है किंतु वह अधिक से अधिक यह कहता है कि 'विधि' द्वारा ही न्याय को प्राप्त किया जा सकता है ।

वस्तुत: सामंड की विधि की परिभाषा में वह समस्या प्रतिबिंबित होती है जिसका विधिशास्त्री बहुत प्राचीन काल से समाधान निकालने में लगे रहे हैं । वह समस्या है, 'विधि' और 'न्याय' का संबंध । इसमें कोई संदेह नहीं कि विधि का एक लक्ष्य 'न्याय' है । किंतु क्या कोई अनुचित विधि- अस्तित्त्व हीन होती है ? अनेक प्राचीन चिंतकों ने सिद्धांत की सटीकता के लिए यह मत व्यक्त किया कि 'प्राकृतिक विधि' के विरोध में होने वाले नियम विधि नहीं हैं । तथापि यदि ऐसा हो तो अनुचितता की कसौटी क्या होगी ? क्या विधि वे ही नियम हैं जो हमारी पसंद के हैं ? साथ ही क्या विधि को ऐसे गुण से युक्त कहकर परिभाषित करना जिसका उसमें अभाव हो विधि की ठीक परिभाषा प्रस्तुत करेगा ? स्पष्ट हैं कि विधि की ऐसी परिभाषा पूर्ण नहीं हो सकती । विधि और न्याय के सम्बन्ध की समस्या का एक समाधान यह भी हो सकता है कि 'न्याय' उसे ही माना जाए जो विधि के अनुरूप हो। विधि उसे माना जाए जो प्रवर्तन में है चाहे वह भली हो या बुरी । 'न्याय' वस्तुत: मनुष्य की नैतिक प्रवृत्ति पर आधारित एक आदर्श है । वह उस द्वारा सीमित नहीं जो वस्तुत: होता है । तथापि विधि और न्याय को बिल्कुल संबंधहीन समझना भी योग्य नहीं है । न्याय यद्यपि विधि के भीतर होता है तथापि वह विधि को आँकने की एक

बाह्य कसौटी भी प्रस्तुत करता है । सामंड के कथन को इस रूप में लिया जा सकता है कि विधि वह एक साधन है जिसके द्‌वारा न्याय प्राप्त किया जा सकता है । इसमें संदेह नही कि विधि न्याय करने का उन्मुख होती हैं । कोई भी सरकार बहुत समय तक उस बात को नहीं चला सकती जिसे राज्य के बहुसंख्यक लोग न्याय के विपरित मानते हौं । सामंड की परिभाषा को इस विशेषित रूप में लेने पर वह समीचीन हो सकती हैं ।

यह स्पष्ट हैं कि सामंड द्‌वारा विधि की परिभाषा उसके प्रयोजन के शब्दों में की गई है । विधि को उसके प्रयोजन के शब्दों में परिभाषित करना विधि की प्रकृति को समझने में सहायक हो सकता है, किंतु विधि अनेक उद्‌देश्यों कि पूर्ति करती हैं और इसे केवल 'न्याय' पाने के काम में लगे होने तक सीमित करके सामंड ने विधि के क्षेत्र को संकुचित कर दिया है ।

परिभाषा से निकलने वाली दूसरी बात की विधि की सच्ची प्रकृति अभिनिश्चय करने के लिए न्यायलयों की ओर न की विधान-मंडल की ओर देखना होगा, की भी अनेक आधारों पर आलोचना की गई है- प्रथम, यह कि इस परिभाषा के अनुसार, कन्वेन्शन विधि की परिभाषा से बाहर निकल जाएँगे क्योंकि वे न्यायालयों द्‌वारा लागू किए जाने योग्य नहीं होते हैं । दूसरे, यह कि 'न्यायलय' के अर्थ के बारे में एक विवाद उत्पन्न हो जाएगा । क्या प्रशासनिक अधिकरणों और मंत्रियों को, जो कुछ मामलों के अधिकारों और दायित्वों को तय करते हैं, न्यायालय समझा जाना चाहिए या नहीं ? एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर कठिन है । तीसरे, यह कि नियमों का एक विशाल

और महत्त्वपूर्ण समूह इस परिभाषा के अनुसार विधि नहीं समझा जाएगा । विधि का एक ऐसा बड़ा भाग हैं जो न्यायालयों के समक्ष नहीं आता हैं । अन्तर्राष्ट्रीय विधि न्यायालयों द्वारा लागू होने योग्य नहीं हैं । इसी प्रकार आदिम समुदायों में विधि न्यायालयों द्वारा लागू नहीं होती थी क्योंकि उन्होंने उसको लागू करने के लिए आवश्यक तंत्र विकसित नहीं किया था । वे सभी विधि से बाहर निकाल दिए जाएँगे यदि हम न्यायालयों के माध्यम से लागू करने को विधि का आवश्यक तत्त्व मान ले। सामंड की परिभाषा के अनुसार, कोई नियम इसलिए विधि होता हैं कि न्यायालय इसे मान्यता देंगे, इसे प्रयुक्त करेंगे और इसे लागू करेंगे, बजाय इसके न्यायालय उसे इसलिए मान्यता देंगे, प्रयुक्त करेंगे और लागू करेंगे कि वह विधि है । सामंड का विद्वान संपादक इस परिभाषा के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करके, इसका समर्थन करने का प्रयत्न करता है वह कहता है । कि न्यायाधीश-निर्मित विधि और कानून के बीच अंतर बहुत तात्विक नहीं है और वे केवल एक सत्य के दो पहलू मात्र हैं । 'जब तक न्यायालय और विधान-मंडल सामंजस्य में कार्य करते हैं तब तक इसका कोई महत्त्व नहीं होता, चाहे हम यह कहें कि कोई कानून इसलिए विधि हैं कि न्यायालय इसे मान्यता देते हैं और लागू करते हैं या यह कहें कि न्यायालय कानूनों को इसलिए मान्यता देते हैं और लागू करते हैं कि वे विधि हैं ।'

सामंड की परिभाषा विधि का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती हैं जिसमें विधि न्याय के प्रशासन की पश्चात्कालीन हैं और इस प्रकार न्यायालयों को अधिक महत्त्व दिया गया है । सामंड की परिभाषा विधिज्ञ के लिए कुछ उपयोग की हो सकती हैं किंतु

अन्यथा इसका कोई व्यापक प्रयोग नहीं है । किसी परिभाषा को यदि सार्वजनीन नहीं तो कम-से-कम बहुत व्यापक प्रयोग भी होना चाहिए और सामंड के परिभाषा बहुत संकुचित है । यह केवल इंग्लैंड के कोमन लॉ को लागू करती है जो कि न्यायाधीश-निर्मित विधि है ।

## ३.१.२ विध्यात्मवादी परिभाषा

### ० ओस्टिन

यद्यपि विधि की विध्यात्मकवादी परिभाषा बहुत प्राचीन है, किंतु इसका एक स्पष्ट और तर्कपूर्ण विवेचन हम ओस्टिन में पाते हैं । ओस्टिन के अनुसार विधि उन नियमों का समूह हैं जो राजनीतिक रूप से श्रेष्ठ प्रकार के मनुष्यों द्वारा राजनैतिक रूप से अधीनस्थ प्रकार के मनुष्यों के लिये बनाए गए हैं । दूसरे शब्दों में 'विधि संप्रभु का समादेश' है । यह कतिपय आचरण-क्रम के लिए बाध्य रहती है या एक कर्तव्य अधिरोपित करती है और इसके पीछे एक अनुशास्ति होती है । इस प्रकार समादेश कर्तव्य और अनुशास्ति विधि के तीन तत्त्व हैं । वह विधि जिसमें वे तीन तत्त्व या विशेषताएँ होती हैं 'विध्यात्मक विधि' कहलाती हैं । वह 'विध्यात्मक विधि' का विध्यात्मक नैतिकता' और अन्य प्रकार के नियमों से, जिनको भी 'विधि' कहा जाता है, भेद करता है । उसकी परिभाषा की अनेक आधारों पर आलोचना की गई हैं जो निम्नलिखित हैं-

## o ओस्टिन की आलोचना

ओस्टिन की परिभाषा अनेक आधारों पर की गई है । प्रथम कि समस्त विधि समादेश नहीं है । दूसरे, कि विधि का बहुत भाग निर्बंधनात्मक होने की अपेक्षा समर्थकारी है (इसका अर्थ यह हैं कि यह कही कर्तव्य नहीं है) तीसरे कि यह केवल अनुशास्ति ही नहीं होती है जो विधि का पालन संभव बनाती है, अपितु अन्य बातें भी होती हैं । ओस्टिन की परिभाषा के अंतर्गत रूढ़ियाँ और अन्तर्राष्ट्रीय विधि नहीं आती हैं, क्योंकि उनमें वे सभी आवश्यक तत्त्व नहीं हैं जो ओस्टिन के अनुसार 'विधि' में होने चाहिए । उसने विधि के सामाजिक पहलू की और उन मानसिक तत्त्वों की जो विधि के पालन को सुनिश्चित करते हैं, पूर्णत: उपेक्षा की ।

## o ओस्टिन की परिभाषा की गुणता

तथापि उसकी परिभाषा की अपनी गुणता या अच्छाई भी है । ओस्टिन की परिभाषा स्पष्ट और सहज है । यह विधि की मान्यता का एक सरल उत्तर प्रस्तुत करती है । इसने अनेक पुरानी धारणाओं को समाप्त किया है और अनेक भ्रमों का निवारण किया जो विधि के ऊपर जम गए थें । इसने ठीक-ठीक उन सीमाओं को निर्धारित किया जिनके भीतर विधिशास्त्र को कार्य करना है । अनेक बाद के विधिशास्त्रियों ने ओस्टिन से प्रेरणा ली । ओस्टिन ने अपना ध्यान अनन्य रूप से अंग्रेजी विधि पर केंद्रित किया और विधि कि परिभाषा जैसा की उसने उसे वहाँ पाया, दिया । इसलिए उसकी परिभाषा ओग्ल-विधि पर पूर्ण रूप से लागू होती है, परंतु यह वैश्विक रूप से लागू नहीं होती है ।

## o केल्सन

ओस्टिन के बाद अनेक अन्य विधिशास्त्रियों ने विध्यात्मवादी परिभाषाएँ दीं, यद्यपि उन्होंने विधि के अध्ययन के प्रति अपने दृष्टिकोण को विभिन्न आधार-भूमियों से प्रस्तुत किया । केल्सन भी एक विध्यात्मवादी है । वह विधि को 'अमानसकीय समादेश' के रूप में परिभाषित करता है, यद्यपि केल्सन समादेश के शब्दों में विधि की परिभाषा करता है किंतु वह ओस्टिन के एक बिलकुल भिन्न अर्थ में इसका प्रयोग करता है । समादेश से उसका केवल यह अभिप्राय है कि यह एक कर्तव्य अधिरोपित करता है । ओस्टिन का सम्प्रभु केल्सन की परिभाषा में स्थान नहीं पाता ।

## o ओस्टिन और सामंड

ओस्टिन और सामंड दोनों की गणना गत शताब्दी के अग्रणी विधिशास्त्रियों में की जाती हैं । दोनों ने विधि की अपनी-अपनी परिभाषाएँ हीं और विधिशास्त्र के क्षेत्र को निर्धारित किया । ओस्टिन को विश्लेषणात्मक विचारधारा का मुख्य प्रवर्तक माना जाता है तथा अंग्रेजी विधि शास्त्र का पिता कहा जाता है । सामंड भी श्रेष्ठ विधि विचारकों में माना जाता है । उसने विधिशास्त्र के अध्ययन को एक नई दिशा दी ।

सामंड 'विधिशास्त्र' शब्द का 'सामान्य' और 'विशिष्ट' में भेद करता है । पहले के अंतर्गत विधि सिद्धांतों का संपूर्ण समूह आता है, जबकि दूसरे का अभिप्राय ऐसे सिद्धांतों के विशिष्ट विभाग से होता हैं । दूसरे अर्थ में इसको सैद्धांतिक या 'सामान्य' विधिशास्त्र कहा जा सकता है । सामंड कहता है कि उसकी पुस्तक केवल इस विधिशास्त्र से सरोकार रखती है जिसे वह 'सिविल विधि के मूल सिद्धांतों का

विज्ञान' कह कर परिभाषित करता है । दोनों विधिशास्त्रियों की विधि की परिभाषाओं में अंतर होते हुए भी कुछ बातें सामान्य हैं । वे ये हैं कि दोनों 'इंग्लैंड के थें अतएव उनके द्वारा दी गई विधि की परिभाषा अंग्रेजी विधि प्रणाली के आधार पर है । ओस्टिन ने अपनी परिभाषा तत्कालीन (उन्नीसवीं शताब्दी) अंग्रेजी विधि के आधार पर दी । दूसरी ओर सामंड ने अपनी विधि की परिभाषा के लिए इंग्लैंड की कोमन लॉ को दृष्टि में रखा । उसकी विधि की परिभाषा केवल इंग्लैंड के कोमन लॉ को लागू होती है जो न्यायाधीश निर्मित विधि हैं । भिन्न आधारभूमियों से परिभाषा देने को अग्रसर होने के कारण उनकी विधि की परिभाषा में कतिपय मूलभूत अंतर हैं ।

ओस्टिन की विधि की परिभाषा इस प्रकार हैं कि 'विधि सम्प्रभु का समादेश है' । यह एक आचरण क्रम के लिए बाध्य करती हैं या एक कर्तव्य अधिरोपित करती है और इसके पीछे एक अनुशास्ति होती है । इस प्रकार समादेश, कर्तव्य और अनुशास्ति विधि के तीन तत्त्व होते हैं ।

सामंड विधि की परिभाषा इस प्रकार करता है कि यह 'न्याय के प्रशासन में राज्य द्वारा मान्य और लागू किया जाने वाला नियम-समूह हैं' । इसका अर्थ यह है कि विधि को समझने के लिए इसके प्रयोजन को जानना चाहिए और विधि की वास्तविक प्रकृति को जानने के लिए न्यायालयों की ओर देखना चाहिए न कि विधान-मंडल की ओर ।

दोनों की परिभाषाओं में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ ओस्टिन की परिभाषा में विधि का केंद्र-बिंदु संप्रभु अर्थात् विधि निर्माता है वहाँ सामंड की परिभाषा में विधि का केंद्र-बिंदु न्यायालय है । वस्तुत: दोनों परिभाषाएँ पूर्ण नहीं है और विधि के दो पहलुओं को दिखाती हैं ।

ओस्टिन की परिभाषा की मुख्य कमी यह है कि विधि के संप्रभु के समादेश तक सीमित रखने से विधि का एक बहुत बड़ा भाग विधि की परिधि के भीतर नहीं आता है । उक्त परिभाषा के अनुसार सम्प्रभु के समादेश से अन्य नियम विधि नहीं है। विधि के स्त्रोत के रूप में संप्रभु अथवा विधान-मंडल ही विधि का सर्वाधिकारी है । अन्य स्त्रोतों से प्राप्त विधि इस परिभाषा के भीतर नहीं आएगी। व्यवहार में वस्तुत: लागू विधि अनेक स्त्रोतों से आती हैं । ऐसी विधि उसकी परिभाषा के क्षेत्र में नहीं आएगी। उसकी परिभाषा विधि के लिए कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं करती । दूसरे शब्दों में, विधि का भलाई-बुराई से उसका कोई सरोकार नहीं है ।

आधुनिक युग में विधि के समादेश होने की कल्पना लागू नहीं रह गई है । समादेश का विचार विधि को कृत्रिम बनाता है और विधि के स्वभावत: विकासशील स्वरूप को ध्यान में नहीं लेता है । दूसरे, केवल राज्य द्वारा अधिरोपित अनुशास्ति हि विधि का पालन नहीं कराती है बल्कि और बहुत से तत्त्व इस पालन को सुनिश्चित करते हैं । इस प्रकार ओस्टिन की विधि की परिभाषा संकीर्ण है ।

सामंड की परिभाषा की भी कमी यह हैं कि वह न्याय को विधि के साथ जोड़ देती हैं दूसरे, उसकी परिभाषा से निकलने वाली यह बात की विधि की वास्तविक

प्रकृति को जानने लिए न्यायालयों की ओर देखना चाहिए ठीक नहीं है । उसकी परिभाषा के अनुसार विधि का एक बड़ा भाग जो न्यायालयों द्वारा लागू नहीं किया जाता जैसे, कन्वेन्शन, विधि की परिभाषा के भीतर नहीं आएगा । इस प्रकार सामंड का परिभाषा की संकुचित है ।

यह उल्लेखनीय हैं कि दोनों परिभाषाओं की अपनी कमियों के बावजूद विधिक चिंतन पर इनका व्यापक प्रभाव हुआ हैं । ओस्टिन ने अपनी परिभाषा द्वारा विधि का एक स्पष्ट रूप प्रस्तुत किया और विधिशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को निर्धारित किया । बाद के विधिशास्त्रियों ने उसकी परिभाषा में सुधार किया और उसे एक व्यावहारिक रूप प्रदान किया । सामंड ने भी ओस्टिन की विधि की परिभाषा से प्रेरणा प्राप्त की। उसने उसमें सुधार किया और उसे आगे बढ़ाया ।

सामंड ने अपनी परिभाषा द्वारा विश्लेषणात्मक विध्यात्मक दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन किया । उसने अपनी विधि की परिभाषा के द्वारा विधिशास्त्रों के अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत बनाया जिसे ओस्टिन ने संकुचित कर रखा था । उसने विधि के संबंध में न्यायालय की भूमिका को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । उसने अपनी परिभाषा में विधि के प्रयोजन और उसके लागू होने को न्यायालय की भूमिका पर आधृत करके उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया ।

यह उल्लेखनीय है कि आज के युग में न्यायालय की भारी सृजनात्मक भूमिका है । न्यायालयों ने अपनी इस भूमिका द्वारा विधि को समाज की बदलती हुई परिस्थिति के अनुरूप बनाया है ।

सामंड की परिभाषा का बाद के काल के विधिशास्त्रियों पर पर्याप्त प्रभाव हुआ और उन्होंने उससे प्रेरणा ली । उसकी परिभाषा में विधि की यथार्थवादी विचारधारा के बीज पाए जा सकते हैं ।

### ३.१.३ समाजशास्त्रीय परिभाषा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण कोई एक दृष्टिकोण नहीं है, अपितु इसके अंतर्गत अनेक चिंतन आते हैं । उन सबको सामान्य शीर्षक इस कारण दिया गया हैं कि वे एक सामान्य आधारभूमि से अग्रसर होते हैं, (अर्थात् वे विधि की परिभाषा समाज के साथ इसके संबंधों के शब्दों में देते हैं) इसलिए हम इनमें से कुछ परिभाषाओं का विवेचन करेंगे ।

#### o ड्युगिट

ड्युगिट विधि को आवश्यक रूप से और अनन्य रूप से एक सामाजिक तथ्य के रूप में परिभाषित करता । किसी भी अर्थ में यह अधिकारों को कथित करने वाला नियम-समूह नहीं है । विधि की आधारशिला सामुदायिक जीवन की आवश्यक अपेक्षाओं में है । यह परिभाषा केवल तभी अस्तित्त्व में रह सकती है जब मनुष्य एक साथ रहे। इसलिए सामाजिक जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य मनुष्यों की पारस्परिक निर्भरता है। सामाजिक संस्थाओं का लक्ष्य वह हैं कि वे इसकी रक्षा करें और इसे आगे बढ़ाए। केवल वे नियम ही विधि कहे जा सकते हैं जो इस उद्देश्य को आगे बढ़ाते है। विधि की मान्यता का आधार जन-स्वीकृति है संप्रभु की इच्छा नहीं । संप्रभु विधि के ऊपर नहीं है, अपितु वह इससे आबद्ध है । विधि को सामाजिक यथार्थों पर आधारित होना चाहिए ।

ड्युगिट की परिभाषा की अनेक आधारों पर आलोचना की गई हैं । प्रथम यह है कि उसने अधिकार की भावना को विधि से निकाल दिया । यह ठीक विचार नहीं हैं। दूसरे, इसलिए की उसने संप्रभु की हैसियत घटाकर उसे एक ऐसी एजेन्सी के रूप में कर दिया जो केवल जनस्वीकृति पर मुहर लगाता है जब कि वस्तुत: संप्रभु अब भी राज्य रूप अणुका केंद्र-बिंदु है । तीसरे, 'सामाजिक समेकता' पद बहुत अस्पष्ट है और इसका निर्वचन प्राय: किसी भी लक्ष्य के समर्थन के लिए किया जा सकता हैं सामाजिक समेकता को तय करने के लिए कोई नियम या कसौटियाँ नहीं हैं । इसमें न्याय का प्रश्न अंतर्भूत है और अंततोगत्वा यह प्राकृतिक विधि के एक सिद्धांत का रूप ले लेता है । इस प्रकार 'सामाजिक तथ्य' के रूप में विधि की परिभाषा अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण हैं । इस परिभाषा की महत्त्वता यह है कि यह इस तथ्य पर जोर देती है कि विधि अनिवार्य रूप से सामाजिक तथ्यों की उपज है ।

## o इहरिंग

बाद के काल के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों ने न्याय की नीतिशास्त्रीय और अमूर्त भावनाओं को विधि की परिभाषा से बिलकुल निकाल दिया है, और विधि की परिभाषा इसकी उपयोगिता और वास्तविक कार्यकरण के शब्दों में किया हैं । इहरिंग विधि की परिभाषा इस रूप में करता है- 'विधि समाज के जीवन की स्थितियों की गारंटी है; जो राज्य की बाध्यता की शक्ति द्वारा सुनिश्चित किया जाता है । इस परिभाषा से तीन बातें निकलती हैं- प्रथम, इस परिभाषा मे विधि को सामाजिक नियंत्रण का केवल एक साधन माना गया है । दूसरे, यह कि विधि एक सामाजिक

प्रयोजन की पूर्ति करने के लिए है । तीसरे, यह कि इसकी प्रकृति बल प्रयोग की है। दूसरे शब्दों में विधि का पालन राज्य द्वारा बाध्यता के माध्यम से सुनिश्चित किया जाना है ।

इहरिंग द्वारा दी गई परिभाषा बहुत स्पष्ट और सहज है । यह अपने में उन समस्त विशेषताओं को समाविष्ट करती हैं जो कि आधुनिक काल की विधि में है ।

- **एहरलिव**

एक अन्य महान समाजशास्त्रीय विधिशास्त्री एहरलिव है । वह अपनी परिभाषा में उन सब नियमों को सम्मिलित करता है जो किसी निर्दिष्ट समाज में सामाजिक जीवन को शासित करते हैं । इस परिभाषा की प्रवृत्ति उन क्षेत्रों को अपने अंतर्गत लाने की है जहाँ विधि, विधि न रहकर समाजशास्त्र बन जाती है । इस प्रकार वह चित्र, जिसे किसी परिभाषा को दिखाना चाहिए, धुँधला हो जाता है ।

- **रोस्को पाउंड**

एक पाउंड विधि की परिभाषा इस रूप में करता है कि यह 'सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए एक सामाजिक संस्था' है । यह अध्ययन के नवीन क्षेत्रों की ओर अग्रसर की गई है और वह सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में विधि के अध्ययन के लिये एक रचनात्मक योजना कथित करता है । तथापि एक परिभाषा के रूप में इसमें अनेक कमियाँ हैं । यह विधि की प्रकृति और विशेषता की ओर उचित ध्यान नहीं देती है । यह नीति और कार्यक्रमों की बात बहुत कहती है, साथ ही न्याय के एक सिद्धांत की ओर चलती है ।

## ३.२ यथार्थवादी आंदोलन एक परिभाषा के रूप में

यथार्थवादी आंदोलन जो समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का ही एक अंग माना जाता है, विधि की परिभाषा न्यायिक प्रक्रिया के शब्दों में करता है । न्यायमूर्ति होम्स, जिनकी कृतियों में कुछ लेखकों के अनुसार, यथार्थवादी आंदोलन के बीज पाए जाते हैं, कहता है कि 'इसके बारे में भविष्य-कथन की न्यायालय वस्तुत: क्या करेंगे, और कोई अन्य दावा नहीं, वह बात है जो मैं विधि का अर्थ समझता हूँ ।' जेरोम फ्रैंक, लिवेलिन, कार्डोजो और अन्य विधिशास्त्रियों ने इस पर अपने सिद्धांतों को खड़ा किया है । उनके अनुसार औपचारिक विधि केवल इस बात का एक अनुमान है कि न्यायालय क्या विनिश्चित करेंगे और विधि वही है जो कि न्यायालय वस्तुत: विनिश्चित करते हैं ।

यह बात एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना की ओर संकेत करती है जो विधि पर प्रभाव डालती है क्योंकि विधि का प्रशासन न्यायालयों के माध्यम से होता है, किंतु एक परिभाषा के रूप में इसमें बहुत कमी है । यह परिभाषा उस अंग के कार्य के रूप में हैं जो विधि का प्रशासन करता है । यह अधिकांशत: संयुक्त राज्य अमेरिका में न्याय-प्रणाली के अनुभव पर आधारित है । इसलिए यह परिभाषा सार्वदेशिक रूप में लागू होने योग्य नहीं ।

### ३.२.१ परिभाषा की व्यापकता

कतिपय प्रतिनिधि-परिभाषाओं का विवेचन करने के पश्चात् इस मुद्दे की समाप्ति से पूर्व इस संबंध में कुछ मत व्यक्त करना वांछनीय है । जिन परिभाषाओं का ऊपर

विवेचन किया गया हैं उनमें से अधिकांश केवल उस विधि-प्रणाली को ध्यान में रखकर दी गई हैं, जिसका परिभाषा देने वाले विधिशास्त्री को अनुभव था । वे विधि का एक आंशिक, न कि पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं । किसी परिभाषा का कार्य परिभाषा दिये जाने वाले शब्द या पद में निहित भाव को संक्षेप में किंतु पूर्ण रूप में व्यक्त करना हैं । केवल ऐसी ही परिभाषा सार्वदेशिक रूप से लागू हो सकती है । आधुनिक काल में राज्य और संप्रभुता की संकल्पनाओं में बहुत परिवर्तन हुआ हैं । यद्‌यपि विधि राज्य और संप्रभुता के अस्तित्त्व को सूचित करती है, किंतु उसे अनन्य रूप से संप्रभु के शब्दों में परिभाषित करना सिद्‌धान्त और व्यवहार दोनों में ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की उपेक्षा करना है । विधि की संकल्पना में भी परिवर्तन हो गया हैं । विधि की परिभाषा देने में इन बातों को विचार में लेना होगा ।

विधि एक सामाजिक संस्था है । इसलिए, यह समाज की स्थिति को मानकर चलती है । विधि के अस्तित्त्व में आने के लिए समाज के सदस्यों को कतिपय मूल्यों पर सहमत होना होगा । सदस्यों द्‌वारा ऐसा करार और इसका पालन विधि का प्रारंभ है । क्रमश: समाज का विकास होता है । यह विधि के निर्माण का और उसे प्रवर्तित करने का तंत्र खड़ा करता है । बाद में वे व्यक्ति या समूह जो किसी समय विशेष पर विधि-तंत्र पर प्रभुत्व रखते हैं अपने दृष्टिकोण के अनुसार विधि में बदलाव करते चले जाते हैं । इस प्रकार विधि विकसित होती है । विधि आरंभ में आदर्श न्याय रही होगी, परंतु अपने विकास-क्रम में यह वैसा ही नहीं रहती और इस रूप का न्याय बन जाती हैं जैसा कि उसे विधि तंत्र पर नियंत्रण रखने वाले समझते हैं । दूसरे शब्दों में इस

प्रक्रम पर 'न्याय' का अर्थ वह बात होती है जो-विधिक है । विधि के इस रूप में निम्नलिखित तत्त्व हैं-

१. विधि राज्य की स्थिति को जानकर चलती है । बिना राज्य के भी विधि हो सकती है । जैसे-आदिम विधि, किंतु 'विधि' शब्द के आधुनिक अर्थ में राज्य भी सम्मिलित हैं ।

२. राज्य उन नियमों को बनाता है, या बनाने को प्राधिकृत करता है, मान्यता देता है, या मंजूरी देता है, जिन्हें विधि कहा जाता है ।

३. नियमों के प्रभावी होने के लिए उनके पीछे अनुशास्ति होती है ।

४. वे नियम (जो विधि कहलाते हैं) किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं । वह प्रयोजन सामाजिक प्रयोजन हो सकता है, या यह केवल किसी तानाशाह के किसी व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति का हो सकता है।

संक्षेप में, विधि की ये विशेषताएँ हैं । किसी परिभाषा के सार्वदेशिक होने के लिए उसमें सब तत्त्वों को सम्मिलित होना चाहिए ।

## ३.३ विधि से संबंधित कुछ और अन्य मत

### (I) व्याख्यात्मक या प्रणाली-बद्ध

जो ऐसी किसी वास्तविक विधि की प्रणाली के तत्त्वों का विवेचन करता है, जो कि किसी समय मौजूद हो, चाहे भूतकाल में या वर्तमान में ।

### (II) विधिक इतिहास

जो किसी विधि-प्रणाली के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का विवेचन करता है ।

### (III) विधान विज्ञान

इसका प्रयोजन ऐसी विधि बनाना है जैसी कि यह होनी चाहिए । यह विधि-प्रणाली के आदर्श भविष्य और उन प्रयोजनों का जिनके लिये इस का अस्तित्त्व होता है, वर्णन करता है ।

## ३.३.१ विधिशास्त्र की तीन शाखाएँ

'विधिशास्त्र' शब्द को इसके 'विशिष्ट' अर्थ में लेते हुए सामंड ने इस विषय का तीन शाखाओं में विभाजन किया है, अर्थात् 'विश्लेषणात्मक', 'ऐतिहासिक' और 'नीतिशास्त्र'। यह विभाजन उपर दिए गए विभाजन के अनुरूप है। विषय के पूरे वर्णन के लिए तीनों शाखाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए। सामंड ने इन तीन शाखाओं के क्षेत्र का भी वर्णन किया है। अपनी स्वयं की पुस्तक के बारे में वह कहता हैं कि 'प्राथमिक रूप से और आवश्यक रूप से यह विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र पर एक पुस्तक हैं ।' इस संबंध में वह उस विधि-दर्शन के जो कि यूरोपीय महाद्वीप में विद्यमान है और जो एक बड़ी सीमा तक अपने क्षेत्र और पद्धति में मुख्य रूप से नीतिशास्त्रीय है, मुकाबले में आंग्ल-विधि-दर्शन की मुख्य प्रवृत्ति का अनुसरण करने का प्रयत्न करती है। यह आगे कहता हैं कि मैंने अपने अध्ययन में से ऐतिहासिक और नीतिशास्त्रीय पहलू को पूरी तरह बाहर नहीं किया है क्योंकि उनको पूरी तरह से बाहर निकालने पर कोई व्यक्ति विधि का एक संपूर्ण विश्लेषणात्मक स्वरूप बताने में समर्थ नहीं होगा ।

यद्यपि सामंड ने विषय की सीमा को बड़े स्पष्ट रूप से बताने का प्रयत्न किया है किंतु वह एक ठीक और वैज्ञानिक परिभाषा देने में असफल रहा हैं । उसकी

परिभाषा के आधार पर एक ही शब्द का बिलकुल भिन्न प्रकृति की बातों का अर्थ देने के लिए प्रयोग हो सकता है और अनेक अस्पष्ट धारणाएँ विषय के क्षेत्र में आ जाएँगी।

**ग्रे**-विधिशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार करता है कि यह विधि का विज्ञान है, अर्थात् न्यायालयों द्वारा अनुसरण किए जाने वाले नियमों और उनमें अन्तर्निहित सिद्धांतों को प्रणालीबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । उसकी परिभाषा की बाद वाले विधि शास्त्रियों द्वारा आलोचना की गई हैं । ग्रे की आलोचना करता हुआ जुलियस स्टोन कहता हैं कि अपनी परिभाषा में ग्रे विधिशास्त्र के किसी सीमा क्षेत्र को नियत करने में असफल रहा है, बल्कि उसने विधिशास्त्र को घटा करके उसे केवल नियमों को क्रमबद्ध करने पर ला दिया है ।

**प्रो. ऐलन–** एक महान अंग्रेज विधिशास्त्री प्रो. एलेन ने विधिशास्त्र को इस रूप में परिभाषित किया है- कि 'यह विधि के आधारभूत सिद्धांतों का वैज्ञानिक संश्लेषण है । यह परिभाषा एक अमूर्त परिभाषा प्रतीत हो सकती हैं परंतु यह विषय की प्रकृति का सही रूप प्रस्तुत करती है । परिभाषा को विधि के केवल एक या कुछ पहलुओं पर सीमित करने से यह थोड़े समय में उपयोगिताहीन हो जाएगी ।

**एच.एल.ए.हार्ट–** हार्ट प्रस्तुत शताब्दी के बड़े विधिशास्त्रियों में से है और उसने विधिशास्त्र के विकास में बहुमूल्य योगदान किया हैं । उसका सिद्धांत ओस्टिन के सिद्धांत की कठोर विध्यांत्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आया । आस्टिन ने कहा था कि केवल समादेश और अनुशासित ही विधि के तत्त्व हैं । हार्ट के अनुसार विधि नियमों की एक प्रणाली है- प्राथमिक और गौण जिनका संयोग विधि की प्रकृति

को स्पष्ट करता है और विधि शास्त्र की कुंजी प्रस्तुत करता है। प्राथमिक नियम कर्तव्य अधिनियम करने वाले नियम हैं और गौण नियम वह शक्ति प्रदत करते हैं जो कर्तव्यों को निमीत करने अथवा बदलने का प्रावधान करती है । प्राथमिक नियम का गौण नियमों द्वारा अनुपुरित किया जाना विधि पूर्व से विधि जगत में की और कदम है । हार्ट की विधिक्र प्रणाली जो प्राथमिक तथा गौण नियमों का संमेलन है प्राकृतिक विधि के न्युनतम तत्त्व, अर्थात् विधि और नैतिकता, के बिना पूर्ण नहीं होगी । हार्ट ने विधि और नैतिकता को परस्पर संबंधित करके, जिसे आस्टिन नहीं कर सका था, विधि के विज्ञान के रूप में विधिशास्त्र के क्षितिज का विस्तार किया ।

अनेक अन्य विधिशास्त्रियों ने भी विधिशास्त्र की अपनी-अपनी परिभाषाएँ दी हैं। इसमें से कुछ परिभाषाओं को नीचे दिया जा रहा हैं ।

पैटरसन के अनुसार विधिशास्त्र का अर्थ उस ज्ञान समूह से है जिसका संबंध विधि की एक किस्म (शाखा) से है ।

जुलियस स्टोन के अनुसार विधिशास्त्र का अर्थ विधिज्ञों की बहिर्मुखता है। यह विधिज्ञों द्वारा विधि के अलावा अन्य विषयों में विद्यमान ज्ञान से प्राप्त प्रकाश में विधि के नियमों आदर्शों एवं तकनीकियों की परीक्षा हैं ।

डायस के अनुसार 'विधिशास्त्र' शब्द का कोई समुचित अर्थ नहीं है । विधिशास्त्र विधि के ढाँचे, उपयोगों और कार्य करने और विधि संकल्पनाओं से संबंध रखता है।

कीटन का कथन है कि विधिशास्त्र विधि के सामान्य सिद्धांतों का अध्ययन और प्रणालीबद्ध क्रम स्थापन है ।

विधिशास्त्र पर एक आधुनिक लेखक का मत है- 'अपने सरलतम रूप से विधिशास्त्र की परिभाषा इस रूप में दी जा सकती है कि यह इस प्रश्न कि 'विधि क्या है' के उत्तरों का समूह हैं । यह अनुभव करते हुए कि यह परिभाषा संतोषजनक नहीं है, वह आगे कहता हैं कि यह भ्रामक रूप से सुगम परिभाषा है-निश्चित रूप से इसके उत्तर के बारे में तुरंत सहमति हो सकती है: यदि विषय का मर्म इतना सरल है तो ऐसा क्यों कि यह करीब २५०० वर्ष पूर्व से कम से कम क्लासिक यूनानियों के समय से उठाया जाता रहा हैं और इस प्रश्न का कि 'विधि क्या है' कोई नियत उत्तर नहीं मिला हैं । इस प्रश्न के बारे में कि 'विधि क्या है' अनेक विधिशास्त्रीयों के मतों का विवेचन करने के पश्चात् वह यह निष्कर्ष निकालता हैं कि-

- 'हम अपने सामाजिक इतिहास और उस प्रणाली की प्रकृति जिनके द्वारा हम विश्व में अपनी स्थापनाएँ ग्रहण करते हैं के अर्थान्वयन और पुन: अर्थान्वयन की आवश्यकता से बच नहीं सकते । यही विधिशास्त्र का कार्य है; हमें वह साधन प्रदान करना हैं जिसके द्वारा विधि के तत्त्व को समझा जा सके और अपने को उससे जोड़ा जा सके । कदाचित् उन कहानियों की सीमा नहीं हैं जिन्हें हम कह सकते हैं और यह स्वीकार करना कि हमारी कहानियाँ एक मास्टर कहानी में नहीं बनाई जा सकती, किसी व्यक्ति को असफलता के समान प्रतीत होगा जिसे जीवनभर के प्रश्नों को एक उत्तर मिलने के संतोष की आवश्यकता है। इसके विपरीत, तथापि यह स्वीकार करते हुए कि हमारे भाग्य में

अर्थान्वयन और पुन: अर्थान्वयन करना ही लिखा है, यही बताता हैं कि मानव होने के नाते हमें लगातार परिवर्तन, घटनाओं और प्रयोजनाओं, संवाद और अर्थान्वयन के साथ चलना हैं और नई स्थापनाओं के ढाँचे बनाने की आवश्यकता के साथ चलना है, इस लिए विधि हैं ।'

यह उल्लेखनीय हैं कि विधि की सीमा बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं । वे नियम जिनको ओस्टिन ने विधि मानना अस्वीकार कर दिया था केवल विधि ही नहीं समझे जाते, अपितु विधि के बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग हैं । वे कसौटियाँ, जो यह तय करने के लिए रखी गयी थीं कि क्या कोई नियम विधि है या नहीं, बहुत शीघ्रता से बदल रही है और उनका स्थान नई कसौटियाँ ले रही हैं, जिनके अंतर्गत अनेक अन्य नियम आ सकते हैं जो विधि के अंतर्गत नहीं आते थें । विधि की परिभाषा, प्रयोजन और क्षेत्र के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं । इन परिस्थितियों में एक ऐसी परिभाषा देना बहुत ही कठिन हैं जो सभी को मान्य हो । यह केवल विधि की परिभाषा और विधिशास्त्र संबंधी विचारधाराओं को जानने के बाद ही हो सकता हैं कि पाठक विषय की प्रकृति और क्षेत्र के बारे में कोई विचार बना सकें । अनेक बड़े विधिशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं की विवेचना करने और उनकी कमियों को बताने के पश्चात् एक संक्षिप्त परिभाषा यह दी जा सकती हैं (जिससे बहुत से लोक असहमत न होंगे।) कि विधिशास्त्र विधि से संबंधित अध्ययन है । जो मानव व्यवहार के सही और गलत कार्यों का मूल्यांकन करती है । ये सही-गलत के मूल्य जनसमुदाय के संदर्भ में और उनकी सहमती पर निर्धारित होगे । भविष्य में मानव मूल्य के बदलने पर इन नियमों में भी परिवर्तन होना संभव है ।

- **विषय की सीमा और रीति के संबंध में भिन्न–भिन्न मत–** परिभाषा के समान ही विधिशास्त्र की सीमाओं और अन्य रीतियों के बारे में भिन्न भिन्न मत हैं । विभिन्न विचारधाराओं में विभिन्न सिद्‌धांत प्रस्तुत किये गए हैं । किसी व्यक्ति की इसके बारे में कोई धारणा उन विचारधाराओं को अध्ययन करने के बाद ही हो सकती है । ये विचारधाराएँ एक-दूसरे की विरोधी प्रतीत होती हैं, किंतु ये वास्तव में ऐसी नहीं हैं । वे एक ऐतिहासिक विकास-क्रम में आती हैं और एक दूसरे की पूरक हैं । ये सभी साथ मिलकर विषय का पूरा रूप उपस्थित करती हैं ।

## ३.३.२ विधिशास्त्र एवं विधिक सिद्‌धांत

यद्‌यपि 'विधिशास्त्र' और 'विधिक सिद्‌धांत' शब्दों का अक्सर एक दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है, तथापि उनका एक ही प्रकार के अध्ययन अथवा खोज का अर्थ नहीं हैं । जैसा कि पहले कहा गया है, विधिशास्त्र अथवा जुरिसपूडेन्स शब्द की उत्पत्ति रोमन शब्द जूरिसप्रुडेन्सिया से हुई हैं । इस प्रकार इसका प्रारंभ प्राचीन है । 'विधिक सिद्‌धांत' शब्द गत शताब्दी में गढ़ा गया है । यह विधि के अध्ययन का एक नया क्षेत्र बताता है । 'विधिशास्त्र' शब्द विधि में कतिपय प्रकार की खोज बताता है जो सैद्धांतिक स्वरूप का भी हो सकता है । 'विधिक सिद्‌धांत' शब्द विधि के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाता हैं । एक दार्शनिक तत्त्व इसके साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है । इस दृष्टिकोण की प्रकृति को बताते हुए फीडमैन कहता है- 'विधिक

सिद्धांत के बारे में सारा क्रमबद्ध चिंतन एक छोर पर दर्शन से जुड़ा तो दूसरे छोर पर राजनीतिक सिद्धांत से। कभी-कभी प्रारंभ बिंदु दर्शन है और राजनीति आदर्श की भूमिका गौण होती हैं जैसा कि जर्मन क्लैसिकल तत्त्वमीमांसीय अथवा नवकांटवादियों में है। कभी-कभी राजनीतिक आदर्श प्रारंभ बिंदु है, जैसा की समाजवादी अथवा फासिस्टवादी विधिक सिद्धांतों में हैं। कभी-कभी ज्ञान सिद्धांत और राजनीतिक आदर्श एक सामंजस्यपूर्ण प्रणाली में मिले-जुले होते हैं जहाँ पर दोनों के अपने-अपने अंशों को अलग कर पाना संभव नहीं है जैसा कि स्कालेस्टिक प्रणाली अथवा हीगल की दार्शनिक प्रणाली में हैं, । किंतु सारे विधिक सिद्धांतों में दार्शनिक का विश्व के साथ अपनी स्थिति के ऊपर चिंतन होना आवश्यक है- और अपना स्वरूप और विनिर्दिष्ट तत्त्व दार्शनिक सिद्धांत से प्राप्त करना है- समाज के सर्वोच्च स्वरूप पर विचारों को प्रतिपादित करना है। क्योंकि विधि के लक्ष्य के बारे में सारा चिंतन मनुष्य के एक विचारशील व्यक्ति के रूप और एक राजनीतिक प्राणी के रूप में संकल्पना पर आधारित है।'

तथापि यह उल्लेखनीय हैं कि यद्यपि विधिक सिद्धांत धर्म, दर्शन, राजनीति, आदर्श, नीतिशास्त्र आदि से जुड़ा है किंतु इसने एक स्वतंत्र हैसियत प्राप्त कर ली है। इस विकास के प्रति निर्देश करते हुए फीडमैन कहता है-

'उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व विधिक सिद्धांत, दर्शन, धर्म, नीतिशास्त्र और राजनीति का एक उप-उत्पाद था।' महान विधिक चिंतन मुख्यतया दार्शनिक पादरी अथवा राजनीतिक ही रहे है। विधिक सिद्धांत का दार्शनिक अथवा राजनीतिज्ञों से

निकलकर निर्णायक रूप से विधिज्ञों से विधिक दर्शन का होना अभी हाल में हुआ है। यह न्यायशास्त्री शोध तकनीक और वृत्तिक प्रशिक्षण में एक बड़े विकास के काल के बाद आया है । विधिक दर्शन का यह नया युग मुख्य रूप से वृत्तिक विधिज्ञ का अपने विधिक कार्य का सामाजिक न्याय की समस्याओं से सामना होने पर प्रारम्भ हुआ है।

परंपरागत आती संकल्पना और जैसा कि उसे उन्नीसवीं शताब्दी के आंग्ल विधिशास्त्रियों द्‌वारा समझा गया है, के अनुसार विधिशास्त्र विध्यात्मक विधि का एक प्रणालीबद्‌ध अध्ययन है । इसका सीमा क्षेत्र क्रमश: बढ़ता गया है और इसमें विधि का दर्शन भी सम्मिलित हो गया है । विधि के दर्शन के रूप में इसके तीन संबंधित प्रयोजन हैं, नामत: मूल्यांकन अथवा विश्लेषण, सामान्य संश्लेषण और विधिक संकल्पनाओं में तर्कपूर्ण रूप से सुधार जो समाज में व्यवस्था लाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए है । विधिक सिद्‌धांत का अर्थ जैसा कि ऊपर कहा गया है, विधि के दर्शन का सिद्‌धांत हैं । इसका मुख्य कार्य विधि के दार्शनिक तत्त्व की परीक्षा और विश्लेषण करना है । यह विधि की, प्रकृति और अन्य सम्बन्धित बातों जिसमें उसका लक्ष्य भी सम्मिलित हैं का विवेचन करता है । यह मूल्यांकनात्मक, मानात्मक और आदर्शात्मक होता हैं । यह उस सारे क्षेत्र से सरोकार नहीं रखता जिससे विधिशास्त्र का सरोकार है ।

सामंड का विद्‌वान् संपादक भी विधिशास्त्र और विधिक दर्शन में भेद करता है। वह कहता हैं कि विधिशास्त्र विधि में कतिपय प्रकार की खोज को दिया गया नाम है जो खोज एक अमूर्त सामान्य और सैद्धांतिक स्वरूप की है जो विधि और विधिक प्रणाली के मूलभूत सिद्‌धांत को व्यक्त करने का प्रयत्न करती है । विधिक सिद्‌धांत

के बारे में वह कहता है कि यह इस प्रश्न का कि विधि क्या हैं उत्तर देने का प्रयास है जिससे विधिक संकल्पनाओं में से अधिकांश को, जिसमें स्वयं विधिक संकल्पना भी है, स्पष्ट किया जा सके ।

इस प्रकार यह प्रकट होगा कि विधिक सिद्धांत की तुलना में विधिशास्त्र में अध्ययन का एक बड़ा क्षेत्र आता है । फिनह अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू लीगल थ्योरी' के सामान्य परिचय मे इसकी व्याख्या करता हुआ कहता है-

'यह पुस्तक विधिशास्त्र के समूचे क्षेत्र को सम्मिलित नहीं करती । इसका सरोकार विधिक सिद्धांत से, उन दृष्टिकोणों से हैं जिन्होंने विधि विषय के मूलभूत संघटक तत्त्वों के वर्णन और विश्लेषण को अपनाया है । तथापि विधिक सिद्धांत का अध्ययन विधिशास्त्र के केवल एक पहलू का यद्यपि वह एक बड़ा पहलू है, अध्ययन है, और इसलिए इस आशय में परिचयात्मक टिप्पणी उन अन्य विधिशास्त्रीय अध्ययनों में सहायक हो सकती है जो हमारे प्रस्तुत सीमा क्षेत्र में नहीं है । सामान्यत: विधिशास्त्र और विशेषत: विधिक सिद्धांत के बीच कोई पक्का प्रभेद वस्तुत: होने योग्य नहीं है ।'

इन दोनों शब्दों मे केवल अर्थों को आधार बनाने से उनके अपने-अपने विषय-क्षेत्र पर प्रकाश नहीं पड सकेगा । न ही उनकी अपनी-अपनी विषय-वस्तु को लेकर विधिक सिद्धांत का सामान्य विधिशास्त्र से भेद करना उपयोगी होगा । जबकि गौण विधिक संकल्पनाओं जैसे कब्जा, उपेक्षा और निगमन का विधिशास्त्रीय अध्ययन किया जा सकता है, विधिक सिद्धांत का सरोकार भी एक विधिक संकल्पना नामत: स्वयं विधि पर केंद्रित हो । चाहे वह विधि का उसके समग्र रूप में हो या उसमें की एक

विशेष विधिक संकल्पना की प्रकृति के विश्लेषण की बात ही दोनों किस्मों के विश्लेषण में बहुत सी बातें सामान्य है जिसमे उनमें प्रभेद कठिन है ।'

वह आगे कहता है-

मोटे तौर पर, विधिक सिद्धांत में विधि के लिए अनिवार्य और विधिक प्रणालियों में सामान्य विशेषताओं का अध्ययन आता है । इसका एक मुख्य उद्देश्य विधि के मूलभूत तत्त्वों का जो इसे विधि बनाते है, विश्लेषण और उनका नियमों और मानकों के रूपों से प्रभेद आता है । इसका उद्देश्य विधि व्यवस्था की उन प्रणालियों से जो विधिक प्रणाली नहीं कही जा सकती है (अथवा सामान्य रूप से नहीं कही जाती है) और अन्य सामाजिक स्थितियों से प्रभेद करना है । इस प्रश्न का कि 'विधि क्या है' का कोई अंतिम और बँधा हुआ उत्तर देना अथवा उन बहुत से प्रश्नों के जो विधि की अनिवार्य प्रकृति के बारे में उठाए गए हैं, एक मात्र या अनन्य उत्तर प्रस्तुत करना संभव साबित नहीं हो सकता है।

यह प्रकट होता हैं कि यद्यपि उनकी अपनी उत्पत्ति के समय 'विधिशास्त्र' और 'विधिक सिद्धांत' विधि के अध्ययन के दो संबंधित किंतु अलग-अलग क्षेत्र थें, किंतु क्रमश: दोनों के अध्ययन क्षेत्र का विस्तार हुआ है और विश्लेषण अथवा सैद्धांतीकरण अथवा दार्शनिकीकरण पर भिन्न-भिन्न मात्रा में जोर देते हुए प्राय: सामान्य क्षेत्र उनके भीतर आता है । विधि के सारे पहलुओं के अध्ययन को अपने भीतर रखने की बात को दिखाने के लिए विधिशास्त्र और विधिक सिद्धांत पद का प्रयोग किया जाता हैं । इस रूप में विषय पर पाठ्य पुस्तकों के आधुनिक लेखक अपनी कृति का नाम 'विधिशास्त्र और विधि का सिद्धांत' रखते हैं ।

## ३.४ विधिशास्त्र का क्षेत्र और उपयोग

विधिशास्त्र में हम मुख्य रूप से विधि की प्रकृति जिसके अंतर्गत इसकी परिभाषा, वर्गीकरण और अन्य बाते आती हैं, इसके स्त्रेत और प्रयोजनों और अधिकारों और कर्तव्यों की प्रकृति और उससे संबंधित अन्य बातों का अध्ययन करते हैं। विधिशास्त्र के कुछ उपयोग निम्नलिखित हैं-

१. यह हमें विधि की प्रकृति का बोध कराता है। यह विधि के वास्तविक नियमों के अध्ययन और उनके आधारभूत सिद्धांतों का अन्वेषण करने में सहायता करता हैं।

२. यह विधि का वैज्ञानिक विकास करने में सहायक होता है।

३. यह मस्तिष्क की आलोचनात्मक क्षमताओं को विकसित करता हैं और विधिक अभिव्यक्तियों और शब्दावलियों को उचित बोध कराता हैं।

४. विधिशास्त्र पर शोधों का समकालीन सामाजिक राजनीतिक चिंतन पर प्रभाव पड़ता हैं और साथ ही वे भी उनके आदर्शों से प्रभावित हो सकते हैं।

५. विधिशास्त्र विधिक संकल्पनाओं को तर्कयुक्त बनाने वाली विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में हमें समर्थ बनाती हैं। दूसरे शब्दों में, यह विधि की जटिलताओं को अधिक समाधान योग्य और तर्कपूर्ण बनाने का काम करती हैं और इस प्रकार सिद्धांत विधि के क्षेत्र में प्रयोग को सुधारने में सहायता कर सकती है।

६. विधिशास्त्र का शिक्षात्मक मूल्य भी हैं। विधिक संकल्पनाओं का तर्कपूर्ण विश्लेषण विधिज्ञों के दृष्टिकोण को विस्तृत बनाता है और उनकी तर्क तकनीक को प्रखर बनाता है । यह उनकी वैयक्तिकता और औपचारिकतावाद को दूर करने में सहायक होता हैं और उन्हें सामाजिक यथार्थों और विधि के कृत्यात्मक पहलू पर केंद्रित करने को प्रशिक्षित करता है ।

७. विधिशास्त्र किसी निर्दिष्ट समाज में विधि के बुनियादी विचारों और सिद्‍धांतों पर प्रकाश डालता है ।

## ३.५ विधि-सिद्‍धांत और विधि संबंधी विचारधाराएँ

विभिन्न कालों और देशों में विधिशास्त्रीयों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विधि के अध्ययन का प्रयत्न किया है । उन्होंने विधि की परिभाषा दी है, इसके स्त्रोतों और प्रकृति को निश्चित किया है और इसके प्रयोजन और लक्ष्यों का विवेचन किया है । विधि के बारे में इस व्यवस्थित चिंतन को 'विधि-सिद्‍धांत' या 'विधि-दर्शन कहा गया है । स्पष्टता और उनके दृष्टिकोणों को समझने में सुविधा के लिए ये विधिशास्त्री विधि के संबंध में अपने विचार के आधार पर विभिन्न विचारधाराओं में विभाजित किए गए हैं । तथापि ऐसा कोई विभाजन बहुत संपूर्ण और सटीक नहीं हो सकता है। ऐसे अनेक विधिशास्त्री है जो किसी एक विचारधारा की ठीक-ठीक परिधि में नहीं आते । कुछ विचारधाराएँ दो दृष्टिकोणों को एक संश्लेषण मात्र है । तथापि एक के दूसरे में मिले होने के बावजूद भी यह विभाजन उपयोगी है । यह विधि दर्शन के विकास के बोध में

सहायक होता है । यद्यपि इन दृष्टिकोणों का, जो विचारधारा कहे जाने के उचितत: योग्य है, प्रारंभ मात्र उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ है, किंतु उस काल के पूर्व के विधि संबंधी चिंतन का एक संक्षिप्त कथन भी आवश्यक हैं क्योंकि इसने कभी-कभी मार्क्सीय शब्दावली में 'थीसिस' के रूप में कार्य किया है और कभी-कभी इसने एक नए चिंतन की आधारशिला के रूप में कार्य किया है ।

## ३.६ विधि के प्रकार

### o विधि का विभिन्न अर्थों में प्रयोग

'विधि' शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में किया गया है । यह विभिन्न प्रकार के नियमों और सिद्धांतों को व्यक्त करती है । इस अध्याय में हम 'विधि' को दिये गए विभिन्न अर्थों का विवेचन करेंगे और उस अर्थ को बतायेंगे जिसमें इसे विधिशास्त्र में लिया गया है । दूसरे शब्दों में, हम विधि के प्रकारों का विवेचन करेंगे । अपने आम प्रयोग में विधि का अर्थ अनेक बातें होती हैं । ब्लैकस्टोन कहता है-'विधि अपने सर्वाधिक सामान्य और व्यापक अर्थ में कार्य के एक नियम का बोध कराती है और यह बिना भेद के सभी प्रकार के कार्यों, चाहे वे सचेत तर्कपूर्ण या अतर्कपूर्ण हों, को लागू की जाती है । इस प्रकार हम गति की गुरुत्वाकर्षण की, दृष्टि-विज्ञान की, या यंत्रविज्ञान की विधियाँ साथ ही प्रकृति की विधियाँ कहते हैं ।'

विधि का यह अर्थ (क्रिया का एक नियम), सामान्य और व्यापक है जैसा कि ब्लैकस्टोन स्वयं कहता है- यद्यपि विधिशास्त्र के दृष्टिकोण से यह बहुत अस्पष्ट है और भ्रमपूर्ण है किंतु यह विधि के उन विभिन्न अर्थों को समझने में सहायक हैं जिनमें

इसका प्रयोग ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है । इतना जानने के पश्चात् उस अर्थ का पता लगाना बहुत सरल हो जाता है जिससे विधिशास्त्र सरोकार रखता हैं ।

विधि (अपने व्यापक अर्थ में) साधारणत: निम्न प्रकार की होती हैं-

१. आज्ञात्मक विधि

२. भौतिक या वैज्ञानिक विधि

३. प्राकृतिक या नैतिक विधि

४. कन्वेन्शन-विधि

५. रूढ़िगत विधि

६. प्रयोगात्मक या तकनीकी विधि

७. अन्तर्राष्ट्रीय विधि

८. सिविल विधि

**१. आज्ञात्मक विधि**

आज्ञात्मक विधि का अर्थ है, 'किसी प्राधिकारी द्वारा मनुष्यों पर अधिरोपित कोई आदेश या क्रिया का नियम, जो प्राधिकारी का पालन (प्रवर्तन) भी कराता है ।' प्रवर्तन भौतिक बल-प्रयोग से या अन्य साधनों से सुनिश्चित किया जा सकता है । एक संगठित समाज में विधि की प्रवृत्ति आज्ञात्मक बनने की होती है । केवल राज्य द्वारा दिए गए नियम ही नहीं अपितु अन्य संगठनों के और संघों के नियम भी आज्ञात्मक होते हैं क्योंकि उनके  पीछे किसी न किसी प्रकार की अनुशास्ति होती हैं । यद्यपि संघों के नियम के पीछे होने वाली अनुशास्ति की प्रकृति राज्य द्वारा बनाए गए नियमों

के पीछे होने वाली अनुशासित की प्रकृति से बिल्कुल भिन्न होती है, किंतु वे एक बात में समान होती हैं कि दोनों अनुपालन को सुनिश्चित करती है । बहुत से नियम जो ओस्टिन के अनुसार केवल विध्यात्मक नैतिकता है, इस दृष्टिकोण के अनुसार आज्ञात्मक है । आन्तर्राष्ट्रीय विधि भी, जिसका अनुपालन सामान्यतया लोकमत और युद्ध की धमकी के दबाव द्वारा सुनिश्चित किया जाता है, एक आज्ञात्मक विधि है । अनेक विधिशास्त्रियों के अनुसार केवल आज्ञात्मक विधि ही विधिशास्त्र की उचित विषय-वस्तु है । वे कहते हैं कि किसी राष्ट्र की विधि या 'सिविल विधि' संप्रभु का समादेश है । इस प्रकार यह आज्ञात्मकविधि है क्योंकि इसके पीछे राज्य द्वारा एक अनुशास्ति होती है । यह अनुशास्ति बल प्रयोग या बाध्यता है। इंग्लैंड में हाब्स, बेन्थम और ओस्टिन ने विधि की परिभाषा समादेश के शब्दों में की। ओस्टिन ने अनुशास्ति को विधि की आधारशिला के रूप में मानकर अपनी विचारधारा की स्थापना की जिसे कभी-कभी आज्ञात्मक विचारधारा भी कहा जाता है ।

यदि कोई व्यक्ति आज्ञात्मक विधि का उल्लंघन करता है तो उसे कोई क्लेश भोगना होगा जिसे अनुशास्ति कहा जाता है । अनुशास्ति को प्रकृति उस प्राधिकारी के साथ परिवर्तित होती रहती है जिसने विधि बनाई है । उदाहरण के लिए, राज्य भौतिक बल प्रयोग को शासित के रूप में लागू करता है किंतु कोई क्लब या ऐसा कोई अन्य संगठन, जब कोई सदस्य किसी नियम का उल्लंघन करता हैं तो जुर्माने या उसके निटकासन का सहारा लेता है । इसी प्रकार, मान्य सामाजिक नियमों के विरुद्ध किसी व्यक्ति द्वारा कोई आचरण किए जाने पर समाज में उसकी निंदा होती है या

तिरस्कार होता हैं । अन्तर्राष्ट्रीय विधि में नियमों के उल्लंघन से युद्ध हो सकता है । अनुशास्ति का जैसा कि हम उसका यहाँ प्रयोग कर रहे हैं अर्थ केवल दंड नहीं हैं अपितु इसके अन्तर्गत वे सब परिणाम आते हैं जो किसी नियम का उल्लंघन होने पर होते हैं ।

### २. भौतिक या वैज्ञानिक विधि

इस प्रकार की विधि उन एकरूपताओं और नियमितताओं को दर्शित करती हैं जो कि प्रकृति में देखी जा सकती हैं, जैसे प्रकाश और उष्मा की विधियाँ । इसके अंतर्गत मनुष्यों के वे कार्य भी आते हैं जो एकरूप है, जैसे निद्रा ।

### ३. प्राकृतिक विधि

इसके अन्य नाम भी हैं, जैसे 'नैतिक विधि', 'दैवी विधि', 'ईश्वरीय विधि', सार्वलौकिक' या 'शाश्वत विधि', आदि । यह प्राकृतिक रूप से ठीक और गलत के सिद्धांतों, दूसरे शब्दों में न्याय की आदर्श-संकल्पना का भाव देती है । इसे प्राय: विध्यात्मक विधि या विध्यात्मक न्याय से भिन्न समझा गया है । प्राकृतिक विधि और न्याय की कल्पना नैतिक या धार्मिक आधारों पर आधृत है । सामान्यत: यह आदर्श विधि, या विधि क्या होनी चाहिए इसका एक चित्र प्रस्तुत करती है । प्राकृतिक विधि की कल्पना हम बहुत प्राचीन काल से पाते हैं । यह प्राचीन युनानी-रोमन और हिंदू विधि चिंतन में विद्यमान है । जिन विधिशास्त्रियों ने प्राकृतिक विधि का सिद्धांत दिया उन्होंने यह बात जोर देकर कहा कि विध्यात्मक विधि को इसके अनुरूप होना चाहिए। इनमें से अनेक ने यहाँ तक कहा कि यदि विध्यात्मक विधि इसके अनुरूप

नहीं है, तो वह विधि अमान्य है। प्राकृतिक विधि नियमों और विध्यात्मक विधि की परस्पर एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया हुई और इससे विधि का विकास हुआ। रोमन विधि में प्राकृतिक विधि ने सिविल विधि की कठोरता को अनेक बातों में कम किया। प्राकृतिक विधि की संकल्पना से ऐसे सिद्धांतों और नियमों के एक समूह का उद्भव हुआ जिसे रोमन विधि में 'एक्विटास' कहा जाता था, और जिसे इंग्लैंड में इक्विटी (साम्या) कहा गए हैं। समय-समय पर प्राकृतिक विधि के अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं और उन्होंने विधि को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किए हैं और उनसे राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं। 'प्राकृतिक विधि' के अनेक सिद्धांत विभिन्न राष्ट्रों के संविधानों में समाविष्ट किए गए हैं और न्याय के शासन में लागू कीए जाते हैं। प्राकृतिक विधि ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि को एक भारी समर्थन दिया हैं और इसे स्थिर होने के लिए एक ठोस आधार प्रदान किया है।

## ४. कन्वेन्शन विधि

कन्वेन्शन विधि से अभिप्राय उन नियमों या नियम-समूह से हैं जो व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह के बीच करार के परिणाम है। वे एक दूसरे के प्रति अपने आचरण के विनियमन में इन नियमों का पालन करने के लिए करार करते हैं। यह करार इसके पक्षकारों के लिए विधि है। स्वैच्छिक सोसाइटिओं के नियम ऐसी विधि के उदाहरण हैं। कन्वेन्शन विधि कुछ मामलों में राज्य द्वारा प्रवृत की जाती है। जब यह राज्य द्वारा प्रवृत की जाती है तो यह सिविल विधि से भिन्न एक पृथक् और सुभिन्न विधि है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि एक कन्वेन्शन विधि हैं क्योंकि यह नियमों और सिद्धांतों से मिलकर बनी हैं जिसके प्रति राज्य अभिव्यक्त रूप से या संकेत रूप से

सहमत हुए हैं और एक दूसरे के साथ उनके आचरण और संबंध इसके द्वारा शासित और विनियमित होते हैं ।

## ५. रूढ़िगत विधि

रूढ़िगत विधि से अभिप्राय उन नियमों और सिद्धांतों से हैं जिनका किसी समुदाय विशेष में दीर्घकाल तक वास्तविक व्यवहार में पालन हुआ है । जो इन नियमों का पालन करते हैं उनके लिए ये विधि है । उनके अस्तित्त्व में आने के अनेक कारण है । जब किसी प्रकार के कार्य को सामान्य अनुमोदन प्राप्त होता है और साधारणत: दीर्घकाल तक इसका पालन किया जाता है तो यह एक रूढ़ि बन जाता है । कभी-कभी यह आवश्यकता के आधार पर अस्तित्त्व में आती हैं । इनके अस्तित्त्व में आने के दूसरे कारण भी हैं, जैसे अनुकरण, सुविधा आदि । जब उनको राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त हो जाती है तो वे सिविल विधि का एक भाग बन जाती हैं । विधिशास्त्रीयों में रूढ़ियों के क्षेत्र और प्रामाणिकता के विषय में मतभेद हैं । कुछ कहते हैं कि रूढ़ियाँ मान्य विधि हैं । दूसरों का कहना हैं कि वे विधि के केवल एक स्त्रोत है । पूर्वकथित दृष्टिकोण ऐतिहासिक विचारधारा के विधिशास्त्रीयों का है, और बाद वाला दृष्टिकोण विध्यात्मकवादियों का हैं । मेरा अपना यह मत है कि ये दोनों दृष्टिकोण किसी कोटि तक बढ़ा-चढ़ाकर कहे गए हैं और केवल आंशिक सत्य प्रस्तुत करते हैं और इन दोनों दृष्टिकोणों का एक संश्लेषण ही रूढ़ियों का वास्तविक स्वरूप प्रकट कर सकता है । रूढ़िगत विधि एक पृथक् प्रकार की विधि है और सिविल विधि से भिन्न हैं ।

## ६. तकनीकी विधि

तकनीकी विधि से अभिप्राय उन नियमों से हैं जो कतिपय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है, जैसे काव्य-रचना संबंधी विधियाँ या स्वास्थ्य संबंधी विधियाँ आदि । कतिपय ऐसे नियम होते हैं जिनका पालन काव्य-रचना के लिए आवश्यक होता है । इसी प्रकार, नियमों का एक ऐसा समूह है जिसका पालन स्वास्थ्य की कामना करने वाले को करना होगा । इन नियमों को कभी-कभी विधि कहा जाता है, और इसीलिए उनको एक पृथक् वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है ।

## ७. अन्तर्राष्ट्रीय विधि

अन्तर्राष्ट्रीय विधि से हमारा अभिप्राय उन नियमों के समूह से हैं जिसके द्वारा राज्य एक दूसरे के प्रति आचरण और एक दूसरे के साथ संबंध के मामले में शासित होते हैं । इस प्रकार की विधि की मान्यता अनेक शताब्दियों पहले आरंभ हुई थी । आधुनिक काल में अन्तर्राष्ट्रीय विधि, विधि की एक बहुत महत्त्वपूर्ण शाखा है । वर्तमान शताब्दी में भी ऐसे विधिशास्त्री हुए हैं जिन्होंने तर्क दिया हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि, विधि नहीं है । किंतु इसके शीघ्र विकास और आधुनिक काल में अन्तर्राष्ट्रीय विधि द्वारा अदा की जाने वाली महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए अब इस बात के बारे में विवाद नहीं रह गया हैं और अब इसको विधि की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शाखा माना जाता है । अन्तर्राष्ट्रीय विधि की प्रामाणिकता और स्त्रोत के विषय में मतभेद हैं । एक विचार यह हैं कि यह प्राकृतिक विधि पर आधारित हैं । दूसरा विचार यह हैं कि यह एक प्रकार की रूढ़िगत विधि है । तीसरा विचार यह हैं कि यह कन्वेन्शन विधि (करार

द्वारा विधि) है । जहाँ तक मेरा मानना है यह तीनों प्रकार के नियमों और अन्य अनेक बातों का संमिश्रण है, किंतु अब एक स्वतंत्र और पृथक् प्रकार की विधि के रूप में विकसित हो गई है । इसकी परिधि प्रतिदिन विस्तृत होती जा रही है और इसे अधिकाधिक महत्त्व प्राप्त हो रहा है । स्टार्क नामक विधिशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय विधि को इस रूप में परिभाषित करता हैं 'यह नियमों का वह समूह हैं जो अधिकांशत: आचरण के उन सिद्धांतों और नियमों से निर्मित है, जिनका पालन करने के लिए राज्य अपने को बाध्य समझते हैं और इसलिए अपने एक दूसरे के साथ संबंधों में सामान्यतया उसका पालन भी करते हैं और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी आते हैं-

(क) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं और संगठनों के कार्य करण, उनके एक दूसरे के साथ संबंध और राज्य और व्यक्तियों के साथ उनके संबंध के बारे में विधि-नियम और

(ख) व्यक्तियों और अ-राज्य (Non-state) सत्ताओं से संबंधित कतिपय विधि-नियम जहाँ तक कि ऐसे व्यक्तियों और अ-राज्य सत्ताओं के अधिकार और कर्तव्य अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से सरोकार रखते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि सामान्यत: दो भागों में विभाजित की गई हैं । एक भाग में वे नियम आते हैं जिनका लागू होना एकरूप और विश्वसनीय हैं (वे समस्त राष्ट्रों पर समान रूप में लागू होते हैं) दूसरो भाग में वे नियम आते हैं जो दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच उस पर उनके सहमत होने के कारण लागू होते हैं ।

### ८. सिविल विधि

सिविल विधि से अभिप्राय देश की विधि या राष्ट्रविधि से हैं । इसको राज्य के न्यायालयों द्वारा प्रवृत्त किया जाता हैं । विधिशास्त्र में 'विधि' शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से इस प्रकार की विधि के लिए किया जाता है । सामंड कहता है कि 'इस शब्द के सर्वाधिक ठीक-ठीक मूल अर्थ में यही विधि है; क्योंकि इस शब्द के अन्य सभी प्रयोग केवल सादृश्य के आधार पर विस्तार द्वारा इससे व्युत्पन्न हुए हैं ।' वह इसे विधिशास्त्र पर अपनी पुस्तक की विषय-वस्तु बनाता है । मेरे मतानुसार यह शब्द का एक बहुत ही संकुचित अर्थ है । आधुनिक काल में, विधि की परिधि का विस्तार बहुत अधिक हो गया हैं और विधिशास्त्र में हम इसका अध्ययन इसके इस विस्तृत अर्थ में करते हैं ।

विधि के प्रकार, जैसा कि हमने यहाँ उसका विवेचन किया है, वस्तुत: विधि के प्रकार नहीं हैं अपितु यह उन विभिन्न अर्थों में उल्लेख हैं जिनमें 'विधि' शब्द का प्रयोग किया जाता है । साधारणत: विधिशास्त्र में 'विधि' का अर्थ 'विध्यात्मक विधि' है परंतु आधुनिक काल में इसके अंतर्गत रूढ़िगत कन्वेन्शन और अन्तर्राष्ट्रीय विधि भी आती है।

## ३.७ विधि की कुछ अन्य शाखाएँ

### ३.७.१ प्रशासनिक विधि

प्रशासनिक विधि वह विधि है जो प्रशासनिक कार्यों में व्यवहृत होती है अर्थात् सामान्यत: यह जनता के संबंध में सरकारी कर्मचारियों के दिन-प्रतिदिन के कार्यों में

प्रयुक्त होती है । फ्रांस में इसे ड्रायेट एडमिनिस्ट्रेटिफ कहा जाता है । सामान्यतः इसका सम्बन्ध प्रक्रिया के मामलों में होता है, सारभूत विषयों से नहीं । डायसी ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है कि यह विधि का वह अंग है जो निम्नलिखित बातों को निर्धारित करता है-

१. राज्य प्राधिकारियों की स्थिति तथा दायित्व,

२. प्राधिकारियों के साथ व्यवहार करने में निजी व्यक्तियों के अधिकार तथा दायित्व और

३. वह प्रक्रिया जिसके द्वारा ये अधिकार तथा दायित्व लागू किए जाते हैं।

## o डायसी का मत

डायसी का मत है कि फ्रांस का 'ड्रायेट एडमिनिस्ट्रेटिफ' प्रशासन की कुल शक्तियों तथा कुल कर्त्तव्यों का योग नहीं है, अपितु यह उन सिद्धांतों का योग है जो फ्रांसीसी नागरिकों तथा राज्य के प्रशासन के बीच संबंध को शासति करते हैं । यह एक ओर तो लोक अधिकारियों को साधारण न्यायालयों में जाने से छुटकारा दिलाती है, और दूसरी ओर उन्हें उत्तरदायी बनाने की विशेष अधिकारिता रखती है । यह सिविल लॉ की भाँति किसी संहिता के रूप में नहीं है । कतिपय नियमों का स्थापन जारी की गई डिक्रियों द्वारा हुआ है, परंतु इसका अधिकांश भाग प्रशासनिक न्यायालयों के निर्णयों का विशेषक 'काउन्सिल ऑफ स्टेट' के निर्णयों का संकलन है। इस संबंध में यह सामान्य विधि से मिलती-जुलती हैं जो कि नियमित न्यायालयों के निर्णयों से धीरे-धीरे बनी है ।

### ० आधुनिक काल में व्यावहारिक रूप में अंतर नहीं

गत शताब्दी तक एंग्लो-अमेरिकन प्रणाली में प्रशासनिक विधि का स्थान नहीं था। डायसी ने यह मत व्यक्त किया था कि प्रशासनिक विधि की फ्रेंच प्रणाली और वे सिद्धांत जिन पर यह आधारित है, इंग्लैंड तथा अमेरिका के न्यायाधीशों और वकीलों को बिल्कुल ज्ञान नहीं है। इंग्लैंड और अमेरिका में सामान्य विधि में सरकार के एजेन्ट को कोई विशेषाधिकार नहीं हैं और उन पर नियमित न्यायालयों में मुकदमा चलाया जा सकता है और लोकअधिकारी को यह सिद्ध करना पड़ता है कि उसका कार्य विधि द्वारा प्राधिकृत था। इंग्लैंड और अमरिका दोनों ही देशों में साधारण विधि और प्रशासनिक विधि और साधारण न्यायालयों तथा प्रशासनिक न्यायालयों के बीच कोई बड़ा अंतर नहीं था। तथापि प्रस्तुत शताब्दी में बदले हुए परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक विधि को अधिकाधिक अपनाया गया हैं। इंग्लैंड में 'कमेटी आन मिनिस्टर्स पावर्स' की रिपोर्ट १९९२ में इंग्लैंड में प्रशासनिक विधि के विकास और प्रवर्तन का विश्लेषण करती हैं। आधुनिक काल में यद्यपि प्रशासनिक विधि की बाबत महाद्वीपीय और ऐंग्लो-अमेरिकन प्रणाली में अंतर सिद्धान्त रूप में तो विद्यमान है, किंतु व्यवहार में यह थोडा रह गया है।

## ३.७.२ न्यायिक-प्रणाली

तुलनात्मक विधि के क्षेत्र में विभिन्न विधिक प्रणालियों की मूल अथवा अधिष्ठायी विधि के साथ प्रक्रिया संबंधी विधि आती है। प्रक्रिया विधि के केंद्र में न्यायिक प्रणाली होती है अतएव उसका विवेचन भी प्रासंगिक एवं समीचीन होता है। इस दृष्टि से यहाँ

भारत अमेरिका एवं फ्रांस के शीर्ष न्यायालयों एवं उनकी हैसियत तथा अधिकारों के बारे में संक्षिप्त विवेचन किया जाएगा ।

**o भारत**

किसी भी संधीय प्रणाली में संघ न्यायालय अति महत्त्वपूर्ण होता है । संविधान के लिखित होने, संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन होने एवं नागरिकों के मूल अधिकारों की गारंटी होने से जैसा कि भारत में है, संघ न्यायालय एक अनिवार्यता है । भारत में उच्चतम न्यायालय शीर्ष पर है । उसके बीच राज्यों में उच्च न्यायालय है और उच्च न्यायालयों के नीचे जिला न्यायालय है ।

उच्चतम न्यायालय का प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद १२४ के अधीन किया गया है । जैसा कि ऊपर कहा गया है उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है । इसे संविधान और देश की विधियों की व्याख्या के बारे में अंतिम निर्णय देने का अधिकार है । इसे केंद्र और राज्य की शक्तियों की बाबत किसी विवाद के निर्णय की अधिकारिता हं । यह नागरिकों के मूल अधिकारों का संरक्षक है । यह देश की सर्व-सम्मानित न्यायिक संस्था है ।

संविधान के अनुच्छेद १२४ मे यह प्रावधान किया गया हैं कि उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और जबतक संसद विधि द्वारा अधिक संख्या न विहित करे तब तक सात न्यायाधीश होंगे । १९८६ में विधि द्वारा न्यायाधीशों की संख्या बढ़कर २५ कर दी गई हैं जिसमें मुख्य न्यायाधीश भी शामिल हैं । किंतु आज-कल ज्यादा से ज्यादा तीन या पाँच से काम चलता हैं ।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। वस्तुत: राष्ट्रपति की यह शक्ति एक औपचारिक शक्ति है, वह यह कार्य मित्र-मंडल की राय पर करता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए निम्नलिखित शर्ते हैं -

१. वह भारत का नागरिक हो; और

२. किसी उच्च न्यायालय में लगातार १० वर्षों तक अधिवकता रहा हो; या

३. किसी उच्च न्यायालय का लगातार कम से कम ५ वर्षों तक न्यायाधीश रहा हो; या

४. राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेता हो।

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद को धारण कर सकेगा। कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित में अपने पद से त्यागपत्र दे सकेगा। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को केवल महाभियोग (High Commission) द्वारा उसके पद से हटाया जा सकेगा। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय को संविधान द्वारा पूरी स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय है और उसको अपने अवमान के लिए दंड देने की शक्ति सहित ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ हैं।

उच्चतम न्यायालय को प्रारंभिक अधिकारिता अपीलीय, अधिकारिता विशेष इजाजत से अपील और राष्ट्रपति को परामर्श देने की अधिकारिता है। उच्चतम

न्यायालय की प्रारंभिक अधिकारिता निम्नलिखित विवादों के संबंध में है-

(१) भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच, या

(२) एक ओर भारत सरकार और किसी राज्य या राज्यों और दूसरी आर एक या अधिक राज्यों के बीच

(३) दो या अधिक राज्यों के बीच

इसके साथ ही मूल अधिकारों को लागू करने के बारे में भी उसे आरंभिक अधिकारिता है । इस अधिकारिता के अधीन उसे विभिन्न रिटें जारी करने का अधिकार है ।

उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है । उसे देश के सभी उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्‌ध सिविल ओर दांडिक अपीलें सुनने की अधिकारिता है इसके साथ ही वह भारत के राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय या अधिकरण द्‌वारा किसी वाद या मामले में पारित किए गए या दिए गए किसी निर्णय या आदेश आदि की अपील के लिए इजाजत दे सकेगा ।

संसद विधि बनाकर उच्चतम न्यायालय को संघ सूची के संबंध में अतिरिक्त अधिकारिता और शक्तियाँ प्रदान कर सकती हैं । उच्चतम न्यायालय को देश की सारी विधियों, चाहे वह केंद्र की हो अथवा राज्य की हों, के न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति हैं । वह किसी विधि या कानून अथवा उसके किसी अंश के नागरिकों के मूल अधिकारों अथवा संविधान के अन्य किसी उपबंध का उल्लंघन करने के आधार पर असंवैधानिक घोषित कर सकता है । इसके साथ ही वह सरकार के प्रशासनिक कार्यों

का भी पुनरीक्षण कर सकता है और उसके संविधान अथवा किसी कानून का उल्लंघन करने पर वह उसे शक्तिबाह्य घोषित कर सकता हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होगी ।

संविधान में यह भी उपबंध किया गया हैं कि भारत के राज्य क्षेत्र में सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे । उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति के अनुमोदन से न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया के विनिमयन के लिए नियम बनाने की शक्ति है। उच्चतम न्यायालय ने भारत के विधि के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया हैं । उसने नागरिकों के मूल अधिकारों को विस्तृत बनाया है और उसे पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की है ।

## o संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायिक प्रणाली में उच्चतम न्यायालय वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय है । यह बहुत ही सम्मानित न्यायलय है । अमेरिका के संविधान और संघीय विधियों का यह अंतिम निर्वचनकर्ता है । यह अपील का भी अंतिम न्यायालय है। यह संघीय न्यायालयों द्वारा न्याय के प्रशासन का निरीक्षण करता हैं । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या समय-समय पर बदलती रही हैं । संप्रति इनकी संख्या ९ हैं ।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा सीनेट की सलाह और सहमति से नियुक्त किए जाते हैं। सामान्य: राष्ट्रपति द्वारा नामजद न्यायाधीश सीनेट द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति चार अथवा छ: साल के लिए

होती हैं किंतु उनकी पदावधि का नवीकरण हो जाता हैं । वे सदाचरण कायम रखने तक पद पर बने रहते हैं । वे सत्तर वर्ष की आयु में पूर्ण वेतन के साथ सेवा निवृत्त हो सकते हैं और बशर्ते उन्होंने १० वर्ष तक सेवा की हो । न्यायाधीशों को महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है । अमेरिका के इतिहास में एक बार न्यायाधीश पर महाभियोग लगाया गया था किंतु उसे हटाया नहीं जा सका । न्यायाधीशों का वेतन आदि बहुत अच्छा होता है । इस प्रकार उच्चतम न्यायालय पूर्ण स्वतंत्रता रखता है ।

न्यायालय की राय मुख्य न्यायाधीश द्वारा लिखी जाती है । कोई निर्णय सर्वसम्मत हो सकता है अथवा भिन्न मतों वाला हो सकता है । यदि यह भिन्न मतों वाला हैं तो बहुमत और विपरित मत वाला निर्णय समान रूप से लिखे जाते हैं ।

प्रारंभ में उच्चतम न्यायालय संघ सरकार से एक साधारण अंग के रूप में था। बाद में धीरे-धीरे इसने अपनी हैसियत कांग्रेस और राष्ट्रपति के समरूप बना ली हैं । उसने न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति भी प्राप्त कर ली है । इसने सिविल अधिकारों की व्याख्या द्वारा उनका विस्तार किया हैं और उनकी रक्षा की है । अल्पसंख्यकों के अधिकारों को देश के अन्य नागरिकों के समरूप बनाने में उच्चतम न्यायालय ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की हं । अपने सृजनात्मक कार्य द्वारा इसने बदलती हुई परिस्थितियों के साथ विधि को ढालने का कार्य किया है । वस्तुत: अमेरिका की नीतियों को रूप देने में इसकी भूमिका कांग्रेस से कम नहीं हैं ।

### o फ्रांस

फ्रांस में वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय कोर्ट ऑफ काजेसन हैं। इसके तीन विभाग है-

१. क्रिमिनल चैम्बर

२. सिविल चैम्बर

३. चैम्बर ओफ रिक्वेस्ट्स ।

प्रत्येक विभाग में अध्यक्ष और पंद्रह न्यायाधीश होते हैं । दांडिक अपीलें सीधे क्रिमिनल चैम्बर को जाती हैं किंतु सिविल अपीलें चैम्बर ओफ रिक्वेस्ट के माध्यम से जाती हैं जो केवल उन अपीलों को आगे बढ़ाता हैं जिसके बारे में यह विश्वास करता हैं कि उस निर्णय के जिसके विरुद्ध अपील की गई है उलट दिए जाने के लिए पर्याप्त आधार है ।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता को फ्रांस में पूर्ण मान्यता है । न्यायाधीश सदाचरण कायम रखने तक पद पर बने रहते हैं और कार्यपालिका द्वारा हटाए नहीं जा सकते हैं । न्यायाधीश वकीलों में से नहीं चुने जाते हैं । इसे वकालत से अलग ढंग का कार्य माना जाता है और विधि स्नातक प्रारंभ में ही न्यायिक सेवा में चुने जाते हैं । वहाँ न्यायाधीश होना एक अलग कैरियर है ।

न्यायपालिका का सामान्य निरीक्षण न्यायपालिका की उच्च कौंसिल के हाथ में होता हैं न्यायपालिका की स्वतंत्रता के गारंटीकर्ता के रूप में फ्रांसीसी गणतंत्र के राष्ट्रपति की सहायता करती है । राष्ट्रपति और न्यायमंत्री द्वारा इसकी अध्यक्षता की जाती है । इस कौंसिल के लिए नए सदस्य राष्ट्रपति द्वारा चार वर्ष की कालवधि के लिए नियुक्त किए जाते हैं । 'कौंसिल कोर्ट ओफ साजेसन' में और कोर्ट ओफ अपील के प्रथम अध्यक्षों के पद पर नियुक्ति के लिए नामों को प्रस्तुत करती है । अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में जिनके नाम न्यायमंत्री द्वारा प्रभावित किए जाते

हैं कौंसिल राय देती है । कौंसिल न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण को दृढ़ करता है और न्यायाधीशों की बाबत अनुशासन कौंसिल के रूप में कार्य करती है ।

भारत और अमेरिका की भाँति फ्रांस में न्यायिक पुनरीक्षण का प्रावधान नहीं है। तथापि कान्स्टिट्युशनल कौंसिल के रूप में वहाँ एक विशेष फोरम है । विश्व में अन्यत्र इस प्रकार की संस्था नहीं है । शक्तियों की पृथकता की फ्रांसीसी धारणा के अनुसार संसद के अधिनियमों की सांविधानिकता का निर्णय करने का अधिकार न्यायपालिका को नहीं है । यह कार्य गारंटीकर्ता का हैं जिसका उल्लेख ऊपर किया गया हैं । कास्टिट्युशनल कौंसिल में नौ सदस्य होते हैं जो नौ वर्षों के लिए नियुक्त होते हैं । वे दुबारा नियुक्त नहीं हो सकते । अन्य कार्यों के सहित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच यह कौंसिल करती है । कोई कानून बनाए जाने के पहले उक्त कौंसिल को भेजा जाता है । और वह उनकी संवैधानिकता के बारे में अपना निर्णय देती है । यदि कौंसिल किसी विधेयक अथवा कानून को असंवैधानिक कह देती है तो वह लागू नहीं किया जा सकता अथवा पारित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार कौंसिल सभी सांविधानिक अधिकारों एवं संस्थाओं की संरक्षक है ।

### ३.७.३ विधि के स्त्रोत

महाद्वीपीय विधि का मुख्य स्त्रोत युरोप की संहिताओं में पाया जाता है, जिसकी कमी की पूर्ति कानून न्यायिक पूर्वोदाहरणों, रूढियों टीकाकारों एवं विधि-लेखकों की रायों द्वारा की गई हैं ।

## ० अंग्ल विधि के मुख्य स्त्रोत

आंग्ल विधि के मुख्य स्त्रोत हैं-

१. अधिनियम

२. न्यायिक पूर्वोदाहरण

३. रूढ़ि और

४. कन्वेन्शन है ।

इसके अतिरिक्त न्याय साम्या और सद्भाव को भी विधि का स्त्रोत माना गया हैं।

कॉमन लॉ, इंग्लैंड की विधि का वह भाग है जो पूर्वकाल के कोमन लॉ न्यायालयों अर्थात् किंग्स बेंच या कोर्ट ऑफ कोमन प्लीज एण्ड एक्सचेकर द्वारा विकसित तथा लागू किया गया था और देश की सामान्य रूढ़ियों पर आधारित था और मूलतः अलिखित था।

## ० न्यायिक पूर्वोदाहरण

कोमन लॉ निर्णयज विधि पर आधारित एंग्लो अमेरिकन विधि प्रणाली में न्यायिक पूर्वोदाहरण के सिद्धांत का बहुत महत्त्व है । वहाँ न्यायिक निर्णयों को विधि का एक स्वतंत्र एवं सबल स्त्रोत माना जाता है । इंग्लैंड की कॉमन लॉ का अधिक भाग निर्णयज विधि पर आधारित है । इंग्लैंड में ऐसा ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों से हुआ । सामंड का कहना है कि न्यायिक पूर्वोदाहरण का विचार आंग्ल विधि की एक अनोखी बात रही है और सामान्य या प्रामाणिक विधि का अधिकांश भाग विभिन्न प्रतिवेदनों में संकलित निर्णय है । इंग्लैंड में न्यायिक पूर्वोदाहरण की विधि के

बराबर प्रमाणिकता है, यह विधि का साक्ष्य ही नहीं होता, अपितु उसका स्त्रोत भी होता है और इसके प्रतिष्ठित हो जाने के बाद न्यायालयों को इसका अनुसरण करना होता है ।

## o आंग्ल विधि में पूर्वोदाहरण का अनुसरण

इंग्लैंड में न्यायिक पूर्वोदाहरण का सिद्धांत इस रूप में है कि वहाँ प्रत्येक न्यायालय अपने से उच्च न्यायालय का निर्णय मानने को बाध्य है । हाउस ऑफ लार्ड्स भी जो देश का सर्वोच्च न्यायालय है अपने पूर्व निर्णय से पूर्णत: बाध्य हो इसे स्टेयर डिसाइज का नियम कहते हैं । कोर्ट ऑफ अपील पर भी अपने पूर्ववर्ती निर्णय बाध्यकर है, किंतु हाल के वर्षों में इसमें यह परिवर्तन हुआ है कि कतिपय मामलों में कोर्ट ऑफ अपील अपने पूर्ववर्ती निर्णय से बाध्य नहीं है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि न्यायिक निर्णय जो विधि के स्त्रोत के रूप में है, उनका निर्णयाधार ही विधि का बल रखता है, प्रासंगिक कथन नहीं ।

## o निगम की महाद्वीप में सैद्धांतिक मान्यता नहीं

महाद्वीप में पूर्वोदाहरण के सिद्धांत को कम से कम औपचारिक रूप में, मान्यता नहीं मिली हैं । वहाँ न्यायिक निर्णय स्वयं में कोई विधिक प्रामाणिकता नहीं रखता, यद्यपि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में वह न्यायाधीश की सहायता कर सकता हैं । महाद्वीप में न्यायालय अपनी रायों को किसी बाद के निर्णय में न मानने के लिए या किसी उच्चतर न्यायालय से असहमति व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र हैं । महाद्वीप न्यायाधीश प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने गुणागुण के आधार पर विधि को उस

रूप मे जैसी की वह विधान-मंडल द्वारा बनाई गई थी, बिना उसमें कुछ जोडे या घटाए लागू करते हुए केवल इस दृष्टि से कि न्याय हो, न कि किसी पूर्ण निर्णय के समरूप बनाने की दृष्टि से करता है। तथापि आधुनिक काल में महाद्विप में पूर्ववर्ती न्यायिक निर्णयों को न्यायाधीशों द्वारा महत्त्व दिया जाने लगा है। इस संबंध में श्लेन का मत हैं कि निर्णयों में पूर्ण एकरूपता नहीं है, और यद्यपि व्यवहार में उनके प्रति काफी झुकाव है, तथापि फ्रांसीसी सिद्धांत सभी न्यायालयों की, चाहे वे किसीभी कोटि के हों, मामलों का निर्णय सिद्धांत के अनुसार न कि अनिवार्यत: उदाहरण के अनुसार करने की स्वतंत्रता पर दृढ़तापूर्वक बल देता है।

अनेक प्रयोगों के उपरांत अपील का अंतिम न्यायालय अर्थात् 'कोर्ट डि कंजेशन' को कुछ परिस्थितियों में, अंतिम उपचार के रूप में यह अधिकारिता दी गई हैं परंतु इस न्यायालय के अंतिम निर्णय भी, यद्यपि व्यवहार में उनका बहुत आदर होता है, सिद्धांतत: किसी न्यायालय पर भविष्य में बंधनकारी नहीं है। 'महाद्वीपीय विधि में आंग्ल विधि के स्टेयर डिसाइसिस के नियम की मान्यता नहीं है।'

### o आंग्ल सिद्धांत- आगमनात्मक

न्यायिक निर्णयों का अंग्ल सिद्धांत मूलत: आगमनात्मक है, अर्थात् इसमें विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ा जाता है। इसमें तर्क की वह प्रक्रिया सम्मिलित होती है जिसके अनुसार विशिष्ट परिस्थितियों के सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। न्यायाधीश किसी विशिष्ट मामले से विचारधीन मामले के लिए उपर्युक्त सामान्य सिद्धांत की युक्ति लेता है। इस मामले में उसका पथ-प्रदर्शन न्यायिक पूर्वोदाहरण द्वारा होता है।

## o फ्रांसीसी प्रणाली निगमनात्मक

फ्रांसीसी प्रणाली निगमनात्मक हैं अर्थात् सामान्य से विशिष्ट की और बढ़ा जाता है । इसमें किसी विशिष्ट मामले में कठोर एवं संहिताबद्ध विधिक नियम लागू करने की प्रक्रिया अंतर्निहित होती है । न्यायाधीश अपना निर्णय सामान्य विधिक नियम से निकालकर उन विशिष्ट परिस्थितियों पर लागू करता है जो उसके सामने होती हैं। उसका निर्णय उस विषय पर अन्य न्यायलयों के निर्णयों से प्रभावित नहीं होता ।

## o प्रो.एलेन का मत

तथापि निगमनात्मक और आगमनात्मक सिद्धांतों में यह अंतर होते हुए भी व्यवहार में उनमें उतनी भिन्नता नहीं है । इस संबंध में प्रो. एलेन कहता है 'यद्यपि ये दोनों सिद्धांत भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि प्रयोग में ये उतने विरोधी या भिन्न नहीं है, जितनी कल्पना की जाती है । किसी सामान्य मामले में विचारण की दृष्टि से वे वस्तुत: बिल्कुल भिन्न नहीं होते, या उन्हें भिन्न नहीं होना चाहिए । जब किसी आंग्ल न्यायाधीश को किसी विधि को लागू करना पडता है- और आजकल यह बहुत बड़ा काम है- तो वह, ऐसा प्रतीत होता है उसी स्थिति में होता है, जिसमें कि वह महाद्वीपीय न्यायाधीश होता हैं जिसे संहिता लागू करनी पडती है, तथापि यहाँ भी हमारे न्यायिक निष्कर्ष का सिद्धांत इतनी गहराई से जमा हुआ है- हमारे न्यायाधीश निर्वचन के पूर्वोदाहरणों द्वारा शासित होते हैं । आंग्ल कानून एक शुष्क सामान्य नियम बन जाने के पूर्व बहुत पुराना नहीं होता और इसे उनके ठोस उदाहरणों के माध्यम से देखा जाता है । इसका परिणाम प्राय: उस परिणाम से अत्यधिक भिन्न होता है, जो अधिनियम द्वारा होता था ।

भारतवर्ष में प्रत्येक न्यायालय अपने से उच्चतर न्यायालय के निर्णय से बाध्य है। तथापि उच्चतम न्यायालय अपने निर्णय से बाध्य नहीं है ।

### ३.७.४ न्यायाधीशों की भूमिका

### ० आंग्ल अमेरिकन प्रणाली

न्यायाधीशों की भूमिका के बारे में भी आंग्ल अमेरिकन और महाद्वीपीय प्रणालियों के बीच अंतर हैं ।

#### ० न्यायाधीश विधि के निर्माता

आंग्ल-अमेरिकन प्रणाली के अनुसार न्यायाधीश केवल विधि की घोषणा नहीं करते, अपितु वे विधि के निर्माता भी हैं । लार्ड बेकन ने कहा है कि वे प्रश्न जिन्हें न्यायाधीश प्रथम बार न्यायालय के समक्ष आनेवाले मामलों में विनिश्चित करते हैं, विद्यमान विधि को एक निश्चित योगदान है । प्रोढ़ डायसी ने अपनी पुस्तक 'लॉ एण्ड ओपिनियन इन इंग्लैंड' में कहा है- 'इंग्लैंड की विधि का एक बड़ा भाग जिसे बहुत से लोग सर्वोतम भाग कहेंगे न्यायाधीश निर्मित विधि है, अर्थात् उन नियमों से बना है जो न्यायालयों के निर्णयों से लिए गए हैं ।' ग्रे इस बात का समर्थन करते हुए कहते है- 'जिस किसी को भी न केवल विधि का निर्वचन करने का, अपितु यह कहने का पूर्ण अधिकार होता हैं कि विधि क्या है, वही वस्तुत: विधि निर्माता है ।' सामंड भी इस मत का दृढ़ समर्थक है- 'हमें खुलेआम यह स्वीकार करना चाहिए की पूर्व निर्णय विधि का निर्माण करते हैं साथ ही इसकी घोषणा भी करते हैं । मूल पूर्व-निर्णय न्यायालयों द्वारा विधि का शासन करने के साथ ही विधि का विकास करने के अपने विशेषाधिकार के साशय प्रयोग के परिणाम हैं ।

**o महाद्वीपीय प्रणाली में न्यायाधीश विधि के घोषणाकर्ता**

महाद्वीपीय विधि प्रणाली में न्यायाधीश को विधि का घोषणाकर्ता माना गया है। जर्मन विधिशास्त्री सेविग्नी का मत था कि विधिज्ञ लोक-चेतना के केवल उद्घोषक के रूप में कार्य करते हैं और उनका कार्य विधि को तदनुसार स्वरूप देना होता है। महाद्वीप में संहिताकरण की प्रवृत्ति और उसकी मान्यता होने के फलस्वरूप भी न्यायाधीशों की विधि निर्माण की भूमिका नहीं मानी गई है।

## ३.७.५ कानूनों का निर्वचन

**o निर्वचन का उद्देश्य विधान-मंडल के आशय का पता लगाना**

आंग्ल-अमेरिका और महाद्वीपीय दोनों की न्याय प्रणालियों के अनुसार निर्वचन का मूल उद्देश्य विधान-मंडल के आशय का पता लगाना होता है। किसी कानून का अर्थ उसके निर्माताओं के आशय के अनुसार निकाला जाना चाहिए। इसलिए न्यायालय का कर्तव्य है कि वे विधान-मंडल के वास्तविक आशय को देखकर अपना निर्णय दे किंतु आंग्ल-अमेरिकी तथा महाद्वीपीय दोनों प्रणालियों की निर्वचन की पद्धति में अंतर हैं।

**o आंग्ल-प्रणाली में अर्थ व्याकरण के अनुसार**

आंग्ल रीति के अनुसार कानून के शब्दों को उनके स्वाभाविक, साधारण अथवा प्रचलित अर्थ में समझना चाहिए और उसका अर्थ व्याकरण के अनुसार लगाना चाहिए, जब तक इसका परिणाम निरर्थक न हो अथवा इससे अन्याय न होता हो। संसद के किसी अधिनियम के संबंध में उसका आशय जानने के लिए उस कानून का

संसदीय इतिहास जानना आवश्यक नहीं होता है । विधान-मंडल में विधेयक के पेश रहने के दौरान की गई बहस अथवा संशोधनों का पास हुए विधान का अर्थ लगाते समय सहायता के रूप में ग्रहण नहीं किया जाता ।

- **कानून का अर्थ स्पष्ट न होने पर अन्य रीतियाँ**

कानून का अर्थ स्पष्ट न होने पर अथवा उसके दो अर्थ वाला होने पर उसके निर्वचन के लिए कानून के बाहर की बातों पर विचार किया जाता है । तथापि इसमें आंग्ल- अमेरिकी प्रणाली मे न्यायाधीश का क्षेत्र सीमित होता है जब तक कि महाद्वीपीय विधि में यह बहुत विस्तृत होता है । ऐसी स्थिति में महाद्वीपीय न्यायाधीश विधान-मंडल का आशय जानने के लिए उस नियम की ऐतिहासिक उत्पत्ति का आश्रय लेने के लिए और प्रांभिक कार्यवाहियों संसदीय बहसों और विधान-मंडल के अन्य अभिलेखों पर, विचार करने के लिए स्वतंत्र होता हैं ।

- **भारतीय प्रणाली**

भारत में निर्वचन के मामले में आंग्ल-अमेरिकी सिद्धांत को अपनाया गया है। तथापि भारत में लिखित संविधान है जैसा कि इंग्लैंड में नहीं है । प्रत्येक कानून को संविधान की अनुरूपता में होना चाहिए । भारत में अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय ने कानून के निर्वचन मे बाहरी सामग्री को भी विचार में लिया हैं ।

- **विधि-प्रतिवेदन**
- **ऐंग्लो-अमेरिकन प्रणाली में बहश: महाद्वीपीय में सीमित**

यद्यपि ऐंग्लो- अमेरिकन तथा महाद्वीपीय दोनों प्रणालियों में निर्णयों का प्रतिवेदन होता है, किंतु जहाँ एंग्लो- अमेरिकन प्रणाली में यह विस्तृत रूप में होता है,

महाद्वीपीय प्रणाली में यह बहुत संक्षिप्त रूप में होता हैं ।

## o रूढियाँ

रूढ़ियाँ विधि का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है । विश्व की समस्त विधि प्रणालियों में विधि के स्त्रोत के रूप में उनकी मान्यता है । यह अवश्य है कि भिन्न-भिन्न विधि प्रणालियों में उनके महत्त्व की श्रेणी में अंतर है ।

## o आंग्ल विधि में रूढ़ियों का महत्त्व

रूढ़ियों का आंग्ल विधि में विशेष महत्त्व है । जैसा कि पहले बताया गया है, आंग्ल विधि को 'कोमन लॉ' कहा जाता हैं । साधारणत: 'कोमन लॉ' और राज्य की सामान्य रूढ़ियों को पर्यायवाची माना जाता था । मुख्य न्यायाधीश कोक ने रूढ़ियों के बारे में कहा कि 'वे इंग्लैंड की विधियों के त्रिकोण के आधार हैं ।' सेंट जर्मन ने अपने पुस्तक 'डाक्टर एण्ड स्टुडेंट' में लिखा है- 'और चूँकि कथित रूढ़ियाँ न तो ईश्वर की विधि के विरुद्ध हो सकती हैं और न युक्ति की विधि के विरुद्ध हो सकती है और सदैव अच्छी और कोमन-वेल्थ के लिए आवश्यक मानी गई हैं; इसलिए उन्हें वहाँ तक विधि का बल प्राप्त है कि जो उनके विरुद्ध कार्य करता है वह न्याय के विरुद्ध कार्य करता है और ये ही वे रूढ़ियाँ हैं जिनको उचिततया कोमन लॉ कहा जा सकता है। 'ब्लैकस्टोन ने लिखा है कि इंग्लैंड की देशीय विधि (राष्ट्रीय विधि) को दो वर्गों में बाँटा जा सकता हैं ।- अलिखित विधि या कोमन लॉ और लिखित विधि अलिखित विधि में न केवल सामान्य रूढ़ियाँ या उचिततया कही जानेवाली कोमन लॉ ही आती है, अपितु राज्य के कतिपय भागों में की विशिष्ट रूढ़ियाँ भी आती हैं। और

समान रूप से वे विशेष विधियाँ भी आती हैं जो रूढ़ि द्वारा कतिपय न्यायालयों और अधिकारिता में पालन की जाती हैं। पोलक का मत हैं कि कोमन लॉ एक रूढ़िगत विधि है... सांविधानिक विधि को संविधान की विधि और रूढ़ियाँ कहा गया है।'

## ० आंग्ल प्रणाली में रूढ़ियों के तत्त्व

आंग्ल प्रणाली में रूढ़ि के निम्नलिखित तत्त्व माने गए हैं-

१. प्राचीनता

२. निरंतरता

३. शंतिपूर्ण उपभोग

४. बाध्यकर बल

५. निश्चितता

६. सुसंगतता

७. युक्तियुक्तता

८. कानून से अनुरूपता

महाद्वीपीय प्रणाली में संहिताओं को प्रमुख स्थान प्राप्त है। यहाँ रूढ़ियों को महत्त्व नहीं दिया जाता है। परिवर्तित समय के अनुसार संहिताओं को ही पुनरीक्षित परिवर्द्धित करके उन्हें आधुनिक अथवा तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाता है। तथापि रूढ़ियाँ वहाँ भी किसी रूप में विद्यमान हैं और अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। संहिताएँ भी रूढ़ियों पर आधारित हैं और निर्वचन आदि मामलों में रूढ़ियों का सहारा लिया जाता है।

- **साम्या (Equity)**

- **आंग्ल प्रणाली में महत्त्वपूर्ण सिद्धांत, महाद्वीपीय प्रणाली में ऐसा नियम नहीं–**

साम्या आंग्ल विधि का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत रही हैं । वहाँ कोमन लॉ की कमियों को इसके द्वारा सफलतापूर्वक पूरा किया गया है । इंग्लैंड में इसके विकास का एक लंबा इतिहास है । साम्या और कोमन लॉ के लागू होने के आधार पर पूरी आंग्ल न्यायिक प्रणाली दो भागों में विभाजित थीं । बाद में इन न्यायालयों का एकीकरण कर दिया गया तथापि साम्या सिद्धांत की मान्यता वहाँ अब भी हैं । महाद्वीपीय प्रणाली में साम्या के रूप में कोई नियम नहीं है । तथापि प्राकृतिक न्याय अथवा प्राकृतिक विधि के नाम पर कतिपय सिद्धांत जिन्हें न्यायपूर्ण या समीचीन माना गया है, प्रचलित रहे है ।

## ३.७.६ विधि का शासन

- **विधि के शासन का अर्थ**

डायसी के मत के अनुसार विधि शासन के अग्रलिखित तत्त्व है-

१. **स्वैच्छाकारी शक्ति का अभाव–** विधि के शासन का तात्पर्य प्रथमत: यह माना जाता है कि किसी व्यक्ति को, सिवाय स्पष्ट विधि भंग करने के लिए जो कि देश के साधारण न्यायालयों के समक्ष विधित: एक सामान्य रूप से साबित किया गया हो, दंड नहीं दिया जा सकता या उसके शरीर या संपति को विधिपूर्णत: क्षति नहीं पहुँचायी जा सकती।

दूसरे शब्दों में, विधि में अधिकथित शक्ति के अतिरिक्त किसी प्राधिकारी को कोई स्वेच्छाकारी शक्ति नहीं होनी चाहिए ।

२. **विधि के समक्ष समानता–** इसका दूसरा तात्पर्य यह है कि देश की विधि के समक्ष सभी लोगों की समानता । दूसरे शब्दों में, सभी व्यक्ति देश की सामान्य विधि के अधीन होंगे ।

३. **संविधान विधि व्यक्तियों के अधिकारों का परिणाम है–** संविधान विधि, जिसे अन्य देशों में संहिता के रूप में अधिनियमित किया गया है, व्यक्तियों के अधिकारों का स्त्रोत नहीं है, बल्कि उसका परिणाम है।

- **आधुनिक काल में डायसी का सिद्धांत उस रूप में मान्य नहीं–** आधुनिक काल में डायसी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का केवल ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है । व्यावहारिक रूप में इंग्लैंड में भी उसके सिद्धांत के कतिपय तत्त्व मान्य नहीं है । आधुनिक काल में प्राधिकारियों द्वारा प्रयुक्त किया जानेवाला विवेकाधिकार विधि के शासन के विरुद्ध नहीं है । वैवेकिक (Discretionary) शक्तियों पर कतिपय नियंत्रण होते हैं और वह विधि के शासन परिधि के भीतर आती है उसी प्रकार विधि के समक्ष समानता भी उस रूप में नहीं है, जिस रूप में डायसी ने कल्पित की थी । शासकों तथा प्राधिकारियों को अनेक उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं । प्रशासनिक अधिकरणों का बाहुल्य हो गया हैं । डायसी

द्वारा विधि के शासन का अंतिम तत्त्व भी आधुनिक काल में लागू नहीं रहा है। देश की विधि संविधान से निकलती हैं और संविधान की कसौटी पर उसके गुणागुण का विचार होता है ।

### ० भारतीय संविधान में विधि का शासन–

भारतीय संविधान विधि का शासन स्थापित करता है। इसका तात्पर्य हैं विधि के समक्ष समानता। संविधान के अनुच्छेद १४,१५ और १६ इसे स्थापित करते हैं। अनुच्छेद १९ और २१ नागरिकों के अधिकारों एवं जीवन तथा स्वतंत्रता को सुरक्षित करते हैं। न्यायपालिका और कार्यपालिका का पूर्ण पृथक्करण भी विधि के शासन को सुरक्षित करता है। संविधान का अनुच्छेद १३६ जिसके अधीन किसी प्रकार के निर्णय अथवा आदेश आदि का अन्ततः उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण किया जा सकता है विधि को पूर्णतः सुनिश्चित करता है ।

## ३.८ भारत का विधि–आयोग

भारत के विधि आयोग ने १९५८ में प्रकाशित 'रिफार्म ओफ जुडिशियल ऐडमिनिस्ट्रेशन पर अपनी रिपोर्ट में विधिक सहायता पर एक अध्याय रखा आयोग ने कहा कि निर्धन मुकदमा लड़नेवालों को विधिक सहायता देना प्रक्रिया विधि की कोई तुच्छ समस्या नहीं है, अपितु मूलभूत स्वरूप का एक प्रश्न है। इस देश में आज तक किए गए प्रयत्नों की और विदेशों में भी विधिक सहायता के संबंध में स्थिति की समीक्षा करते हुए रिपोर्ट में कहा गया:

भारत में विधिक सहायता के लिए सुविधाएँ बहुत कम हैं। मुंबई, कलकत्ता और बेंगलोर जैसे कुछ शहरों में स्वैच्छिक संगठनों के अतिरिक्त निर्धनों को विधि का

फायदा देने के लिए सरकारी या प्राइवेट बहुत संगठित प्रयास नहीं है । जैसा हम कह चुके है, सामान्यत: विधिक सहायता के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सोचे गए प्रस्तावों के बारे में राज्य सरकारों ने बहुत उत्साह नहीं दिखाया है । न तो वकील वर्ग ने कुछ प्रशंसनीय अपवादों को छोडकर निर्धन मुकदमा लड़ने वालों को विधिक सहायता देना अपना उत्तरदायित्व समझा है ।

आयोग ने निर्धन मुकदमा लड़ने वालों को विधिक सहायता देने की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया । तथापि उसने कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया और मुंबई की भगवती कमेटी रिपोर्ट और पश्चिम बंगाल की ट्रेवर हैरीज कमेटी रिपोर्ट अपनाने का सुझाव दिया । उसने सुझाव दिया कि विधिक सहायता के कतिपय उपाय 'विधि अथवा न्यायालयों के नियम में संशोधन करके एक विस्तृत विधिक सहायता संगठन खड़ा करने की आवश्यकता के बिना तत्काल लागू किए जा सकते हैं ।'

- **विधिशास्त्रियों का अन्तर्राष्ट्रीय आयोग–**

विधिशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की १९५९ में नई दिल्ली कांग्रेस में विधि के शासन के अंतर्गत जुडिसियल एण्ड दी लीगल प्रोफेशन पर एक कमेटी ने यह मत व्यक्त किया की यदि विधि के शासन के अधीन व्यक्ति के अधिकारों और उपचारों को व्यवहार में लागू किया जाना हैं तो ऐसे व्यक्तियों को विधिक सहायता देने का, जो उसके लिए खर्च करने में असमर्थ हैं, राज्य का दायित्व है ।

- **केंद्रीय सरकार की स्कीम–** १९६० में केंद्रीय सरकार ने विधिक सहायता की एक स्कीम की रूपरेखा तैयार की और उसे विभिन्न विद्यमान विधिक सहायता-संगठनों और राज्यों को उनका मत जानने

के लिए भेजा। राज्यों की सरकारों ने १९६२ में राज्य विधि-मंत्रियों के सम्मेलन में इसमें होनेवाले आर्थिक व्यय के उठाने में पून: अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब केंद्र सरकार ने विधिक सहायता कार्यों को केंद्रीय समर्थन देने के लिए एक स्कीम तैयार करना तय किया। तथापि १९६२ में चीन के आक्रमण के कारण आयात उद्घोषणा होने से इसे धक्का लगा। पुन: १९८५ में यह कार्यरत हुई।

- **मुंबई लीगल एण्ड सोसायटी विधेयक-**

मुंबई लीगल सोसायटी ने केंद्रीय स्कीम के ढरै पर राज्य सरकार को एक नमूना विधेयक मुंबई नगर में विधिक सहायता प्रदान करने के लिए पेश किया। तथापि इसमें कोई सहायता नहीं मिली।

- **अखिल भारतीय विधि संमेलन**

विधिक सहायता के प्रश्न पर पुन: १९६२ में तृतीय अखिल भारतीय विधि सम्मेलन में विधिक सहायता पर समिति द्वारा विचार किया गया। इसने यह स्वीकार किया कि विधिक सहायता की व्यवस्था राज्य का एक दायित्व है और केंद्र तथा राज्यों को उसके लिए धन उपलब्ध कराना चाहिए।

जब तक राज्य द्वारा एक व्यापक विधिक सहायता कार्यक्रम कायम नहीं किया जाता तब तक के लिए विधिक सहायता प्रदान करने के लिए भारत के बार एसोसिएशन और स्थानीय बार एसोसिएशनों द्वारा अपनाए जाने के लिए समिति ने विभिन्न सिफारिशें भी कीं। तथापि इन सिफारिशों को लागू करने के लिए किसी भी बार एसोसिएशन ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

### o विधिक सहायता पर राष्ट्रीय सम्मेलन–

निर्धनों को विधिक सहायता प्रदान करने की आवश्यकता के बढ़ते हुए अनुभव के कारण इस विषय पर गहराई से विचार प्रारंभ हुआ । विधिक सहायता विषय पर विचार करने के लिए १९७० में एक सम्मेलन नामत: विधिक सहायता पर राष्ट्रीय संमेलन बुलाया गया । सम्मेलन का सर्वसम्मति से यह मत था कि निर्धनों को विधिक सहायता प्रदान करने की तात्कालिक आवश्यकता थी । सम्मेलन में इस संबंध में स्कीमों पर विचार हुआ।

### o मुक्त विधिक सहायता विधेयक

१३ मार्च, १९७० को एक विधेयक नामत: 'दी फ्री लीगल एड बिल १९७०' (मुफ्त विधिक सहायता विधेयक, १९७०) संसद सदस्य श्री मधु लिमए द्वारा लोकसभा में पेश किया गया । चूँकि विधेयक न तो सरकार की ओर लाया गया था न इसे सरकार का समर्थन ही प्राप्त था इसलिए इसका असफल होने का भविष्य तो ज्ञात था ही किंतु इसमें इतना प्रकट होता है कि इस विषय पर कितनी गंभीरता से ध्यान दिया जाने लगा था । फिर केंद्र सरकार इस बात पर कभी जोर नहीं दिया ।

### o गुजरात समिति

गुजरात सरकार ने यह अनुभव किया की निर्धन व्यक्तियों और सीमित साधनों वाले व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान करने के लिए कुछ करने की तात्कालिक आवश्यकता थी और राज्य में निर्धन व्यक्तियों की सहायता करने की दृष्टि से एक विधिक सहायता कार्यक्रम स्थापित करना आवश्यक था । उसने गुजरात के मुख्य न्यायमूर्ति श्री पी.एन.भगवती की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की और यह निर्देश

दिया कि वह 'सिविल दाण्डिक, राजस्व, श्रम और अन्य कार्यवाहियों में निर्धन व्यक्ति और सीमित साधन वाले व्यक्तियों को विधिक सहायता देने के प्रश्न पर विचार करे और ऐसे निवेदन करे जो विधिक सलाह अधिक सरलता से उपलब्ध कराने के लिए ठीक हो और ऐसे व्यक्तियों को सरलता से न्याय दिला सकें जिसके अन्तर्गत ऐसी विधिक सहायता के कार्य में लगी हुई संस्थाओं को प्रोत्साहन और सहायता देने का प्रश्न भी है ।'

## ० विधिक सहायता के लिए आवश्यकता–

समिति ने एक बहुत विस्तृत और ज्ञानवर्धक रिपोर्ट पेश की । उसने निर्धन मुकदमा लड़ने वालों को विधिक सहायता प्रदान करने की वकालत की और इस संबंध में बहुत सबल तर्क रखे ।

'निर्धन और निरक्षर' न्यायालय की सरण लेने में समर्थ होने चाहिए और उनकी अज्ञानता और निर्धनता न्यायालयों द्वारा उनके न्याय पाने के मार्ग में बाधा नहीं होनी चाहिए । यदि वे इसलिए न्याय पाने में असमर्थ हैं क्योंकि उसके लिए धन देने की सामर्थ्य उनमें नहीं हैं तो इससे न केवल उन्हें विधियों की सम-संरक्षा अस्वीकार कर देना होगा जिसकी संविधान के अधीन गारंटी की गई है अपितु उनके भीतर अन्याय और हताशा की भावना उत्पन्न करना होगा और उसके परिणामस्वरूप कटुता और प्रजातांत्रिक संस्थाओं और विधि के प्रति अनादर की भावना उत्पन्न होगी इसलिए विधिक सहायता और सलाह न्याय की एक मूलभूत अपेक्षा न्याय के प्रशासन का एक अनिवार्य अंग है । यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह हमारी विधिक संस्थाओं के ठीक-ठीक उन स्थलों को स्पर्श करती है जहाँ उन पर आक्रमण किया

जा रहा है। मार्क्सवादी साम्यवाद का यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि हमारी प्रणाली की सरकार के अधीन विधि एक वर्ग-अस्त्र हैं जिसका प्रयोग धनिकों द्वारा न्याय को खर्चीला बनाने के सरल तरीकों द्वारा निर्धनों को पीड़ित करने के लिए किया जाता है। इस विचार के अनुसार वकील संपतिवान वर्गों के किराए के टटू मात्र है। इस आक्रमण का खतरा इस तथ्य में निहित है कि यह उन सारे लोगों में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है जो यह अनुभव करते हैं कि उन्हें उनके अधिकार अस्वीकृत किए जा रहे हैं और उनके साथ अन्याय किया जा रहा है और वे अपनी निर्धनता के कारण उपचार पाने में असमर्थ हैं। दुर्भाग्यवश आज हमारा विधि का प्रशासन अपने विलंब और व्यय के लिए बदनाम हो गया है, विधि के समक्ष धनी और निर्धन बराबर हैसियत में नहीं खड़े होते, न्याय देने की परंपरागत प्रणाली का प्रभाव निर्धनों के लिए न्यायालयों के दरवाजे बंद करने का हुआ हैं और उससे देश के समस्त भाग में लाखों लोगों को न्याय की भारी इन्कारी हुई हैं। भारी संख्या में स्त्री, पुरुष और बच्चे जो इस देश के लोगों का एक विशाल बहुमत निर्मित करते हैं आज अधम निर्धनता की दशा में मानव स्तर से निम्न अस्तित्त्व में जी रहे हैं, चरम उत्पीडनकारी निर्धनता ने उसकी रीढ़ तोड़ दी हैं और उनके नैतिक तंतु को नष्ट कर दिया हैं। प्रतिरोध करने की, संघर्ष करने की, लड़ने की उनकी इच्छा समाप्त हो गई है; उन्होंने अपने आपको अपने दु:खद अस्तित्त्व को निराश और असहायावस्था पर छोड़ दिया हैं। यद्यपि उनके पक्ष में बहुत फायदेमंद कल्याणकारी विधान पारित हुआ हैं किंतु उन्हें अपने अधिकार ज्ञात नहीं हैं और जहाँ उन्हें ज्ञात भी हैं वहँ समाज के शक्ति-सम्पन्न वर्ग के विरुद्ध जो परम्परागत रूप से उनको उत्पीड़ित और शोषित करते रहे हैं, अपने

अधिकारों पर अडने की इच्छा और साधन तथा साहस, उनमें नहीं हैं । उनके लिए न्याय का कोई अर्थ नहीं हैं । यह ऐसा शब्द हैं जो कदाचित् ही उनके घरों पर पहुँचता हैं । वे अपने प्रति किए गए दोषों और अन्याय के प्रति शून्य और असंवेदनशील हो गए हैं । ऐसे निर्धन और दलित, अज्ञानी और निरक्षर, निर्धन और आवश्यकताग्रस्त लाखों व्यक्तियों के लिए हमारे न्याय-प्रशासन की प्रणाली बराबर और सतत रूप से न्याय से इन्कार करती हैं । यदि कोई दुःखद बेतुकापन है जो हमारे इस समय ईमानदारी पूर्वक अपने भीतर देखने के मार्ग में खड़ा हैं तो वह यह कठोर तथ्य हैं कि न्याय के बारे में अपनी ऊँची और बड़ी-बड़ी बातों के बावजूद हम जानबुझकर इसे उन्हें मिलने नहीं देते जो इतने निर्धन हैं कि इसके लिए धन नहीं दे सकते हैं ।'

### o राज्य का दायित्व

समिति ने यह मत व्यक्त किया कि निर्धन और अकिंचन को विधिक सहायता प्रदान करना राज्य को अपना दायित्व मानना चाहिए । राज्य का यह दायित्व केवल सामाजिक एवं आर्थिक ही नहीं अपितु अनुच्छेद, १४ और २२ (१) के कारण संवैधानिक भी है । इसके अतिरिक्त भारत- जैसे विकासशील देश में कोई विधिक सहायता स्कीम, जब तक राज्य द्वारा इसे प्रचुर सहायता न मिले, सफल रूप में कार्य नहीं कर सकती ।

### o विधिक सहायता के हकदार व्यक्ति

जिन व्यक्तियों को विधिक सहायता दी जानी चाहिए उनके बारे में समिति ने यह निवेदन किया कि जहाँ तक विधिक सहायता देने का सरोकार है, यद्यपि पिछडे वर्ग के लोग विशेष ध्यान दिए जाने की अपेक्षा रखते हैं किंतु बिना इस बात पर ध्यान

दिए कि वे निर्धन व्यक्ति हैं अथवा नहीं उन्हें एक अलग वर्ग नहीं माना जाना चाहिए। विधिक सहायता की स्कीम को वर्ग अथवा हैसियत पर आधृत नहीं होना चाहिए। साधन की कसौटी उन्हें भी लागू की जानी चाहिए। किंतु जब तक इसके प्रतिकूल साक्ष्य न हो तब तक पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों के बारे में साधन कसौटी के पूरा होने की अवधारणा की जानी चाहिए। ऐसे पिछड़े वर्गों के चार मुख्य भाग हैं-

१. अनुसूचित जाति (S.C.)

२. अनुसूचित जनजाति (S.T.)

३. खानाबदोश जनजाति (N.T.)

४. डिनोटिफाइड जनजातियाँ (D.N.T.)

समितिने यह निवेदन किया कि यह अवधारित करने के लिए मुख्य कसौटियाँ कि क्या विधिक सहायता चाहने वाला आवेदक इसके लिए पात्र हैं कि नहीं ये है;

१. साधन कसौटी

२. प्रथम दृष्ट्या मामला कसौटी

३. युक्तियुक्तता कसौटी

आईए उनको विस्तार से समझे।

**o साधन कसौटी**

साधन कसौटी के अनुसार विधिक सहायता देने में विधिक सहायता के लिए आवेदकों के साधनों को विचार में लिया जाना चाहिए। विधिक सहायता के लिए पात्रता तय करने के लिए मुकदमें का खर्च अदा करने की आवेदक की असमर्थता के व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकन पर आधारित एक मोटी और सामान्य कसौटी के स्थान पर आय

और पूँजी की सीमा पर आधारित एक वस्तुनिष्ठ कसौटी आवश्यक है । समिति ने सामर्थ्य के भीतर आय और सामर्थ्य के भीतर पूँजी की सीमा नियत करने के लिए भी विस्तृत नियम और आँकड़े दिए हैं।

- **प्रथमदृष्टया मामला कसौटी**

प्रथमदृष्ट्या मामला कसौटी के बारे में समिति ने यह सिफारिश की कि सिविल मामले में साधन कसौटी की पूर्ति करने के अतिरिक्त आवेदक को यह भी दिखाना चाहिए कि कार्यवाही के संचालन अथवा प्रतिरक्षा का उसका प्रथमदृष्ट्या मामला है । प्रथमदृष्ट्या मामला कसौटी को दांडिक मामलों में लागू नहीं किया जा सकता । ऐसे मामलों में कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या मामले की सारी परिस्थितियों को देखते हुए न्याय के हित में यह आवश्यक है कि आवेदक को विधिक सहायता दी जाए । यह कसौटी भी वहाँ लागू नहीं होनी चाहिए जहाँ अभियुक्त व्यक्ति पर मृत्यु अथवा आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के लिए गंभीर दांडिक आरोप है ।

- **युक्तियुक्तता कसौटी**

युक्तियुक्तता कसौटी के बारे में यह कहा गया कि विधिक सहायता देने की यह एक शर्त बनाई जानी चाहिए और विधिक सहायता समिति की इस बारे में तुष्टि होनी चाहिए कि विधिक सहायता देना मामले की सारी परिस्थितियों में युक्तियुक्त है ।

- **मामले जिनमें विधिक सहायता दी जानी चाहिए–**

जिन मामलों में विधिक सहायता दी जानी चाहिए उसके बारे में समिति ने यह यह बात रखी कि मानहानि, विद्वेषपूर्ण अभियोजन आदि के बारे में कार्यवाही जैसे कुछ विनिर्दिष्ट वर्गों और यदि विधिक सहायता समिति को यह प्रतीत होता है कि

कतिपय अन्य विनिर्दिष्ट कारण से आवेदक को विधिक सहायता नहीं दी जानी चाहिए को छोड़कर विधिक सहायता सिविल न्यायालयों में सभी प्रकार के मामलों में एक सामान्य नियम के रूप में उपलब्ध कराई जानी चाहिए । प्रशासनिक अधिकरणों के समक्ष कार्यवाहियाँ विधिक सहायता प्रोग्राम की सीमा के भीतर संमिलित की जानी चाहिए। यह आवश्यक हैं कि विधिक सहायता उनको भी दी जानी चाहिए जो दांडिक न्यायालयों के समक्ष अपराधों के अभियुक्त हैं । चूँकि ऐसी सहायता को दांडिक न्यायालयों के समक्ष अभी कार्यवाहियों में अभियुक्त को देना संभव नहीं होगा । इसलिए यह अपराधों के उन मामलों में नहीं दी जा सकती है जो केवल जुर्माने से दंडनीय हैं । दांडिक मामलों में विधिक सहायता मंजूर करते समय इस बात की सावधानी रखनी होगी कि विधिक सहायता के उपलब्ध का दुरूपयोग न किया जाए।

समिति ने यह निवेदन दिया कि विधिक सहायता स्कीम का प्रशासन विधिक सहायता समितियों के हाथ में रखा जाय जो सारे राज्य में बनाई जाए । उसने तालुका और जिलास्तर पर विधिक सहायता समितियाँ, अहमदाबाद नगर के लिए विधिक सहायता समिति और राज्य विधिक सहायता समिति के गठन के लिए सुजाव दिया ।

## ० विधिक सेवा का मुख्य प्रस्ताव

समितिने यह सुझाव दिया कि उचित और प्रभावी विधिक सेवा प्रोग्राम में विधिक सेवा की तीन सुभिन्न बातें आनी चाहिए:

१. विधिक सहायता

२. विधिक सलाह

३. निवारक सेवा ।

विधिक सहायता को उपचारात्मक विधिक सेवा कहा जाना चाहिए । विधिक सलाह और निवारक सेवा को सामूहिक रूप से 'निवारक विधिक सेवा' कहा जाना चाहिए । समिति ने कहा कि निवारक विधिक सेवा का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन भारी मात्रा में उस कोटि और सीमा पर निर्भर करता है जिस तक समुचित शिक्षा निर्धन और असुविधाग्रस्त व्यक्तियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और अधिवक्ताओं को दी जा सकती हैं । शोध प्रयोग और विधि के उन क्षेत्रों में नवीकरण को जो निर्धनों के जीवन को गंभीरता से प्रभावित करते हैं निवारक विधिक सेवा प्रोग्राम का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग होना चाहिए ।

- **विधिक सहायता निधि–**

समिति ने यह अनुभव किया कि एक पर्याप्त विधिक सेवा प्रोग्राम के लिए भारी मात्रा में अर्थ की अपेक्षा होगी । इसलिए उसने कानून द्वारा विधिक सहायता निधि के निर्माण के लिए सुझाव दिया और उन विभिन्न स्त्रोतों का भी सुझाव दिया जिनसे निधि के लिए धन संग्रहित किया जा सकता है ।

समिति ने सत्वर, प्रभावी और सस्ते न्याय के प्रशासन के लिए गाँवों में नए मसौदे पर न्याय-पंचायत के गठन और क्रमश: उनकी अधिकारिता के विस्तार के लिए निवेदन किया।

समिति ने यह निवेदन दिया कि उसके द्वारा सिफारिश किया गया विधिक सेवा-प्रोग्राम पूर्ण रूप से और समूचे तौर पर लागू किया जाना चाहिए । तथापि पूरे विधिक सेवा प्रोग्राम को तत्काल लागू करने में कठिनाइयों के कारण, उसने यह

सुझाव दिया कि विधिक सेवा प्रोग्राम एक क्रमबद्ध योजना के अनुसार प्रकमों में लागू किया जा सकता है । समिति ने एक योजना निर्मित की और यह सुझाव दिया कि सरकार इस स्कीम को उसके अनुसार लागू करे ।

तथापि समिति के निवेदनों को लागू करने के लिए कानून पारित करना राज्य सरकार के लिए संभव नहीं हो सका ।

## ३.९ विधि का विशुद्ध सिद्धांत

अधिकांश स्थितियों में कोई विधि-सिद्धांत स्थानीय विधि-प्रणाली से प्रेरणा लेता है । यह उस विधि-प्रणाली का विश्लेषण करता है और उसे एक न्यायशास्त्रीय आधार प्रदान करने का प्रयत्न करता है, और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है । हम पिछले अध्याय में यह विवेचन कर चुके हैं कि किस प्रकार, न्यायिक प्रणाली से यथार्थवादी विधिक चिंतन का जन्म हुआ। 'विधि का विशुद्ध सिद्धांत' का विवेचन करने से पूर्व इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि पर कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है ।

### ० सिद्धांत की पृष्ठभूमि-

'विधि का विशद्ध सिद्धांत' जिसे विधिक चिंतन की 'वियना-विचारधारा' भी कहा जाता है, वियना (आस्ट्रिया) विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर हैन्स कैल्सन द्वारा प्रस्तुत किया गया था । हालांकि इस सिद्धांत का पहले पहल कथन १९११ में हुआ, किंतु इसका पूर्ण विकास युद्ध के बाद युरोप में हुआ । तत्कालीन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियाँ इस दृष्टिकोण के आधार और आवश्यकता पर प्रकाश डाल

सकती हैं। उस समय प्रवृत्त आस्ट्रिया कोड सौ वर्ष पूर्व तैयार किया गया था जबकि 'प्राकृतिक विधि-सिद्धांत' अपनी उन्नति पर था।

**o प्राकृतिक विधि के विरुद्ध प्रतिक्रिया: लिखित संविधान**

यद्यपि प्राकृतिक विधि को इंग्लैंड में १९वीं शताब्दी में ही अमान्य कर दिया गया था, किंतु यूरोपीय महाद्वीप में २०वीं शताब्दी के प्रारंभ तक इसका पैर जमा रहा। बीसवीं शताब्दी में नवीन सिद्धांतों ने 'प्राकृतिक विधि-सिद्धांतों' पर कठोर प्रहार करना प्रारंभ किया। 'विधि के विशुद्ध-सिद्धांत' ने भी प्राकृतिक विधि के विचार को अमान्य कर दिया। दूसरे, प्रथम विश्व-युद्ध के बाद यूरोपीय महाद्वीप में अधिकांश देशों ने लिखित संविधान अपनाया। विधि-प्रणाली के आधार के रूप में एक मूलभूत विधि का विचार उनमें प्रकट हुआ। 'प्रधान-मान' (मुख्य नियम) का विचार जिसे 'विशुद्ध सिद्धांत' की नींव कहा जा सकता है, और 'मानों के सोपान तंत्र' के रूप में विधि की परिभाषा उपरोक्त सिद्धांत से प्रेरित हैं। तीसरे विश्व-युद्ध में राष्ट्रों के राक्षसी कार्यों से उत्पन्न मृत्यु और विनाश-लीला ने लोगों को एक प्रभावकारी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के बारे में सोचने के लिए विवश किया जो कि ऐसे कार्यों पर नियन्त्रण रख सके। अन्तर्राष्ट्रीय विधि की प्रमुखता को, जिसे 'विशुद्ध सिद्धांत' स्थापित करना चाहता है, इस संदर्भ में स्पष्ट किया जा सकता हैं।

**o 'विशुद्ध सिद्धांत' की कुछ अन्य सिद्धांतों से निकटता है-**

केल्सन का सिद्धांत कुछ बातों में ओस्टिन के सिद्धांत के निकट है। ये दोनों विधि के बल प्रयोग के लक्षण को बताते हैं और दोनों विध्यात्मवादी हैं। केल्सन एक

बात में यथार्थवादियों के निकट है, क्योंकि वह भी विधि के सारे भ्रमों और विभ्रांतियों को दूर करना चाहता हैं । केल्सन के कुछ निष्कर्ष, यद्यपि वह उन पर एक अन्य आधार-भूमि से पहुँचा है, उसे कुछ समाजशास्त्रीय विधिशास्त्रियों के निकट रखते हैं और विशेष रूप से ड्युगिट से निकट । तथापि उसके सिद्धान्त की मुख्य बात यह हैं कि यह विधि को 'तत्त्वमीमांसीय कुहरा' से, जिसके द्वारा यह सदैव न्याय संबंधी विचार द्वारा या प्राकृतिक विधि के सिद्धांत द्वारा ढका रहा है, मुक्त करने को अग्रसर होता हैं । इसलिए इस सिद्धांत को 'विधि का विशुद्ध सिद्धांत' कहा गया है ।

केल्सन की पुस्तक से लिया गया निम्नलिखित उदाहरण विधि के विशुद्ध सिद्धांत की परिभाषा, उसकी प्रकृति और आधारभूत सिद्धांतों को स्पष्ट करेगा-

**o विधि का विशुद्ध सिद्धांत विध्यात्मक विधि का एक सिद्धांत है-**

सिद्धांत के रूप में यह अनन्य रूप से अपने विषयवस्तु की सटीक परिभाषा से सरोकार रखता है । यह इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है: 'विधि क्या हैं ?' किंतु इस प्रश्न का नहीं कि इसे क्या होना चाहिए ? यह विधि का विज्ञान है उसकी राजनीति नहीं ।

जिसे विधि का विशुद्ध सिद्धांत कहा गया हैं उसका अर्थ हैं यह ज्ञान के उस अंग से सरोकार रखता है, जो विधि के बारे में है- ऐसे ज्ञान से उस प्रत्येक बात को बाहर कर दिया जाना हैं जो विधि की विषयवस्तु में पूरे पक्के रूप से नहीं आती है । अर्थात् यह विधि के विज्ञान को विजातीय तत्त्वों से स्वतंत्र करने का प्रयत्न करता है। यही इसका मूलभूत कार्यपद्धति संबंधी सिद्धांत है ।

विधि का विशुद्ध सिद्धांत ज्ञान के अपने उद्देश्यों की स्पष्ट परिभाषा इन दो दिशाओं में करने का प्रयत्न करता हैं जिनमें इसकी स्वायत्तता पर प्रणालियों के विद्यमान संहितावाद के द्वारा सबसे अधिक खतरा है। विधि एक साक्षात् सामाजिक विषय है तथापि समाज प्रकृति, विज्ञान से जो तत्त्वों के एक बिल्कुल भिन्न सम्मेल है पूर्णरूप में भिन्न है। यदि विधि के विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान में लुप्त नहीं हो जाना है तो विधि का प्रकृति से संभव स्पष्टतम तरीकों से प्रभेद किया जाना चाहिए। मान के रूप के विधि की परिभाषा करने में और विधिक विज्ञान (जिसका कार्य विद्यार्थी और कार्यपालक अंगों से भिन्न है) को मानों के ज्ञान तक सीमीत करने में हम एक ही साथ मानात्मक विज्ञान के रूप में विधि को प्रकृति और विधि के विज्ञान से और सभी विज्ञानों, जो सांयोगिक प्राकृतिक प्रक्रियाओं को बताने का लक्ष्य रखते हैं से अलग करते हैं।

विधि के एक विनिर्दिष्ट विज्ञान के रूप में विधि का विशुद्ध सिद्धांत विधिक नियमों को प्राकृतिक यथार्थताओं के रूप में नहीं, चेतना में तथ्य के रूप में नहीं अपितु एक विषयवस्तु का अर्थ देने वाले रूप में जानता है और तथ्यों को केवल विधिक मानों के रूप में सोचता है अर्थात केवल मानों द्वारा तय किए गए होने के रूप में। इसकी समस्या अर्थ के एक क्षेत्र में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों को खोजना हैं।

यहाँ मुख्य रूप से जो महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि विधि को उस सम्मेल से स्वतंत्र कराना है जो पारंपारिक रूप से इसके साथ बना हुआ हैं। यह नैतिकता के साथ इसका जुड़ा हुआ होना है। निस्सन्देह इस अपेक्षा को प्रश्नगत नहीं करना है कि विधि को नैतिक अर्थात् कल्याणकर होना चाहिए। यह अपेक्षा स्वत: प्रत्यक्ष है। जिसे

प्रश्नगत किया जा रहा हैं वह केवल यह विचार है कि विधि नैतिकता का एक अंग है और इसलिए विधि के रूप में, प्रत्येक विधि किसी अर्थ में और किसी मात्रा में नैतिकता है । विधि के इस सिद्धांत को इस तत्त्व से स्वतंत्रता कराना विधि के विशुद्ध सिद्धांत विधिक संकल्पना को नैतिक मान की संकल्पना से पूर्णरूप से पृथक् करता है और विधि को एक विनिर्दिष्ट प्रणाली की रूप में प्रतिष्ठित करता है । जो नैतिक विधि से भी स्वतंत्र है ।

**० विधि अथवा विधिक व्यवस्था विधिक मानों की एक प्रणाली है–**

इसलिए जिस प्रथम प्रश्न का उत्तर देना है वह यह है: कौन सी बात विधिक मानों की भिन्नता में एकता निर्मित करती है? क्यों ? एक विशिष्ट विधिक नियम, एक विशिष्ट विधिक व्यवस्था का होता है ? नियमों की बहुलता एक एकता, एक प्रणाली एक व्यवस्था निर्मित करती है जब कि विधि मान्यता उसके अंतिम स्त्रोत एक अकेले नियमावली में पाई जा सकती है । यह आधारभूत नियम, सारे नियमों की, जो प्रणाली निर्मित करते हैं, भिन्नता में एकता निर्मित करता हैं । यह कि कोई नियम एक विशिष्ट व्यवस्था का है यह उसकी विधि मान्यता व्यवस्था को निर्मित करने वाले आधारभूत नियम से जोड़ने पर ही ज्ञात होती है । मूलभूत नियम की प्रकृति के अनुसार, अर्थात् विधि मान्यता का संप्रभुता का सिद्धांत, हम दो विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं या मानात्मकम प्रणालियों में प्रभेद कर सकते हैं । ऐसी प्रथम प्रणाली में मान अपने तत्त्व के कारण विधि मान्य होते है जिसमें मान्यता के लिए विवश करने का सीधे प्रत्यक्ष गुण होता हैं । मान यह संदर्भात्मक गुण एक मूलभूत मान, जिसके तत्त्व से उनका तत्त्व विशिष्ट से सार्वजनिक होने के रूप में संबंधित है, से उद्भूत होने के द्वारा प्राप्त करते

हैं। नैतिकता के नियम इस प्रकृति के होते हैं । यहाँ मान शब्द भी नियम के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं ।

एक मान, एक विधिक मान केवल इसलिए होता है क्योंकि यह एक विशिष्ट रीति से निर्मित किया गया होता है, एक निश्चित प्रक्रिया और एक निश्चित समय से उत्पन्न हुआ होता है । विधि विध्यात्मक विधि अर्थात् कानून (निर्मित विधि) के रूप में ही विधिमान्य है । इसलिए विधि का मूलभूत मान ही आधारभूत नियम हो सकता है जिसके अनुसार विधिक मान उत्पन्न किए जाने हैं । विधि बनाने की यह आधारभूत शर्त है । विधिक प्रणाली के अलग-अलग एकल मान तर्कयुक्त निगमन की प्रक्रिया द्वारा मूलभूत मान से नहीं निकाले जाने हैं । वे इच्छा की एक क्रिया द्वारा निर्मित किए जाने हैं विचार की एक क्रिया द्वारा नहीं निकाले जाने हैं । यदि हम अकेले एक विधि मान को मूलभूत मान में उसके स्त्रोत से खोज सके तो हम यह दिखाने के द्वारा करते हैं कि प्रक्रिया जिसके द्वारा यह निर्मित किया गया था मूलभूत मान की अपेक्षाओं के अनुरूप थी- (क) मूलभूत मान के कार्य का यह विश्लेषण विधि की एक विशेष असामान्यता को भी प्रकाश में लाता है ।

- **विधि अपने विकास और अपने निर्माण को स्वयं विनियमित करती है-**

विधिक व्यवस्था की एकता विधि निर्माण की इकाई है । विधि समान, साथ-साथ के मानों की प्रणाली नहीं है; यह विभिन्न परतों के साथ एक सोपान तंत्र है ।

### ३.९.१ विधि के विशुद्ध सिद्धांत का स्वरूप

- **विधि एक मानात्मक (नार्मेटीव) विज्ञान है-**

केल्सन के अनुसार, विधि एक 'मानात्मक विज्ञान' हैं । किंतु विधि के नियमों

का एक विशिष्ट लक्षण होता है । विधि यह बताने का प्रयत्न नहीं करती कि क्या वस्तुत: होता है, अपितु केवल कतिपय नियमों को विहित करती हैं । वह कहती है, यदि कोई विधि का उल्लंघन करता है तो उसे दंडित होना चाहिए ।'

### o विधि के नियम 'होना चाहिए' मान हैं-

ये विधिक 'होना चाहिए' मान 'नैतिकता' मानो से इस बात में भिन्न होते हैं कि पहले कहे गए के पीछे भौतिक बाध्यता होती हैं जो कि बाद में कहे गए में नहीं होती है, किंतु केल्सन आस्टिन के 'समादेश-सिद्धांत' को स्वीकार नहीं करता क्योंकि यह विधि की परिभाषा में एक मानसिक तत्त्व को सम्मिलित करती है जिसे केल्सन दूर रखता है ।

### o मानात्मक संबंधों का सोपान-तंत्र-

केल्सन के लिये विधि का विज्ञान मानात्मक संबंधों के सोपान तंत्र का ज्ञान है। वह कांट के 'ज्ञान के सिद्धांत' पर अपने को आधारित करता है और इस सैद्धांतिक ज्ञान को विधि पर भी लागू करता है । वह अपने सिद्धान्त में यह सम्मिलित करना नहीं चाहता हैं कि 'विधि क्या होनी चाहिए' और अपने विधि-सिद्धांत के बारे में कहता हैं कि यह 'विध्यात्मक विधि' की यथासंभव ठीक-ठीक बनावट संबंधी विश्लेषण है, एक ऐसा विश्लेषण जो 'मूल्य के समस्त नैतिक और राजनीतिक निर्णयों से मुक्त हो ।' इस प्रकार 'विशुद्ध सिद्धांत' एक ओर तो नीतिशास्त्र के या प्राकृतिक विधि के किसी भी विवेचन से दूर रहता है और दूसरी और, यह आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रस्तुत करता है, जो विधिशास्त्र के सीमा-क्षेत्र को बहुत बड़े रूप में विस्तृत कर देते हैं । केल्सन अपने 'विशुद्ध सिद्धांत' में सार्वजनीन

सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयत्न करता है और इसलिए, उसे 'सामान्य विधिशास्त्र' के पक्ष में कहा जा सकता है ।

### o विधिक नियमों की विधिमान्यता–

अब पुन: मानों के विवेचन पर आते हुए हमें किसी विधि-प्रणाली में उसके व्यावहारिक कार्यकारण को समझना चाहिए । प्रत्येक विधिक कार्य किसी मान से सम्बंधित होता हैं जो इसे विधिक विधिमान्यता प्रदान करता है । विधिक मान अपनी विधिमान्यता किसी बाहरी स्त्रोत से प्राप्त नहीं करता है, अर्थात् किसी विशेष 'होना चाहिए मान' या अनुशास्ति से यहाँ केल्सन ओस्टिन के निकट आ जाता हैं अर्थात् (अनुशास्ति विधि का आवश्यक तत्त्व है) परंतु अनुशास्ति की संकल्पना के बारे में उसका उससे मतभेद हैं ।

### o प्रधान नियम–

ओस्टिन का अनुशास्ति का विचार यह अर्थ देता है कि वह मानों विधि-शासन से बाहर स्थित कोई वस्तु है । किंतु केल्सन की अनुशासित स्वयं एक दूसरा मान हैं जिसकी प्रकृति उस (मान) से भिन्न नहीं है जो इस पर टिका हुआ है । इस प्रकार प्रत्येक विधिक मान किसी अधिक सामान्य मान से अपना बल प्राप्त करता है। अन्ततोगत्वा यह सोपान-तंत्र किसी मूल मान से या किसी मूल परिकल्पना से संबंधित होता हैं जिसे 'प्रधान नियम' कहा जाता है, और इसी मान से ही सारे नीचे वाले मान अपना बल प्राप्त करते हैं। यह प्रधान मान किसी विधि-प्रणाली में आरंभिक बिंदु होता है । इस आधार से एक  विधि-प्रणाली श्रेणी दर श्रेणी विस्तृत होती चली जाती है। यह जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे अधिकाधिक विस्तृत और विनिर्दिष्ट होती जाती

है । प्रक्रिया को प्रधान नियम या आधारभूत मान का क्रमिक ठोस बनते जाना कहा जाता है ।

**o गत्यात्मक प्रक्रिया**

इस प्रकार विधि विनिर्दिष्ट स्थितियों को लागू की जाती हैं । यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है । वह इस दृष्टिकोण का ओस्टिन के दृष्टिकोण से भेद बतलाता है । वह ओस्टिन के सिद्धांत को स्थिर कहता है क्योंकि ओस्टिन का विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र विधि को नियमों की एक प्रणाली मानता है, जो पूर्ण और लागू किए जाने के लिए प्रस्तुत है और वह उसके निर्माण की प्रक्रिया पर कोई ध्यान नहीं देता है । तथापि विधि के गतिविज्ञान का अध्ययन भी आवश्यक है क्योंकि विधि अपने निर्माण को शासित करती है और केल्सन का सिद्धांत इसे अपने में संमिलित करता है ।

**o 'प्रधान नियम (ग्रांड नार्म) की परख, 'न्यूनतम प्रभावकारिता'–**

प्रत्येक विधि-प्रणाली में सदैव एक 'प्रधान-मान' होता है, यद्यपि विभिन्न विधि-प्रणालियों में इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न होता हैं । उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में प्रधान मान 'संसदसहित सम्राट्' (क्राउन-इन-पार्लियामेंट) हैं और अमेरिका में यह संविधान है । प्रधान मान को 'न्युनतम प्रभावकारिता' के द्‌वारा पहचाना जा सकता है जो कि इसमें होती है । तथापि 'प्रधान मान' की प्रकृति और उत्पत्ति के बारे में कोई विवेचन 'विधि का विशुद्‌ध सिद्‌धांत' के विषय-क्षेत्र में नहीं आता है । ये विधि पूर्व प्रश्न हैं जिनमें विधिशास्त्री का कोई सरोकार नहीं है ।

**o विधिशास्त्री का 'प्रधान' नियम (गाण्ड नार्म) की प्रकृति और उत्पत्ति से सरोकार नहीं है–**

'विधि-सिद्धांत' का कार्य 'प्रधान-मान' और अन्य गौण मानों के बीच संबंधों को केवल स्पष्ट करना है और अन्य प्रश्नों, जैसे 'प्रधान-मान' की अच्छाई या बुराई में जाना नहीं है । ऐसे प्रश्नों के किसी विवेचन में ऐसी वस्तुओं और विषयों का अध्ययन आ सकता हैं जो इस सिद्धांत में मिलावट ला सकता है । तथापि केल्सन के सिद्धांत को किसी विधि-प्रणाली पर लागू करने से पहले 'प्रधान मान' का पता लगाना होगा ।

## ३.९.२ विशुद्ध सिद्धांत में निहित बातें

केल्सन के सिद्धांत में निहित विस्तृत और अनेक बातें हैं । इनके अंतर्गत राज्य, संप्रभुता, निजी और लोक-विधि की संकल्पनाएँ आती हैं ।

**o विधि और राज्य दो भिन्न वस्तुएँ नहीं–**

केल्सन एक व्यक्तिगत सत्ता के रूप में 'संप्रभु' के अस्तित्त्व को अस्वीकार करता है । यह विधि से भिन्न एक सत्ता के रूप में राज्य के अस्तित्त्व को भी अस्वीकार करता है । जब सभी अपनी शक्ति और विधि-मान्यता अन्ततोगत्वा 'प्रधान मान' से प्राप्त करते हैं, तो संप्रभु जैसे कोई सर्वोच्च या उच्चतर व्यक्ति नहीं हो सकता है । इसी प्रकार राज्य भी विधि तंत्र की एकता को समझने की एक सहज रीति है । राज्य की वास्तविकता यह हैं कि यह एक प्रणाली है जो सामाजिक आचरण को एक मानात्मक सिलसिला में शासित करती हैं । तथापि ऐसा कार्यकरण केवल किसी विधि-प्रणाली में ही पाया जा सकता है । वस्तुत: विधि और राज्य एक ही वस्तु है,

उनमें अंतर इस कारण प्रतीत होता है कि हम उनको दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं ।

- **लोक और प्राइवेट विधि में कोई अंतर नहीं-**

केल्सन के अनुसार व्यक्तिगत और लोक-विधि में कोई अंतर नहीं है । जब समस्त विधि एक ही 'प्रधान-मान से अपना बल प्राप्त करती है तो कतिपय बातों में अंतर होने के आधार पर इन पर दो बिल्कुल भिन्न लक्षण आरोपित नहीं किए जा सकते । पक्षकारों के बीच की गई संविदाएँ दंड-विधि जैसी ही होती हैं क्योंकि दोनों ही मामलों में विधि-मान्यता या शक्ति एक ही 'प्रधान-मान' से प्राप्त होती है । उनके बीच इस आधार पर कोई भेद नहीं किया जा सकता कि वे विभिन्न प्रकृति के हितों की रक्षा करते हैं । प्राइवेट हितों की रक्षा लोक हितों की रक्षा में ही हो जाती है । वह इस अंतर के पीछे एक राजनीतिक आदर्श पाता है- जो लोक-विधि को उच्च स्थान पर देने और 'सत्तावाद' को न्यायसंगत बनाने का हेतु है । इस बात पर केल्सन एक भिन्न आधार-भूमि से उसी निष्कर्ष पर पहुँचता है जिस पर ड्यूगिट और रेनर पहुँचे हैं ।

- **भौतिक और विधिक व्यक्तिओं के बीच कोई अंतर नहीं-**

उसी सिद्धांत के आधार पर केल्सन ने भौतिक और विधिक व्यक्तियों के बीच कोई विधिक अंतर स्वीकार नहीं किया है । समस्त विधिक व्यक्तित्त्व कृत्रिम होता है और अपनी विधिमान्यता 'वरिष्ठ मानों' से प्राप्त करता हैं । विधि में व्यक्तित्त्व का अर्थ है । एक सत्ता से जो अधिकार और कर्तव्य धारण करने में समर्थ हो । विधि-

तंत्र जहाँ चाहता है, व्यक्तित्त्व प्रदान करता हैं। विधि मानव-प्राणियों को भी एक सता के रूप में मानती है जिन्हें अधिकार प्राप्त होता है और जो कर्तव्यों के आधीन होते हैं। इसलिए विधि में वे विधिक व्यक्तियों से किसी प्रकार भिन्न नहीं होते। इस बात के संबंध में केल्सन के दृष्टिकोण आधुनिक समाजशास्त्रीय विधिशास्त्रियों के समान ही हैं।

- **कोई वैयक्तिक अधिकार नहीं-**

केल्सन के विधि की यह संकल्पना कि यह मानात्मक संबंधों की एक प्रणाली है, इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि विधि में वैयक्तिक अधिकार जैसी कोई वस्तु नहीं होती है। विधिक कर्तव्य ही 'विधि के सार' हैं। विधि सर्वदा 'होना चाहिए' की एक प्रणाली है। अधिकार की संकल्पना किसी विधि-प्रणाली के लीए आधारभूत रूप में आवश्यक नहीं है; 'विधिक अधिकार इसकी पूर्ति की अपेक्षा करने के हकदार व्यक्ति की दृष्टि में केवल कर्तव्य के रूप में है।' दंड विधि में अधिकांशत: वैयक्तिक अधिकार का विचार समाप्त हो चुका है और स्वयं राज्य ही अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करता है। केल्सन के अनुसार, वैयक्तिक अधिकार का विचार संविदा आदि से भी समाप्त हो सकता है। इस कथन में निहित बातें ये हैं कि व्यक्ति के कोई अ-अन्यसंक्राम्य (न छोडे जाने वाले) अधिकार नहीं हो सकते हैं जैसा कि कुछ विधिक सिद्धांतों में कहा गया है। भारत के न्याय तंत्र में भी अधिकांशतः यह नियमों को सर्वोपरी माना जाता है।

- **अन्तर्राष्ट्रीय विधि की श्रेष्ठता-**

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चूका है, 'विधि का विशुद्ध सिद्धांत' पहले

विश्व-युद्ध के बाद पूर्ण विकास में आया। जिन लोगों ने महायुद्धजन्य मृत्यु और विनाश को देखा, वे एक सबल और प्रभावी अन्तर्राष्ट्रीय विधि चाहते थें जो कि राज्यों के स्वेच्छापूर्ण कार्य-कलापों को नियंत्रित कर सके। अपनी आधार-भूमि से केल्सन ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि की श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसके सिद्धांत की दुर्बलताएँ और सीमाएँ इसी बात पर सबसे अधिक प्रकट होती हैं। इससे उसके सिद्धांत में अनेक असंगतियाँ आई। केल्सन यह कहने को तत्पर हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि को भी एक न्यायिक तंत्र माना जाना चाहिए। उस कठिनाई को दूर करने के लिए जो इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि में विधि की समस्त विशेषताये नहीं हैं, विशेषत: बाध्यता का तत्त्व, वह यह कहता हैं कि इस संबंध में इसकी तुलना 'आदिम विधि' से की जा सकती है। जैसे कि विधि आरंभ में रूढ़िगत रूप में थी और बिना पर्याप्त अनुशास्ति के थी और उसने अपने वर्तमान रूप को एक विकास-क्रम के पश्चात् ग्रहण किया, उसी प्रकार वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विधि (आदिम विधि की भाँति) अपनी आदिम अवस्था में है, और भविष्य में इसमें भी वे सब विशेषताएँ आ जाएँगी जो कि आधुनिक विधि में हैं। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय विधि के 'प्रधान मान' का संबंध है, केल्सन कहता हैं कि यह 'समझौतों का सम्मान किया जाना चाहिए' में हैं। वह कहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि की अनुशास्तियाँ युद्ध और प्रतिशोध हैं। इस बात पर उसका तर्क बहुत ही विचित्र और न जँचने वाला है। इस प्रकार विधि के स्वरूप को यथासंभव सरल ढंग आप विद्वत जन समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

# अध्याय–४
# विधि क्षेत्र और राजभाषा हिंदी

इन बातों से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि आज हिंदी का स्थान न केवल भारतीय मंच पर उज्ज्वल हुआ है बल्कि अंतरराष्ट्रीय धरातल पर भी उपर उठा है । एक प्रमुख अखबार के अनुसार थाइलेन्ड और सिंगापोर सरकार ने भी भारतीय भाषाओं और खास कार के हिंदी को सिखने के लिए प्रोत्साहन देने का निर्णय लिया है । इस बात से हिंदी का स्थान निर्धारण किया जा सकता है ।

भारत में भी आज हिंदी न सिर्फ साहित्यिक भाषा के रूप में है किंतु प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में भी हिंदी ने अपना नाम कायम किया है । आज खेल-कुद, प्रशासन, मीडिया तकनीकी कोई भी क्षेत्र हिंदी से अछुता नहीं है । ये सारे भाषिक विकास भारत के विश्वस्तरीय विकास की ओर इशारा करते हैं । हिंदी भारत की पहचान बनकर आगे बढ़ रही है, जैसे भारतीय मुद्र का भी एक अंतरराष्ट्रीय चिह्न के रूप में अपना स्थान निर्धारित किया हैं । वह रूपये का अंतराष्ट्रीय चिह्न भी हिंदी की देवनागरी लिपि 'र' में से बना हैं यथा '`' ।

अत: उपर्युक्त हिंदी की स्थिति को देखकर हमे इसकी राष्ट्रीय अखंड़ितता के रूप में प्रस्थापित करने की जिम्मेदारी बनती है । कानून व्यवस्था एवं कानून संबंधित साहित्य अभी भी अंग्रेजी की बैसाखी लेकर चलता है । हाँ यह संतोष की बात हैं कि कानूनी अधिनियमों का हिंदी अनुवाद हो चुका है । किंतु पूरे विधि साहित्य का हिंदी अनुवाद होना तो शायद संभव नहीं ।

हमारे यहाँ विधि अध्ययन एवं अध्यापन कुछ एक राज्यों ने हिंदी में स्वीकारा है, जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान में स्थित विश्वविद्यालयों ने हिंदी को अपनाया है । गुजरात भी इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है । और एक हद तक मेरा मानना हैं कि विधि की भाषा सारे देश में एक रहनी चाहिए और इस रूप में हिंदी को ही प्रस्थापित करने के लिए व्यवस्थित कार्य किया जाना चाहिए । कुछ सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएँ भी विधि साहित्य का हिंदी अनुवाद कार्य का जिम्मा संभाला है । भारत सरकार के विधि मंत्रालय द्वारा 'उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका' और 'उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका' नामक दो पत्रिका ने विधि क्षेत्र की एक बड़ी कमी को पूरा कर दिया है ।

अब सवाल एक ही बाकी रह गया है और वह है न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों में कार्य स्वरूप में हिंदी को लाना । प्रादेशिक क्षेत्रों की अदालतों में संभव है कि वहाँ के व्यवहार उनकी अपनी प्रादेशिक भाषा में हो परंतु जिल्ला स्तरीय या मुख्य शहरों की अदालतों में तो हिंदी का प्रयोग होना चाहिए । अभी भी बड़े एवं आला अधिकारी अंग्रेजी को त्यागकर हिंदी अपनाने में शर्म महसूस कर रहे हैं । क्योंकि हमारी ढकोसले बाजी ने और खोखले व्यवहारों ने खामख्वा अंग्रेजी को स्टेटस और रुतबे की भाषा बना दिया है: अत: अंग्रेजी को त्यागना एक छोछ महसुस करने जैसा हो गया है । उन लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि हिंदी अपनाने से उनका मान बढ़ेगा क्योंकि हिंदी हमारी अपनी भाषा है ।

बस आवश्यकता हैं वकीलों एवं न्यायाधीशों को अपना कार्य हिंदी में शुरु कर देने की जबकि हमारे पास पूरा विधि साहित्य हिंदी में उपलब्ध हैं ।

अन्य सभी व्यावसायिक क्षेत्रों में लगभग पूर्ण रूपेण हिंदी का वर्चस्व बन चुका है । जैसे बैंकिंग, पत्रकारिता, दूरसंचार, आकाशवाणी, चिकित्सा, शिक्षण, दूरदर्शन, रेल, विज्ञान, कृषि, बीमा क्षेत्र, खेल एवं प्रशासन भी केवल विधि क्षेत्र ऐसा बाकी बचा रह गया है, जहाँ सारी व्यवस्था एवं विकल्प तो हिंदी के लिए खुले हैं किंतु अपनी वैयक्तिक रुचि के कारण मामला अटका हुआ है ।

यदि संघ सरकार कोई ऐसा नियम पारित करे जिसमें न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के सभी कार्य जैसे निर्णय, कार्यविधियों एवं प्रयोग में लाइ जाने वाली भाषा हिंदी ही हो । और इस नियम का सख्त रूप से पालन हो और उसके उलंघन पर कोइ दंड़ का भी प्रावधान रखना चाहिए । ऐसी अवस्था में ही विधि में हिंदी का आरंभ सुचारु रूप से हो सकता है ।

## ४.१ विधि में राजभाषा हिंदी का प्रयोग

मानव जीवन की तरह विधि का क्षेत्र भी व्यापक है। कानून बनाने से लेकर वे समस्त कार्य इसके क्षेत्र में आ जाते हैं । विधि का अर्थ कानून सम्मत ऐसी कार्य प्रणाली से है जिसका अनुपालन चाहे वह नागरिक हो, चाहे सरकारी मुलाजिम या न्यायालय का कोई न्यायाधीश । सभी को समान रूप से विधि के नियमों के अनुसार कार्य करना होता है । मनुष्य जीवन के सुक्ष्म से सुक्ष्म विषय भी विधि में विचारणीय होते हैं ।

विधि साहित्य के अनेक अंग है, जिसमें ये प्रमुख है: संविधान, अधिनियम, नियम, विनियम, उपनियम, आदि । न्यायालयों के निर्णय, विधि की पुस्तकें दस्तावेज इन सभी क्षेत्रों के साहित्य का निर्माण होने पर ही विधि के क्षेत्र में अंग्रेजी का स्थान

हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी ले सकेगी ।

विधि का निर्माण संविधान के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार होता है । अत: संविधान अधिनियम, नियम, विनियम, स्थायी, आदेश, सेवा तथा सेवा से संबंधित मामले अनुबंद एवं करार आदि से संबंधित मामले, तमाम क़ागज-पत्र विधि साहित्य के अंतर्गत गिने जा सकते हैं ।

उक्त सभी कागज-पत्रों का संबंध विधि से प्रत्यक्षत: उतना नहीं जितना न्यायालय तथा न्यायालयों को चलाने वाले कानून तथा कानूनी प्रक्रिया से हैं । सामान्य कार्यालयों के अधिकांश कागजात गैर-सांविधिक किस्म के दस्तावेजों में गिने जाते हैं । परंतु जब इनके निर्वचन अथवा विवाद को लेकर न्यायालय में कोई वाद दायर कर दिया जाता है, तो ये विधिक सीमाओं में आ जाते हैं ।

राष्ट्रपति द्वारा २७ अप्रैल, १९६० को जारी किए गए आदेशों के अनुसरण में विधि मंत्रालय ने राजभाषा विधायी आयोग का गठन किया और आयोग को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये थें :

१. यथासंभव सभी राजभाषाओं में प्रयोग के लिए एक प्रामाणिक विधि शब्दावली तैयार करना और उसे प्रकाशित करना ।

२. सभी केंद्रीय अधिनियमों और राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों और विनियमों के हिंदी में प्राधिकृत पाठ तैयार करना ।

३. किसी केंद्रीय अधिनियमों या राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए सभी नियमों-विनियमों और आदेशों के प्राधिकृत पाठ तैयार करना ।

४. केंद्रीय अधिनियमों और राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यायित अध्यादेशों और विनियमों का राज्यों को अपनी राजभाषाओं में अनुवाद और किसी भी राज्य में पारित अधिनियमों और प्रख्यायित अध्यादेशों के पाठ हिंदी से भिन्न भाषा में है, तो उन्हें हिंदी में अनुवाद कराने का प्रबंध करना।

५. अन्य ऐसे कर्तव्यों का पालन करना जो समय समय पर भारत सरकार द्वारा सौंपे जाएँ ।

इसके पहले अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर प्रसाद सिन्हा और सचिव श्री बालकृष्ण थें। आयोग ने केंद्रीय अधिनियमों के हिंदी और अन्य भाषाओं में अनुवाद का जटिल और कठिन कार्य आरम्भ किया । यह कार्य बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया । उसने पारिभाषिक और विधि शब्दों के हिंदी पर्यायों का एक संकलन भी १९७० में प्रकाशित किया जिसका नाम 'विधि शब्दावली' था । आयोग ने अधिकांश बड़े-बड़े अधिनियमों का जैसे भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, भारतीय संविदा अधिनियम, सिविल प्रक्रिया संहिता आदि का हिंदी में अनुवाद तैयार किया और राजभाषा अधिनियम १९६५ की धारा ५ (१) के अधीन हिंदी में उनके प्राधिकृत पाठ का प्रकाशन किया। तदुपरांत १९७६ में सरकार ने इस कार्य को विभाग में ही कराने का निश्चय किया और इसे स्थायी आधार प्रदान किया । इसी दृष्टि से, आयोग समाप्त कर दिया गया और विधायी विभाग के भाग के रूप में राजभाषा खंड का सृजन किया गया । वे सभी कार्य, जो पहले आयोग को सौंपे गए । यह कार्यो अक्टूबर, १९७६ से किया गया ।

## ४.२ विधि साहित्य– संवैधानिक स्थिति

भारत के संविधान निर्माता भारत को एक संप्रभुता संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में देखना चाहते थें । वे चाहते थें कि राष्ट्र का समस्त कार्य जनता की अपनी भाषा अर्थात हिंदी में किया जाए । संविधान में यह व्यवस्था की गई कि प्रत्येक राज्य अपनी भाषा में कार्य करने के लिए निर्णय ले सकते हैं और संघ सरकार का कामकाज निश्चित योजना के अनुसार हिंदी में संपादित किया जाएगा ।

संविधान के अनुच्छेद ३४३ में कहा गया हैं कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी । अनुच्छेद ३४८(१) में यह व्यवस्था की गई हैं कि जब तक संसद कोई दूसरी व्यवस्था न करे तब तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की समस्त कार्यवाहियाँ अंग्रेजी भाषा में होगी तथा संघ और राज्यों के समस्त विधेयक, अधिनियम, अध्यादेश आदि के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे । आगे खंड (२) में यह भी उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से किसी राज्य का राज्यपाल हिंदी भाषा का या उस राज्य की राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकता है।

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, १९८७ की धारा ७ द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार किसी राज्य के राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व संमति से इस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा किए गए किसी निर्णय, डिक्री अथवा आर्टस के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी अथवा राज्य भी राजभाषा के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकता है

और जहाँ कहीं ऐसा किया जाएगा, वहां हिंदी आदि के पाठ के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाएगा । इस व्यवस्था के अधीन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार के राज्यपालों में हिंदी के प्रयोग के लिए राष्ट्रपति से अनुमति प्राप्त कर ली है ।

संविधान तथा राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत इस प्रकार विधान पालिका और न्यायपालिका के स्तर पर अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी अथवा राज्य की राजभाषा के प्रयोग का रास्ता खोल दिया गया है । परंतु हिंदी को एक विकल्प के रूप में रखा गया है । यदी कोई चाहे तो फैसला हिंदी में भी दिया जा सकता है परंतु उसका अंग्रेजी अनुवाद भी देना आवश्यक है । ऐसी स्थिति में, दो भाषाओं में फैसला कौन देना चाहेगा ।

यह संतोष की बात हैं कि सभी संघ शासित क्षेत्रों में कानूनी अधिनियमों का हिंदी अनुवाद हो चुका हैं । परंतु पूरे विधि साहित्य का अनुवाद तो कभी हो ही नहीं पाएगा । पुराने जितने फैसले हैं, जो अब नए फैसलों के लिए विधि बन चुके हैं तथा अधिकांश फैसले इन्हीं पुराने फैसलों को ध्यान में रखकर किए जाते हैं ।

ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता और अखंड़ता को बनाए रखने के लिए अंग्रेजी को एक लंबे समय तक उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की भाषा के रूप में बनाए रखने की आवश्यकता बनी रहेगी । क्योंकि जब तक सारे भारत वर्ष में संघ तथा राज्य स्तर पर विधि के क्षेत्र में हिंदी को स्वीकार कर लिया जाता हैं । तब यह स्थिति बनाए रखने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है ।

जहां तक विधि के क्षेत्र में अध्ययन अध्यापन का प्रश्न है, लगभग सभी हिंदी भाषी राज्यों में जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान में स्थित विश्वविद्यालयों ने हिंदी को अपनाया है । इन राज्यों में विधि का साहित्य भी तैयार है और अधिक तैयार हो रहा है । कुछ छुट-पुट फैसलें हिंदी में भी किए जाते हैं । परंतु विधि के क्षेत्र में हम अभी सक्रमण के दौर से ही गुजर रहे हैं ।

संविधान और राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत इस प्रकार विधान पालिका न्याय और न्याय पालिका के स्तर पर अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी अथवा राज्य की राजभाषा के अबाध प्रयोग का रास्ता खोल दिया है । परंतु जहां तक संघ की राजभाषा का संबंध है इस संदर्भ में राजभाषा संशोधन अधिनियम, १९६७ की धारा ३ के अनुसार (१) संघ के जिन सरकारी प्रयोजनों के लिए २६ जनवरी, १९६५ के बाद भी हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा । धारा ३ के इस मुख्य प्रावधान के साथ एक बड़ी सशक्त परिसीमा यह लगाई गई कि संघ द्वारा संपादित होने वाले इन कार्यों के साथ अंग्रेजी का प्रयोग तब तक होता रहेगा तब तक व्यवस्था को समाप्त करने के लिए हिंदी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले राज्यों के विधान-मंड़लों द्वारा संकल्प पारित न कर दिए जाए और उसके बाद संसद का प्रत्येक सदन भी ऐसा ही संकल्प पारित न कर दिए जाए । राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, १९६७ इस प्रकार हिंदी को जहां संघ की राजभाषा का दर्जा प्रदान करता है, वहीं वह इसे अहिंदी भाषी विधान मंड़लों की दया का पात्र भी बना देता हैं ।

भारत की राष्ट्रीय एकता और अखंड़ता को बनाए रखने के लिए भी अंग्रेजी को

अभी उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा के रूप में बना रहना है। यह तब तक हो सकता है, जब तक अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी प्रतिष्ठित नहीं कर दी जाती। इसलिए यह आवश्यक है कि चाहे भले ही राज्य विधान पालिकाएँ विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लें विधि की भाषा सारे देश में एक रहनी चाहिए और इस रूप में हिंदी को ही प्रतिस्थापित करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से कार्य किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं के प्रतिनिधियों को बैठकर यह निश्चित करना चाहिए कि केंद्रीय स्तर पर अंग्रेजी का स्थान हिंदी किस गति से ले। क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों और पदावलियों को भी भविष्य में हिंदी में अपनाना चाहिए।

हिंदी के मानक और गौरव ग्रन्थों के प्रकाशन मे विधि साहित्य प्रकाशन, विधि न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय तथा कुछ गैर सरकारी प्रकाशन भी प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। भारत सरकार का विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय 'उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका' और 'उच्च न्यायालय निर्णय पालिका' का नियमित प्रकाशन कर विधि के क्षेत्र में एक बड़ी कमी को पूरा कर रहा है। कुछ विद्वान, प्रोफेसर, न्यायाधीश और अधिवक्ता भी पुस्तकों के लेखन कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

राजभाषा विधायी खंड ने राजभाषा हिंदी को विधायी क्षेत्र में बढ़ाने के लिए अनेक प्रशंसनीय एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। महत्त्वपूर्ण बड़े-बड़े नियमों का हिंदी में प्राधिकृत पाठ भी राजभाषा विधायी खंड ने तैयार किया है व केंद्रीय अधिनियमों का द्विभाषी संस्करण भी तैयार किया गया है। राजभाषा खंड ने अंतर्राष्ट्रीय विधि विलेखमाला के अंतर्गत दो दस्तावेजों को प्रकाशित किया है। जो निम्न है:

१. संयुक्त राष्ट्र का चार्टर

२. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा

राजभाषा खंड, भारत सरकारने सभी विभागों के लिए ऐसी संविदाओं, करारों, निविदाओं आदि के मानक प्रारूप तैयार करता हैं। ३१ दिसंबर, १९८८ तक राजभाषा खंड में कुल ५८४२९ पृष्ठ अनुदित किए गए। दोनों भाषाओं में विधिक दस्तावेजों के निष्पादन में भारत सरकार के विभिन्न विभागों की सहायता के लिए राजभाषा खंड ने ऐसे दस्तावेजों के पांच संकलन द्विभाषी रूप से निकाले हैं और छठा तथा सातवां संकलन मुद्रणाधीन है।

राजभाषा खंड, केंद्रीय अधिनियमों के प्रादेशिक भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित करता है। १९८५ से राजभाषा खंड ने ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं को जो विधि में पुस्तकों या पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है, वित्तीय सहायता भी प्रदान करना आरंभ किया है।

हिंदी सलाहकार समिति की सिफारिश पर १९६८ में विधि मंत्रालय में एक पत्रिका का सूत्रपात भी किया गया जिसका उद्देश्य विधि के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि करना था। तत् पश्चात इस का नाम विधि साहित्य प्रकाशन रखा गया। १९६८ में उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों का मासिक प्रकार आरंभ किया। जनवरी, १९८७ के उच्च न्यायालयों के सिविल तथा दांड़िक निर्णयों की अलग-अलग पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं। उच्चतम न्यायालयों के सभी प्रकाशन योग्य निर्णयों का अनुवाद किया जाता है। यह प्रयास किया जा रहा हैं कि निर्णय उनके सुनाए जाने

के तीन साल की अवधि के भीतर अनुदित और प्रकाशित किए जाएँ । यथासंभव पत्रिकाओं में अधिक से अधिक ताजा तथा महत्त्वपूर्ण निर्णयों को संमिलित किया जाए। इससे पत्रिकाएँ इन व्यक्तियों के लिए उपयोगी होंगी जो न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग करते हैं ।

विधि साहित्य प्रकाशन ने एक त्रैमासिक पत्रिका विधि साहित्य समाचार का प्रकाशन भी आरंभ किया हैं । इसमें विधि के क्षेत्र के विभिन्न क्रिया कलापों और प्रकाशनों की विस्तृत जानकारी दी जाती है । इसके अतिरिक्त, विधि पुस्तकों का प्रकाशन और निर्णय सार आदि महत्त्वपूर्ण कार्य एवं हिंदी में लिखि विधि की पुस्तकों पर पुरस्कार आदि की योजनाएँ राजभाषा खंड के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं । राजभाषा विधायी खंड के प्रयासों से ही विधि के क्षेत्र में हिंदी का कार्य और आगे बढ़ेगा वह समय दूर नहीं होगा जब संपूर्ण विधि कार्य राजभाषा हिंदी में होगा । उच्चतम न्यायालय के निर्णय एवं उच्च न्यायालयों के निर्णय राजभाषा हिंदी में ही होंगे और इस देश की जनता फैसले अपनी भाषा में ही सुनेगी ।

## ४.३ विधि की विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली

यह यहाँ विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं कि धारा ३४३ के तहत हिंदी को राजभाषा के पद पर जनवरी, १९८४ आसीन किया गया है । हिंदी को राजभाषा बने ६० से अधिक वर्ष हो चुके हैं । हमारा दायित्व हैं कि ‘विधि एवं अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों में हिंदी प्रयोग का अध्ययन एवं संशोधन करे कि हिंदी का प्रयोग इन क्षेत्रों में इस समय कितना हो रहा हैं और आगे यह प्रयोग किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ।

विधि के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हिंदी में अधिक से अधिक कानूनी साहित्य प्रकाशित करके प्राप्य एवं उपलब्ध कराया जाए। केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद् के द्वारा प्रकाशित 'दंड प्रक्रिया संहिता' एवं विधिक विधिक साहित्य इस दिशा में एक प्रशंसनीय कदम है। 'दंड प्रक्रिया संहिता' और 'भारतीय दंड संहिता' भारतीय दंड विधान की रीढ़ की हड्डी है। इन के हिंदी में उपलब्ध हो जाने से विधि के क्षेत्र में हिंदी के प्रचलन को वेग प्राप्त हुआ है। अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों में हिंदी माध्यम के प्रयोग हेतु भी यथेष्ट साहित्य प्राप्त कराया जा रहा है।

संविधान की धारा ३४८ (२) में अन्य बातों के साथ-साथ यह विहित हैं कि जबतक संसद द्वारा अन्य उपबंध की व्यवस्था न हो जाए, तब तक उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय की सभी कार्यवाहियाँ तथा केंद्र और राज्यों के सभी अधिनियमों, विधेयकों, अध्यादेशों और संविधान के अधीन अथवा किसी राज्य अथवा केंद्रीय विधि के अधीन जारी किए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों या उपविधियों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे। तथापी, इस अनुच्छेद के खंड दो (२) में यह निर्दिष्ट किया गया हैं कि राष्ट्रपति की पूर्व संमति से किसी राज्य का राज्यपाल हिंदी अथवा राज्य के किसी सरकारी कामकाज के लिए प्रयुक्त की जाने वाली किसी अन्य भाषा के प्रयोग को ऐसे उच्च न्यायालय की कार्यवाही के लिए प्राधिकृत कर सकता है जिसका मुख्यालय उस राज्य में हो, परंतु निर्णयों, डिक्रियों और आदेशों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाएगा। इस अनुच्छेद के खंड तीन (३) के अधीन किसी भी राज्य का विधान-मंडल विधेयकों अथवा अधिनियमों आदि के प्रयोग के लिए अंग्रेजी

भाषा से किसी अन्य भाषा का प्रयोग विहित कर सकता है इस शर्त पर कि सरकारी राजपत्र में उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया जाए जिसे उसका अंग्रेजी भाषा का प्राधिकृत पाठ माना जाएगा ।

साथ ही यह भी प्रावधान है कि किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री, या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहाँ कोई निर्णय, डिक्री या आदेश ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहाँ उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ (३) के अनुसार करारों, संविदाओं और टेंडरों के फोर्मों आदि के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग करना अनिवार्य है । किंतु शत-प्रतिशत ऐसा हो नहीं रहा है क्योंकि संविदाओं, टेंडरों आदि के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले फार्म सर्वत्र उपलब्ध नहीं है ।

हिंदी माध्यम के प्रयोग की सांविधिक स्थिति एवं विधिक क्षेत्रों में विद्यमान वस्तु स्थिति का विमर्श प्रस्तुत करने के बाद 'विधि की पारिभाषिक शब्दावली एवं शब्द प्रयोग' के विषय में दृष्टिपात करें ।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक इंसान जीवन में कुछ सीखे या न सीखे, एक भाषा जरूर सीख लेता है जिसे आमतौर पर मातृभाषा और वैज्ञानिक शब्दावली में प्रथम भाषा भी कहते हैं । धीरे-धीरे व्यक्ति का सामाजिक संचार बढ़ता जाता हैं उसी प्रकार उसका भाषा सीखने का ज्ञान भी सहज में बढ़ता जाता है । प्राथमिक भाषा का

ज्ञान सरल होता है । जिसमें भाषा भी बोलचाल की होती है । किंतु स्कूल में भी वही भाषा सीखाई गई, या उसे पुरे अध्ययन का माध्यम बनाया गया, व्यक्ति उसी भाषा के एक दूसरे रूप और पहलू को सिखता है । जिसे हम मानक भाषा या स्टांडर्ड लैंग्वेज कहते हैं ।

मानक भाषा और बोलचाल की भाषा में निश्चय ही फर्क होता है । मानक भाषा और बोलचाल की भाषा की व्याकरणिक संरचना बहुत कुछ एक होने के बावजूद भी, अंतर का स्वरूप दो स्तरों पर स्पष्ट दिखाई देता है:

**पहला:** मानक भाषा मुख्य रूप से लेखन के साथ जुड़ी होती है । उसकी व्यवस्था हमें बहुत कम विकल्पों की सुविधा देती है । तथा अधिक औपचारिक एवं व्यवस्थाप्रिय होती हैं ।

**दूसरा:** शब्दावली के विशिष्ट प्रयोग में मानक भाषा का स्वरूप अधिक उभरकर आता हैं । इसमें हम प्रयत्न करते हैं कि अपनी स्थानीयता और अर्थ शिथिलता से आगे पूरे भाषिक समुदाय के लिए एक सा अर्थ रखने वाले और अधिक निश्चित अर्थ रखने वाले शब्दों का ही प्रयोग हो । इस लिए मानक भाषा में स्थानीय शब्दावली के चुनाव में सतर्कता का रवैया दिखाई देता है ।

इस संदर्भ में कोंट्रेक्ट (Contract) और एग्रीमेंट (Agreement) को ही देखें। सामान्य संदर्भ में दोनों को हिंदी में करार कहते हैं किंतु विधिक शब्दावली में दोनों के लिए अलग-अलग विशिष्ट शब्द प्रयोग की आवश्यकता है क्योंकि भारतीय करार अधिनियम में स्पष्ट उल्लेख है कि सभी 'कन्ट्रेक्ट', 'एग्रीमेंट' हैं किंतु सभी 'एग्रीमेंट' 'कन्ट्रेक्ट' नहीं हैं । सभी 'एग्रीमेंट' जिसका न्याय द्वारा अनुपालन कराया जा सके

'कन्ट्रेक्ट हैं मतलब यह हुआ कि जिन एग्रीमेंटों का न्याय द्वारा अनुपालन नहीं करवाया जा सकता वे कन्ट्रेक्ट नहीं है- केवल एग्रीमेंट ही है । यहाँ दोनों का भेद स्पष्ट करने के लिए दोनों के लिए अलग-अलग विशिष्ट शब्द प्रयोग करना आवश्यक है । अतएव 'कन्ट्रेक्ट' के लिए 'करार' तथा 'एग्रीमेंट' के लिए 'संविदा' का प्रयोग उचित प्रतीत होता है । इसी प्रकार 'ओर्डर' और 'इन्स्ट्रक्शन' के लिए 'आदेश' और 'अनुदेश' 'एक्सेप्टन्स' और 'सेक्शन' के लिए 'स्वीकृति' और 'संस्वीकृति', 'सेन्डींग' और 'रेमिटेन्स' के लिए 'प्रेषण' और 'संप्रेषण' आदि ।

एक प्रसंग उल्लेखनीय है । एक राजभाषा अधिकारी को गृह मंत्रालय, दिल्ली से तार हिंदी में आया जिसमें 'वैवश्यक' शब्द का भी प्रयोग किया गया था । यद्यपि विधि शब्दावली में इसका अर्थ था किंतु उस अधिकारी ने उसमें से ढूंढ़ने के बजाय भाषा विद्वानों से उसका अर्थ जानने का प्रयत्न किया किंतु असफल रहा । हालाँकि तार द्वारा प्राप्त अनुदेशों का  त्वरित एवं शिघ्रातीशिघ्र अनुपालन करना था, उन्होंने सब जगह से निराश होकर एक उच्च कक्षा में हिंदी पढाने वाली एक अध्यापिका के सामने अपनी समस्या रखी तो सहज में ही उस अध्यापिका से उत्तर प्राप्त हो गया। उन्होंने कहा 'वैवश्यक' का संधि विच्छेद करे तो निष्कर्ष होगा 'वि' + 'आवश्यक' और 'वि' को विशेष का संक्षिप्तीकृत रूप मान लिया जाए तो परिणामत: वैवश्यक का अर्थ होगा विशेष आवश्यक । और सही में उस अध्यापिका का अर्थ विधि शब्दावली से निकट का था ।

उपर्युक्त प्रसंगों से स्पष्ट है कि हमें अपनी पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ स्पष्ट करना होगा या भाषा में प्रचलित समानार्थी शब्द या बहुत सरल शब्द प्रयोग में लाने

होंगे । अन्यथा संस्कृत से लिए पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से सिद्धांत की रक्षा हो जाएगी मगर उद्देश्य बलि चढ़ जाएगा । साथ ही अंग्रेजी शब्दों से मिली-जुली हिंदी अधिक सार्थक हो जाती हैं मगर विशिष्ट भाषिक स्वरूप की जिद न करने वाले मध्यमवर्गीय आदमी के स्तर पर ही वह खरी उतरती है, अन्यथा नहीं ।

हिंदी भाषी प्रदेशों की सरकारे और उनसे जुड़ी संस्थायें और गैर सरकारी एजन्सियाँ अब अपना बहुत-सा विधि क्षेत्रीय काम हिंदी में करने लगी हैं । यहाँ तक कि हाल ही में लखनऊ में उच्च न्यायालय में हिंदी भाषी न्यायाधीश की अनुपलब्धि के कारण को छोडकर जिल्ला स्तरीय अदालते भी अपना बहुत कुछ काम हिंदी में करने लगी हैं । ऐसा उन हिंदी तर भाषी प्रदेशों में भी संभव हैं जिनमें हिंदी को सह-राजभाषा के रूप में अपनाया गया है या जहाँ की प्रचलित भाषा हिंदी से मिलती-जुलती या उसके अती निकट है किंतु पारिभाषिक शब्दावली एवं विशिष्ट शब्द की समानता, वांछित अर्थध्वनि, भाषा के विशिष्ट मुहावरे और परिशुद्धता का सवाल उठता है । ये सवाल बहुत जायज है । इनका सही उत्तर दिए बिना विधि के क्षेत्र में हिंदी माध्यम के बे रोकटोक प्रयोग करने की उम्मीद करना ज्यादती होगी । इस प्रकार पहला सवाल ऐसी शब्दावली और एसी भाषा का है जो विधि से संबंधित किसी भी विषय को वांछित अर्थध्वनि शब्दावली की समरूपता और परिशुद्धता में व्यक्त कर सके ।

अंग्रेजी में भाषा का स्वरूप तो पहले से ही सुनिश्चित एवं मानक है अत: उसमें भाषा को सरल एवं सुबोध बनाने का सवाल नहीं उठता । किंतु हिंदी में यह उतना ही महत्त्वपूर्ण है । इसलिए इस तर्क में कोई तथ्य नहीं कि जब अंग्रेजी में कठिन शब्द

प्रयोग चल सकता है तो हिंदी में क्युं नहीं चल सकता। हमें भाषाओं के बीच होड नहीं करनी है, वरन अपनी भाषा में ही उन क्षमताओं को खोजना हैं और उनका सही इस्तेमाल करना हैं जो उसमें पहले से ही मौजूद है।

विधि क्षेत्र से जुड़े अधिकांश लोग द्विभाषी हैं यानी वे हिंदी बोल सकते हैं और स्कूल-कॉलेज में पढ़ाई के दरम्यान अंग्रेजी सीख लेते हैं। हमें भाषा के वांछित स्वरूप को गढ़ते समय इस मुद्देका भी ख्याल रखना होगा।

एक भाषा से दूसरी भाषा की ओर संक्रमण की कठिनाइयाँ तो है ही। साथ ही एक ही तरह के कामकाज में दो भाषाओं की स्थिति का बना रहना भाषिक दृष्टि से अनेक जटिलताएँ पैदा करता है। इसलिए विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम के प्रयोग के लिए वांछित स्वरूप एवं विधि की पारिभाषिक शब्दावली और विशिष्ट शब्द विकसित करते समय हिंदी और अंग्रेजी की भाषिक प्रकृति के अंतर को भली-भाँति समझना होगा। और अंग्रेजी की अभिव्यक्ति से बचना होगा।

इस प्रकार विधि की पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रयोजनार्थ विशिष्ट शब्द की भाषा का अपना महावरा विकसित करने में हमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा:

- शब्दावली का स्वरूप
- भाषा की सुबोधता
- अर्थध्वनि की परिशुद्धता
- संक्षिप्तता
- शैली का सौंदर्य

उपर्युक्त पाँचों बातों का ऐसा संयोग हमारी भाषा में होना आवश्यक हैं जिससे कि भाषा किसी प्रकार की कृत्रिमता से ग्रस्त न हो । कृत्रिमता से बचने के लिए हिंदी की संरचनात्मक प्रकृति को समझना आवश्यक है । साथ ही उसका अंग्रेजी की व्याकरणिक पद्धति से अंतर भी समझना जरूरी है । बहुत संक्षेप में, सबसे बड़ा अंतर दोनों भाषाओं की प्रकृति में यह है कि अंग्रेजी 'शब्दक्रम-प्रधान' भाषा हैं और हिंदी 'विभक्त-प्रधान' भाषा है ।

जहाँ तक शब्दावली का प्रश्न है, आधुनिक भाषा विज्ञानी इसे भाषा की व्यवस्था का गौण अंग मानते हैं । इसके मुख्य कारण निम्नानुसार हैं :-

१. नए शब्द आते हैं, पुराने अनेक शब्द समाप्त होते जाते हैं ।

२. शब्द का सीधा संबंध अर्थ से होता हैं और तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टि से उसका विश्लेषण करना कठिन होता हैं ।

३. भाषा विज्ञानी बोलचाल की भाषा को प्राथमिक मानता है ।

४. महत्त्वपूर्ण बात तो यह हैं कि भाषा एक व्यवस्था है ।

५. शब्दावली हमें अनेक विकल्प देती हैं किंतु व्यवस्था विकल्प नहीं देती क्योंकि यदि हम व्यवस्था से आजादी मांगने लगेंगे तो अर्थ बदल जाएगा या हमारा कथन अर्थहीन हो जाएगा और संप्रेषणीयता को लेकर नई समस्याएँ खड़ी हो जाएँगी ।

६. भाषा के ये व्यवस्थात्मक उपकरण सीमित होते हैं । किसी भी भाषा में असंख्य सर्वनाम या प्रत्यय नहीं होते, होते हैं तो केवल शब्द । इस दृष्टि से न कोई भाषा अधिक सम्पन्न होती हैं और न कोई कम ।

इसलिए यह कहना कि हिंदी भाषा में अर्थ व्यक्त करने की वह क्षमता नहीं है जो अंग्रेजी में है, भाषा की क्षमता को निहायत अवैज्ञानिक ढंग से आंकता हैं। अत: यह भ्रम मन से निकाल देना चाहिए।

शब्दावली भाषा का सबसे अस्थिर अंग है। नई संकल्पनाओं के साथ नए शब्द आते हैं, चाहे हम उन्हें गढ़ लें- या दूसरी भाषा से उधार ले लें।

७. विधि क्षेत्र में हिंदी माध्यम के प्रयोग हेतु शब्दावली का चयन करते समय हमें तरह-तरह के विकल्पों की सुविधा नहीं हैं अपितु इस बात की सावधानी अवश्य रखनी होगी कि कहीं हमारी भाषा इस प्रयास की अतिवादिता में बनावटी न हो जाए। पद्यपि वर्तमान में प्रयुक्त अनेक विशिष्ट विधिक शब्द यथार्थ के धरातल पर बनावटी से ही लगते हैं।

८. विदेशी शब्दों को जहाँ आत्मसात करना हितकर हो जरूर कर लेना चाहिए लेकिन ऐसा करते समय निम्न लिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए:-

- वह शब्द जनसाधारण की भाषा में घुलमिल गया हो।
- उस शब्द के बदले दूसरा शब्द कठिनाई से आत्मसात होता हो।
- उस शब्द की निरंतरता अधिक हो।

अंततोगत्वा हमारा उद्देश्य होना चाहिए अपना और दूसरों का भाषिक भार जितना कम किया जा सके, करना।

इस कोटी में आने वाले शब्द उल्लेखनीय हैं :-

| | | |
|---|---|---|
| टिकट | ड्राफ्ट | प्रीमीयम |
| डाक | गारंटी | डिक्री (डिगरी) |
| कार्ड | अपील | रिपोर्ट |
| बोर्ड | चार्टर | डॉक्टर |

९. दूसरी भाषाओं से शब्द लेना केवल हिंदी की ही विशेषता नहीं हैं, प्राय: सभी भाषाओं की विशेषता है। स्वयं अंग्रेजी में फ्रेंच, जर्मन, ग्रीस आदि के शब्दों की संख्या अधिक है। इतना हीं नहीं हिंदी के 'लूट', 'बन्दोबस्त', 'घी', 'शिकारी' जैसे शब्दों को अंग्रेजी ने अपनाया है। अंग्रेजी में आत्मसात हुए विभिन्न अन्य भाषाओं के निम्नलिखित विधि क्षेत्रीय विशिष्ट शब्द और हिंदी अर्थ उल्लेखनीय है:

At Initio - प्रारंभ से

Ad-hoc - तदर्थ

Ad-interim - अंतरिम

Ante - पहले

Bonafide - सदाशयी, वास्वविक

Bonafides - सदाशयता

De-Facto - वस्तुत:

De-Jure - विधित:

De-novo - नए सिरे से

En-masse - सामूहिक रूप से

En-route - रास्ते में

Status-quo - यथा पूर्व स्थिति

Vis-a-vis - आमने-सामने

Lex-Talionis - भीषण दण्ड

Mala-in-se - गंभीर गुनाह

Mala-in-prohibita - कम गंभीर गुनाह

Alibi - अनुपस्थिति

Arson - आगजनी

Ignorantia Juris - विधिक अज्ञान

Actionable Claim - वादयोग्य दावा

Transfer inter- vivos - दो व्यक्तियों के बीच हस्तांतरण

Attestation - सत्यापन

Droite Administattff - प्रशासनिक कानून

Audi Alteram partem - दूसरे पक्षकार को सुनिए

Nemodat que non habet

सत्ताविहीन हस्तांतरण शक्य नहीं

Ex-gratia - अनुग्रह पूर्वक

Ex-Officio - पदेन

Ex-Parte - एक पक्षीय

Ex Post Facto - कार्योत्तर

Inter-alia - अन्य बातों के साथ-साथ

Inter-Se - आपसी

Ipso-Facto - स्वत:

Modus operandi - कार्य-प्रणाली

Modus Vivendi - अस्थायी व्यवस्था

Mutatis-Mutandis - यथोचित परिवर्तनों सहित

Primatacie - प्रथम दृष्टि में

Sine-die - अनिश्चित काल के लिए

Eschet - संपत्ति विहीनता का सिद्धांत

Malatide - दुराशयी

Obitur dicta - अप्रस्तुत कथन

Ratio Decidendi - निर्णयाधार

Ubijas-Remedium - जहाँ हक वहाँ उपचार

Trespass Ab Initio - आरंभ से अनधिकृत प्रवेश

Inmendo - आभासित मानहानि

Consensus Ad idem - सम संमति

Caveat-Emploe - ग्राहक सावधान

Uberrimac Fidie - विश्वास जन्य

१०. दूसरा वर्ग उन शब्दों का हैं जिनमें हम विदेशी शब्दों को उसी रूप में ग्रहण नहीं करते । उनके स्थान पर अपनी भाषा के शब्द रखते हैं । जब विदेशी संकल्पना का समानार्थी शब्द अपनी भाषा में नहीं मिलता तब हम नए शब्द की रचना करते हैं। सामान्य रूप से ऐसी शब्द रचना भावानुवाद में होती हैं या अपनी सांस्कृतिक परंपरा में उसकी निकटस्थ अभिव्यक्तियाँ ढूँढ़ने का प्रयत्न रहता हैं । जैसे:

डाउनवर्ड ट्रेंड- अधोमुखी प्रवृत्ति

डिस्ट्रेस इन्वेंटरी- दुष्क्रिय माल

११. माध्यम के रूप में प्रयुक्त शब्दों की चर्चा के संदर्भ में यह जान लेना भी आवश्यक है कि सामान्य शब्द और पारिभाषिक शब्द में अंतर है और यह भी कि किसी शब्द को हम जब पारिभाषिक शब्द का दरज्ञा देते हैं तब उससे उम्मीद करते हैं:

- कि वह विशिष्ट संदर्भ में वांछित अर्थ ही देगा
- वह अर्थ परिभाषित होगा- कानून द्वारा, नियमों द्वारा या शास्त्र की सीमाओं द्वारा निर्धारित होगा । जैसे: क्षति-पूर्ति बाँड (Bond)
- इन शब्दों का प्रयोग करने वालों को लेकर एक प्रकार का समझौता होगा, सभी जगह प्रयोगकर्ता विशिष्ट अर्थ-संदर्भ के लिए उस शब्द का ही प्रयोग करेंगे, यदि राजकोट में 'हाइपोथीकेशन' के लिए 'आडमान' का प्रयोग होगा तो मुंबई, लखनउ, या अन्य कहीं भी वही शब्द आएगा;

- एक बार शब्दावली को स्वीकार कर लिया तो तर्क-वितर्क करने की ज्यादा गुंजाइश नहीं रह जाती- व्यक्तिगत रुचियों और पूर्वाग्रहों को समर्पित करना होता है- एक बार शब्दावली तय हो जाने के बाद व्यक्तिगत रुचियाँ या समानांतर शब्दावलियाँ, शब्दावली के उद्देश्य को ही बहुत कुछ पराजित कर देती हैं-
- एक बार किसी अन्य शब्दावली के प्रति प्रतिबद्ध हो जाने के बाद हम एक प्रकार के अनुशासन में बंध जाते है;

१२. पारिभाषिक शब्दावली की विशेषता की चर्चा करने के बाद उन स्त्रोतों की चर्चा भी करें जहाँ से हम विदेशी शब्दों के समानार्थी शब्द रचने के लिए भाषिक सामग्री हाँसिल करते हैं। ये स्त्रोत निम्नलिखित हो सकते हैं:

- बोलचाल की भाषा में प्रचलित शब्द
- संस्कृत शब्दों के तद्भव रूप
- संस्कृत शब्दों के तत्सम् रूप
- अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द

यदि इन स्त्रोतों की अलग संक्षेप में चर्चा करे तो...

**(क) बोलचाल की भाषा में प्रचलित शब्दों को अपनाने से संवाद की प्रक्रिया व्यापक धरातल पर हो सकेगी । उदाहरण के लिए इन रूपों की तुलना करें:**

| | **अंग्रेजी** | **प्रचलित** | **संस्कृत** |
|---|---|---|---|
| (१) | क्रेडिटर | लेनदार | उत्तमर्ण |
| (२) | ओक्शन | नीलाम | क्रय-विक्रय |
| (३) | इंडेमनिटी | क्षति-पूर्ति | खंड क्षमण |
| (४) | मार्केट | बाजार | विपणि |
| (५) | बैंकरप्सी | दिवालियापन | नष्ट निधित्व |

**(ख) संस्कृत शब्दों के तद्भव रूप:**

आज के नए हिंदी शब्द संस्कृत के मूल शब्दों के ही विकसित रूप है । भारत शासन द्वारा जो शब्दावलियाँ बनाई गई हैं, उनमें यही दृष्टि काम करती दिखाई देती है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हम सभी शब्दों के लिए संस्कृत से ही यथार्थ खोजें-

| | |
|---|---|
| कृषाण-किसान | अन्नादय-अनाज |
| दस्युकर्म-डकैती | भडांगार-भंड़ार |
| उद्ग्रहण-उगाही | भाटक-भाड़ा |

(ग) तत्सम शब्द भी पारिभाषिक शब्द के रूप में उतने ही ग्राह्य और प्रभावी होते हैं । हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली मुख्यत: संस्कृत की शब्दावली पर आधारित हैं क्योंकि

१. भारत की सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त कर सकने में सक्षम शब्दावली का विकास करना हैं;

२. संस्कृत के प्राचीन साहित्य में अनेक विषयों पर विपुल साहित्य है- नई संकल्पनाओं के लिए शब्द मिल जाते हैं ।

३. संस्कृत प्रत्यय प्रधान भाषा होने के कारण एक ही शब्द के अनेक रूप उत्पन्न करने में सुविधा होती है- जहाँ प्रचलित भाषा में शब्द नहीं मिलते, वहाँ भी संस्कृत के स्त्रोत पर ही निर्भर रहना पड़ा हैं जैसे

एपोर्शनेबल-प्रभाज्य

बाइलेटरल-द्विपक्षीय

एसाइनी-समानुदेशिती

फाइनेन्शियल-वित्तीय

(च) अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द पारिभाषिक शब्दावली के स्त्रोतों में से एक है । हिंदी में मुख्यत: अरबी और फारसी से शब्द आए हैं । ये शब्द हिंदी में इतने घुल-मिल गए हैं कि उन्हें दूसरी भाषा का शब्द समझना भी अनुचित है । इन्हें अपनी शब्दावली में आत्मसात किया जा सकता है । विधि क्षेत्र में प्रयोग किए जाने वाले इस वर्ग के कुछ शब्द इस प्रकार हैं ।

Compensation - मुआवजा

Suit-File - मुकदमा दायर करना

Criminal - फौजदारी

Civil - दीवानी

Court - अदालत

Forgery - जालसाजी

Risk - जोखिम

Judgement - फैसला

reference - हवाला

Minor - नाबालिग

document - दस्तावेज

Contract - करार

Power of attorney - मुख्तारनामा

tenant - काश्तकार

Instalment - किश्त

interest - सूद/ब्याज

receipt - रसीद

अदालती कामकाज में प्रयोग किए जाने वाले ऐसे शब्दों की तो भरमार हैं ।

इस प्रकार, विधि के क्षेत्र में हिंदी माध्यम के प्रयोग हेतु विधि की पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट शब्द के इस मुद्दे में चर्चित सभी स्त्रोत हमारे लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं । जहाँ-जहाँ से हमें संप्रेषणीय, सहज और भाषा की प्रकृति की अनुरूपता में शब्द मिलते हो तो लेने चाहिए । लेकिन एक बार शब्द

ले लेने के बाद और उसे अपनी शब्दावली का हिस्सा बना लेने के बाद प्रयोग के अनुशासन में अपने को पूरी तरह बांध लेना चाहिए ।

## ४.४ विधि अनुवाद

भारत में और विशेष कर हिंदी भाषी क्षेत्रों में सदैव ही यह होता आया है कि शासकों ने अपनी भाषा का राजकाज में प्रयोग किया । अंग्रेजी शासन के साथ भारत में विधि की ब्रिटीश पद्धति अपनाई गई और इसी के साथ ही विधि क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा प्रचलित हुई । अंग्रेजी विधि की भूमिका, धारणाएँ और मान्यताएँ इस देश के लिए सर्वथा नवीन और अपरिचित थीं । विधि के क्षेत्र में अनेक विचार, कल्पनाएँ और पद्धतियाँ ऐसी थीं जिनके लिए हमारी भाषा में कोई शब्द नहीं थें । जब विचार ही न हो तो शब्द कहाँ से होंगे । इस देश में प्राय: एक सो पचास वर्षों से विधान बनाने का कार्य अंग्रेजी में होता आया है। एक लंबे अरसे तक अंग्रेजी के प्रयोग के बावजूद इस देश में कुछ गिने-चूने लोग ऐसे हैं जो अंग्रेजी समझ सकते हैं और उनमें भी कुछ थोड़े ऐसे हैं जो अंग्रेजी में बनाए गए कानूनों को पढ़कर उनका अर्थ समझ सकते हैं। अंग्रेजों के शासन काल में भी जनता की कठिनाइयों को समझते हुए यह निर्णय किया गया था कि अंग्रेजी में लिखित कानूनों का अनुवाद जब तक भारतीय भाषाओं में न करा दिया जाए, तब तक उन्हें लागू न कराया जाए । उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेजी शासन ने यह स्वीकार किया कि उर्दू उत्तर भारत की मुख्य भाषा हैं और कानूनों का उर्दू में अनुवाद आरंभ हुआ । उर्दू में अंग्रेजी विधि के विचार और कल्पनाओं के लिए नए शब्द गढ़े गए । कुछ अरबी या फारसी के शब्दों को ऐसा नया

और बनावटी अर्थ दिया गया जो उन देशों में भी प्रचलित नहीं है, जहाँ की वे मातृभाषाएँ हैं। यह भाषा उत्तर भारत के न्यायालयों में चलाई गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत की वास्तविक जन-भाषा हिंदी का विधिक क्षेत्र में प्रयोग बिलकुल नहीं किया गया, संविधान के निर्माण के पश्चात् ही हिंदी के इतिहास में पहली बार हिंदी को विधि क्षेत्र में पदार्पण करने का अवसर मिला है।

कल्याणकारी राज्य की घोषणा और राज्य के जन-कल्याण के क्षेत्र में उतरने के परिणाम स्वरूप विधि का मनुष्य के जीवन को विनियमित करने में अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक जितने भी विभिन्न कार्यक्षेत्र आते हैं उन सब में विधि का हस्तक्षेप होता है। बाजार में बिकनेवाले खाद्य पदार्थों का क्या मूल्य होगा, यह भी विधि द्वारा तय होता है। कितनी संपत्ति कौन व्यक्ति रख सकता है और आप का कितना भाग उसे राज्य को देना होगा यह सब विधि द्वारा तय होता है। यदि कोई व्यक्ति विवाह के बंधन में बंधना चाहता है तो उसकी प्रक्रिया क्या होगी और परिणाम क्या होंगे, यह सब विधि द्वारा निश्चित होता है। विधि के निर्वाचन का कार्य न्यायालयों का है। न्यायालय विधि की रचना नहीं करते, केवल विधि का अर्थ लगाते हैं। सर्वाधिक मान्य सिद्धांत यह हैं कि भाषा का जो स्पष्ट व्याकरण-संमत अर्थ है उसे ही ग्रहण किया जाए। न्यायालय और विधि व्यवसायिकों को भाषा के दो या अधिक अर्थ करने की गुंजाइश न रहे इस लिए प्रारूपकार का यह प्रयास रहता है कि अर्थ संशय रहित एवं सुस्पष्ट हो। जो उद्दिष्ट है उससे न तो अधिक अर्थ किया जाए और न कम, अर्थात् अर्थ की न तो अति

व्याप्ति हो और न अल्प व्याप्ति । यदि विधि की भाषा का अर्थ स्पष्ट हैं तो वही अर्थ अच्छा अर्थ समझा जाएगा । भले ही उसमें औचित्य हो या न हो, इसलिए यह देखने में आता है कि विधि की भाषा ऐसी होती है जो सामान्यतया बोलचाल की भाषा से या साहित्य की भाषा से दूर होती हैं इस कारण विधि क्षेत्र में भाषा का महत्त्व सर्वोपरि है ।

विधिक भाषा की विशिष्टताएँ, उसके लक्ष्य के अनुरूप ही होती हैं । साहित्य और विधि की भाषा में कोई समानता नहीं है । प्रारूपकार का उद्देश्य होता है कि उसके प्रारूप का एक ही अर्थ निकले और उसका उद्देश्य के अनुसार एक-सा अनुपालन किया जाए । प्रारूपकार का ध्यान परिणाम पर केंद्रित होता है, भाषा के गठन या अलंकारों पर नहीं । प्रारूपकार का यह प्रयास होता है कि कुछ भी संदिग्ध न रहे, सभी अभिव्यक्त और संदेह से परे हो । विधि में एक ही बात को अनेक बार अनेक स्थानों पर कहना आवश्यक हो जाता है । साहित्य के क्षेत्र में यह दोष माना जाता है किंतु विधि में नहीं । विधि के क्षेत्र में एक शब्द का एक ही अर्थ होना चाहिए। साहित्य में श्लेष अलंकार है किंतु विधि में वह दोष हो जाएगा ।

विधि प्रारूपकार का यह आदर्श होता है कि विधि की भाषा अधिक से अधिक सरल हो । किंतु इसे व्यवहार में लाना बड़ा मुश्किल है । सरलता के अभाव और परिणामत: कहीं-कहीं सामान्य जनता के लिए दुर्बोध भाषा बन जाने के कारण हिंदी भाषा के अधिनियमों को आलोचकों का कोपभाजन बनना पड़ता है । यह उचित है कि विधि में प्रयुक्त शब्दावली सुबोध हो । विधि का पालन करने वाले सभी लोग होते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि सामान्य व्यक्ति भी उसे समझ सके । विधि का यह

सुविदित सिद्धांत है कि कोई व्यक्ति यह कहकर नहीं बच सकता कि उसे विधि का ज्ञान नहीं था । किंतु साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक शास्त्र के लिए उसके अनुरूप भाषा के मुहावरे का अभ्यास करना ही होता है । यदि विधि की अंग्रेजी देखें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वह अखबारों, उपन्यासों और कहानियों की अंग्रेजी से भिन्न है । विधि की भाषा और वाक्य-रचना अलग ही प्रकार की होती हैं। अनेक शताब्दियों से अंग्रेजी भाषा का विधि क्षेत्र में निरंतर प्रयोग हो रहा है किंतु फिर भी जिस व्यक्ति विधि का ज्ञान नहीं है, उसे विधि की पुस्तक पढकर समझने में देर लगेगी और कहीं-कहीं भूल भी हो सकती है तो उस बात पर कोई आपति नहीं होनी चाहिए । अंग्रेजी में भी विधि की भाषा की शैली और मुहावरे इतने निखरे हुए नहीं है जितने कि साहित्य के क्षेत्र में । हिंदी विकासशील भाषा हैं और हम उससे इतनी अधिक अपेक्षा न करें जितनी कि सैकडों वर्षों बाद अंग्रेजी से भी नहीं की जा सकी है ।

विधि की शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जो विवादास्पद न हो मतलब कि जिसका अर्थ सुनिश्चित हो । विधि में केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि ध्यान पूर्वक पढ़ने वाला व्यक्ति उसे ठीक ढंग से समझ सके बल्कि यह आवश्यक है कि प्रयत्न करने पर भी उसका कोई दूसरा अर्थ न निकाल सके । इसलिए निश्चितार्थता या एकार्थता विधि के क्षेत्र में सर्वोपरि है । सामान्य भाषा में हम अधिक बारीकियों में न जाकर भाव को समझ ने का प्रयास करते हैं, इसलिए किसी विशेष शब्द के प्रयोग में सूक्ष्मता अनावश्यक-सी हो जाती है । किंतु विधि के क्षेत्र में ऐसा नहीं है । जैसे भारतीय दंड संहिता में दो अलग-अलग अपराध है- Kidnaping (कीडनेपींग) और

Abduction (ऐेडक्सन) जिनके लिए दंड भी अलग-अलग हैं । इसलिए उनका अनुवाद करते समय दो अलग शब्द रखे गए हैं- अपहरण और व्यवहरण । इसी प्रकार हत्या और मानव-वध में भी अंतर करना आवश्यक है । भारतीय दंड संहिता के अनुसार ही किसी अपराधी को संश्रय देना Harbour (हर्बर) अपराध है । अपराधी को प्रतिच्छादित करना Screening (स्क्रुनींग) अपराध है । अपराधी की रक्षा करना Protecting (प्रोटेक्टींग) भी किन्हीं विशेष परिस्थितिओं में अपराध बन सकता है । किंतु विधि के अनुसार कोइ भी वकील अपराधी की प्रतिरक्षा Defend (डीफेन्ड) कर सकता है । विधि के क्षेत्र में अनेक शब्द-समूह ऐसे हैं, जिनमें आने वाले शब्दों में थोड़ी-थोड़ी सी अर्थगत भिन्नता है, जैसे एक शब्द-समूह Likely (लाइकली), Protably (प्रोटेब्ली), Possibly (प्रोसीब्ली), Chance (चान्स) हैं दूसरा है, Loss (लोस), injury (इन्जरी) Damage (डेमेज) तीसरा हैं Discharge (डीस्चार्ज), Release (रीलीस), Set at literty (सेट एट लीटरर्टी) इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं । इसी अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता को ध्यान में रखते हुए यह प्रयास किया जाता है कि एक शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाए ।

अंग्रेजी में अधिनियमित विधि तो हमें विरासत में मिलि हैं उसका प्राधिकृत पाठ अनुवाद द्‌वारा ही तैयार किया जा सकता है । यह उपबंध राजभाषा अधिनियम, १९६३ में है । अतएव इस समय जो केंद्रीय अधिनियम हिंदी में प्राप्त हो रहे हैं, वे सभी अनुवाद हैं । अनुवाद की अपनी सीमाएँ होती हैं और उसके कारण भी कहीं-कहीं भाषा सुबोध या मुहावरेदार नहीं रह जाती, लेकिन जहाँ पर निश्चितार्थता समाप्त होने का भय हो, वहाँ पर ऐसा करना क्षम्य हो सकता है ।

संविधान के अनुच्छेद, ३५२ में यह स्पष्ट निर्देश हैं कि अन्य भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए हिंदी भाषा की समृद्धि की जानी चाहिए। जहाँ तक शब्द-भंड़ार की समृद्धि का प्रश्न है संविधान में यह नहीं कहा गया हैं कि शब्द केवल आठवीं अनुसूची में अभिलिखित भारतीय भाषाओं से हों । शब्द-भंड़ार की अभिवृद्धि के लिए भाषाओं का क्षेत्र कहीं अधिक व्यापक बना दिया गया है और सभी भाषाओं के शब्द लिए जा सकते हैं, चाहे वे आठवीं अनुसूची में हो या न हो और चाहे वे भाषाएँ भारतीय हों या विदेशी ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ शब्द साधारण बोलचाल में कुछ अनिश्चित से अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, उन्हीं को विधि के क्षेत्र में सुनिश्चित अर्थों में प्रयुक्त किया जाता हैं । kidnap (कीडनेप) शब्द का साधारण अर्थ है किसी बालक को उठाकर ले जाना किंतु भारतीय दंड संहिता में किसी वयस्क व्यक्ति को भी किसी विशेष उद्देश्य से ले जाने के अपराध को भी Kidnapping (कीडनेपींग) कहा जाता है । इसी प्रकार अनेकों उदाहरण हैं जिनमें साधारण बोलचाल के शब्दों को विधि में विशेष अर्थ दिया गया है । अंग्रेजों के शासन काल में विधि क्षेत्र में कुछ फारसी शब्दों का प्रचलन हो गया था । इन फारसी शब्दों को विशेष अर्थ देकर हिंदी में समाविष्ट कर लिया गया है, उदाहरण के लिए जमानत, कुर्की, वसीयत, विरासत, हक, सिफारिश आदि ।

विधि के क्षेत्र में बहुधा शब्द प्रतीक-मात्र रह जाते हैं । आयकर अधिनियम में आय या धनकर अधिनियम में धन या दानकर का जो अर्थ है, वह बोलचाल के अर्थों से कोसों दूर है । इन शब्दों को विधि में प्रतीक बनाकर उन्हें एक विशेष अर्थ दे दिया

गया हैं और विधि में ये शब्द उसी अर्थ की अभिव्यक्ति के माध्यम है। हिंदी का विधि के क्षेत्र में प्रयोग करते समय यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जिन शब्दों को हम अपनाएँ उनके विभिन्न रूप और उस शब्द के अन्य निकटवर्ती शब्द सरलता से हिंदी भाषा में आत्मसात् हो सकें। अर्थात् यदि एक प्रचलित शब्द को लाने के परिणाम स्वरूप अनेक अप्रचलित शब्द लेने पड़ेंगे तो यह विचार करना हो कि उस शब्द को लेना चाहिए या नहीं। जैसे 'कानून'; यदि 'कानून' शब्द को हिंदी में अपनाना हो तो इसके साथ कानूनी, गैरकानून, कानूनन, खिलाफ कानून, कानूनदा आदि शब्द भी स्वीकार करने पड़ेंगे। इसलिए हिंदी में 'लॉ' के लिए 'कानून' के स्थान पर 'विधि' शब्द को स्वीकार किया गया है जिससे वैध, अवैध वैधता, विधिपूर्ण, विधि-मान्य आदि शब्द बनते हैं जो हिंदी में सरलता से चले जाते है।

विधि के क्षेत्र में यह भी उल्लेखनीय है कि सामान्य तथा हिंदी में ऐसे शब्द अपनाए जाए जिन्हें सार्वदेशिक रूप से स्वीकार किया जा सके। सभी हिंदी-भाषी राज्यों का यह कर्तव्य है कि भाषा के क्षेत्र में अराजकता फैलाने की संभावनाओं पर रोक लगाएँ। हमारी भाषा विषयक नीति यही होनी चाहिए कि विधि के क्षेत्र में भाषा में एकरूपता ही हो। एकरूपता के अभाव में समवर्ती सूची में, केंद्रीय अधिनियम में राज्यों द्वारा संशोधन करने में कठिनाई उपस्थित हो सकती है। इससे निर्वाचन में भी कठिनाई उत्पन्न होगी और भाषा के विकास में ऐसी बाधा खड़ी होगी की उसे लांधना नामुमकिन जैसा हो जाएगा।

जब कोई व्यक्ति वादी के रूप में न्यायालय में आता हैं तो उसे अपने वाद का निर्णय उसी की भाषा में मिलना चाहिए, जिससे कि वह यह जान सके कि निर्णय क्या

है ? यह तभी संभव हो सकता है जबकि उच्च न्यायालय तक लगभग सभी न्यायालय प्रादेशिक भाषा में अपने निर्णय दें । वर्तमान स्थिति में जब तक सभी केंद्रीय अधिनियम प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध नहीं हो जाते और राज्यों के अधिनियम उन राज्यों की भाषाओं में प्राप्त नहीं हैं तब तक ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती है । इसके लिए आवश्यक है कि उक्त सभी अधिनियमों का अनुवाद शीघ्र तैयार किया जाए । हिंदी में केंद्रीय अधिनियमों के अनुवाद का कार्य काफी आगे बढ़ चुका है और बहुत ही जल्दी सभी केंद्रीय अधिनियमों का हिंदी पाठ प्राधिकृत होकर 'इंडिया कोड' हिंदी में उपलब्ध हो जाएगा ।

जब सभी अधिनियमों और अधीनस्थ विद्यायन के हिंदी-पाठ तथा प्रादेशिक भाषाओं में पाठ उपलब्ध हो जाएँगे तब विधि के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आएगा । उस काल में अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं का भी चलन होगा । उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अपने निर्णय प्रादेशिक भाषा या अंग्रेजी, दोनों में दे सकेंगे । विधि के ग्रंथ और न्यायाधीशों तथा सभी संबंधित नागरिकों के सहयोग से जब प्रादेशिक भाषा में और हिंदी में कार्य करने का अनुभव अधिक होता जाएगा और परिणामत: आवश्यक साहित्य की मात्रा भी पर्याप्त हो जाएगी तभी इस यात्रा का दूसरा चरण आरंभ होगा और क्रमश: अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी पूर्णतया आरुढ़ हो जाएगी।

## ४.५ न्यायालय एवं राष्ट्रभाषा

सामान्य रूप से राष्ट्र के प्रत्येक न्यायालय में न्यायिक व्यवहार प्रादेशिक भाषा में ही होते हैं । किंतु जहाँ हिंदी को विशेष रूप से प्रयुक्ति में लाने की बात हैं वहाँ

कुछ भाषीय भेदभाव और मोह को त्याग कर एक सूत्रता में बांधने के लिए समरूपता एवं राष्ट्रीय भावना को विकसित करने की आवश्यकता है ।

किसी भी राष्ट्र की संवेदना को भाषा के माध्यम से जाना जा सकता है और इसे राष्ट्रभाषा कहते हैं । यहाँ हमारा संविधान न केवल शासन-संचालन का सूत्र है, बल्कि देशवासियों की आशाओं, आकांक्षाओं, जीने के लक्ष्यों और आदर्शों की सूची हैं । व्यक्ति की गरीमा तथा राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित किया गया है ।

संविधान को लिखित स्वरूप देते समय राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठा था और तत्कालीन स्थितियों को नजर में रखते हुए 'हिंदी' को राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ।

देश की कोई राष्ट्रभाषा तो होनी ही चाहिए जिससे देश को एकसूत्रता में पिरोया जा सके, गठबंधन हो सके । क्षेत्रीय भाषाओं से राष्ट्रीय व्यवहार नहीं चलाया जा सकता। और न तो किसी ऐसी भाषा से चलाया जा सकता जिस भाषा को बहुत कम लोग जानते हो। उस समय केवल हिंदी ही एक ऐसी लौती भाषा थी जिसे राष्ट्र के अधिकतम लोग जानते थें । फिर भी उस वक्त हिंदी का विरोध हुआ था और उस समय संविधान के सूत्रधारों ने मध्यम मार्ग निकाला । उस वक्त अंग्रेजी जानने वाले लोगों की संख्या दस प्रतिशत से भी कम थी, और कमाल की बात यह थी कि वही दश प्रतिशत शिक्षित-वर्ग संविधान को बनाने के लिए बैठा था । वे कानून के रखवाले थें और वे यह बात अच्छी तरह से जानते थें कि, अगर शुरू में हिंदी का माध्यम रखेंगे तो बाद में अंग्रेजी को न्याय देना या सार्वत्रिक बनाना मुश्किल हो जाएगा ।

संविधान के अनुच्छेद, ३४३ में स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं कि राष्ट्र (संघ) की

राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, परंतु संविधान के प्रारंभ से १५ साल तक राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, अगर जरूरत पड़ी तो यह अवधी बढ़ाई जा सकती हैं । बस यही वह शब्द हैं जीसमें राष्ट्रद्रोह की बदबू आ रही है । यहाँ अंग्रेजी को और आगे ले जाने का एक मौका दिया गया हैं, एक रास्ता तैयार किया गया है । आज आजादी के ६४ साल के बाद भी वह अवधी पूर्ण नहीं हो पाई है और अंग्रेजी साथ में चलती जा रही है । क्रमशः आगे कहा गया कि संसद में हिंदी या अंग्रेजी का प्रयोग होगा और अनुवाद की भी व्यवस्था की जाएगी ।

उच्चतम न्यायालय ने आर.आर.दलवाई बनाम तामिलनाडु (ए.आई.आर.१९७६ एस.सी.) के मामले में यह निर्देश किए थें कि यदि कोई प्रांतीय सरकार हिंदी या अन्य किसी शासकीय भाषा के विरुद्ध भावनाएँ उद्भवित करती हैं, तो ऐसे कार्यों पर प्रारंभ से ही प्रतिबंध लगाना चाहिए । क्योंकि ऐसी प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीयता तथा प्रजातांत्रिक भावनाओं के विरुद्ध हैं । उपर्युक्त प्रस्ताव में उच्चतम न्यायालय ने हिंदी के विरोध में आंदोलन करनेवालों को पेन्शन देने की शासकीय योजना को असंवैधानिक घोषित कर दिया था क्योंकि ऐसी योजनाओं से राष्ट्र की एकता विखंडित होती है ।

संविधान के सर्जको ने अनुच्छेद, ३४८(१),(२) में उपबंधों का प्रावधान किया है क्योंकि उन्हें लगाकि भाषा संबंधी समस्याएँ प्रायः न्यायालयों की कार्यवाही में उपस्थित होने की संभावना है ।

राजभाषा अधिनियम, १९६३ से उच्चतम न्यायालय की भाषा में परिवर्तन न

होने के कारण, आज भी अंग्रेजी है । न्यायालय में विभिन्न प्रांतों से न्यायाधीश आते हैं, उनके विचार-विमर्श के लिए एक Link भाषा जरूरी है। उच्च न्यायालयों में भी कुछ प्रदेशों में कुछ हद तक क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया जाता है, पर ज्यादातर अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग चलता है ।

कानून के अधिकृत शब्द अंग्रेजी में है, निर्णयों की रिपोर्टींग भी अंग्रेजी में होती है, इसलिए कानून से सीधा रिश्ता रखने वाले वकीलों और विद्यार्थिओं को अंग्रेजी का ज्ञान होना जरूरी है ।

जिल्ला या इससे निम्न स्तर के न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग कुछ हद तक होता है, किंतु इन न्यायालयों के न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में बढ़ती की अपेक्षा रखते हैं । इस वजह से वे अंग्रेजी को ही प्राधान्य देते हैं और वकील-वर्ग भी अंग्रेजी में दलील करना मुनासिब समझता हैं, फिर भले ही विवाद के पक्षकारों को समझ में कुछ भी न आए ।

उपर्युक्त स्थिति को देखकर संविधान के अनुच्छेद ३५१ के अधीन हिंदी भाषा के विकास के लिए संघ सरकार पर कतिपय कर्तव्य को अधिरोपित कीए गए थें । उन में कहा गया हैं कि संघ सरकार हिंदी के प्रचार तथा विकास के लिए प्रयत्नशील रहे ताकि, हिंदी भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके । इतना ही नहीं, अनुच्छेद, ३५० से राज्य सरकारों पर भी प्रायोगिक शिक्षा के द्वारा मातृभाषा और राजभाषा की शिक्षा प्रदान करने का कर्तव्य अधिरोपित किया गया हैं ।

राज्यों को यह अधिकार है कि, वे विधि द्वारा किसी भी क्षेत्रीय भाषा या राज्य के प्रयोग में आने वाली भाषा या हिंदी भाषा को शासकीय भाषा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं ।

आज की स्थिति में हमें यह देखने को मिला हैं कि, विधि-भाषा आयोग द्वारा जो हिंदी शब्दावली विकसित की गई है, उससे राजभाषा का महत्त्व और स्थान, समय आने पर निश्चित हो जाएगा, मगर उनमें दृढता लाने के लिए-

- न्यायालयों में हिंदी अधिकारी की नियुक्ति...
- न्याय की किताबों का हिंदी में अनुवाद...
- केंद्र सरकार की कचहरियों और बैंकों की तरह हिंदी के प्रयोग की आवश्यकता
- न्यायाधीश द्वारा अधिक से अधिक हिंदी का प्रयोग
- निर्णयों की रिपोर्टींग हिंदी में होनी चाहिए ।

हम हिंदुस्तानी हैं, हमारी अपनी भाषा हिंदी है, तो उसका विरोध करने के बजाय, इसका प्रयोग विधि एवं सभी संबंधित क्षेत्रों में ज्यादा से ज्यादा हो, ऐसी हमारी कोशिश होनी चाहिए ।

## ४.६ विधि मंत्रालय से जुड़ी हिंदी

हिंदी केवल राष्ट्रभाषा होने के कारण ही विधि मंत्रालय में इसका प्रयोग जरूरी है ऐसा नहीं, किंतु भारत की आबादी के आधे से ज्यादा लोग इसका भाषा के रूप में उपयोग करते हैं और इससे भी ज्यादा तकरीबन पूरे भारत के महानगरीय लोग हिंदी

भाषा को समझते हैं। राष्ट्रभाषा का आदर-सम्मान उसके प्रति लगाव उत्पन्न करना हम देशवासियों का प्राथमिक कर्तव्य है। इसके लिए एक उदाहरण काफी है- रूस। रूस में रूसी बोलने वालों की संख्या आधी है। वहां भी अलग-अलग राज्यों की अपनी-अपनी राजभाषाएँ हैं। राज्य का सारा राज-काज उसी राजभाषा में होता है। रूस की प्रान्तीय भाषाएँ पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं। उनके व्यवहार में किसी भी प्रकार की रूकावट न डाल, सब तरह से उनको समृद्ध बनाने के प्रयत्न किए जाते हैं। सिर्फ केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच का राजकाज रूसी भाषा में चलता हैं। जनता स्वेच्छा से रूसी भाषा सीखती हैं, क्योंकि वह जानती हैं कि बिना रूसी सीखे वह सारे देश के साथ संपर्क स्थापित नहीं कर सकेगी और प्रगति में पिछड जायेगी। साथ ही रूसी भाषा का प्रसार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता हैं कि अपनी मातृभाषा अपमानित न हो जाये और आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचने न पाए। किसी भी भाषा को बलपूर्वक थोपा नहीं जा सकता, जनता उसे स्वेच्छा से स्वीकृति दे, यह बात उतनी ही अपेक्षित है। विरोधाभास अपने देश में इस जगह पर देखा जाता हैं कि हिंदीतर राज्यों में हिंदी भाषा बोलने पर कट्टर विरोध हैं और आचार में अर्थात पठन-पाठन के मामले में अविराम गति और पूर्ण शक्ति के साथ विकास हो रहा है। इतना ही नहीं इस कार्य में उसी जगह के लोग सबसे अधिक रुचि ले रहे हैं। हिंदी का विरोध करने वाले सिर्फ अवसरवादी राजनीतिज्ञ है। यह सिर्फ कुर्सी की राजनीति हैं। ऐसे पथभ्रष्ट लोग ही जनता को गुमराह करते है और राष्ट्र की सार्वभौम प्रगति के लिए सदैव अभिशाप रूप ही सिद्‌ध होते आये हैं।

जहाँ तक न्यायतंत्र की बात है वहाँ तक हमने ब्रिटीश पद्धति की कानूनी व्यवस्था को स्वीकार किया हैं। भारत का न्यायतंत्र अमरिका की तरह कैडरल भी नहीं है। ग्राम्य स्तर के न्यायालय से लेकर जिल्ला-राज्य के उच्च न्यायालय एवं दिल्ली में स्थित सर्वोच्च न्यायालय तक एक सूत्री है। प्रवर्तमान न्याय व्यवस्था अंग्रेजों की स्थापित की हुई है। उनके जमाने में हर स्तर के न्यायालयों की कार्यवाही तथा फैसले विदेशी न्यायालयों के फैसलों के आधार भी लिए जाते थें, और अनुसरण होता था। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर न्यायालयों में अंग्रेजी का उपयोग जारी रखना अनिवार्य रहा और उस प्रकार अनुच्छेद, ३४८ में प्रावधान किए गये हैं। साथ ही राज्यों के निम्नस्तरीय न्यायालयों में कार्यवाई तथा फैसले की भाषा में अपने राज्य की भाषा का प्रयोग करने की स्वतंत्रता दी गई है। लगभग पीछले बीस वर्षों में निम्नस्तरीय न्यायालयों में प्रान्तीय भाषा का प्रयोग अधिकृत रूप से होता चला आ रहा है। अनुछेद, ३५० के अंतर्गत भारत का कोई भी नागरिक उसे हुए अन्याय की दाद या फरियाद अपने प्रांत में अपनी प्रांतीय भाषा में कर सकता है।

राजभाषा आयोग ने उच्च न्यायालयों की भाषा के विषय में प्रादेशिक भाषाओं और हिंदी के पक्ष-विपक्ष में विचार किया और निवेदन किया कि जब भी इस परिवर्तन का समय आये, उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों की भाषा सब प्रदेशों में हिंदी होनी चाहिए किंतु समिति की राय है कि राष्ट्रपति की पूर्व संमति से आवश्यक विधेयक पेश करके यह व्यवस्था करने की गुंजाइश रहे की उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तिओं और आदेशों के लिए उच्च न्यायालय में हिंदी और राज्यों की

राजभाषाएँ विकल्पतः प्रयोग में लाई जा सकेंगी । समिति की राय है कि उच्चतम न्यायालय अंततः अपना सब काम हिंदी में करे । यह सिद्धांत रूप में स्वीकार्य है और इसके संबंध में समुचित कार्यवाही उसी समय अपेक्षित होगी जबकि इस परिवर्तन के लिए समय आ जाएगा ।

# अध्याय-५
# विधि क्षेत्र में हिंदी प्रयोग : समस्याएँ एवं समाधान

भाषा दर असल एक सेतु का नाम है, एक माध्यम है जिससे दो छोर आपस में जुड़ते है और अपना उद्देश्य संपन्न करते हैं । भाषा की आविष्कृति ही व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की दूरि को दूर करने के लिए हुई हैं । भाषा के माध्यम से सर्व प्रथम मनुष्य अपनी भावनाओं को प्रकट करना सीखा और अन्य लोगों तक अपने विचारों को जैसे का तैसा संप्रेषित करना सीखा । अत: भाषा के कारण दो व्यक्ति या समूह के बीच विचारों का सही आदान-प्रदान होने लगा ।

जब लोगों की संख्या विस्तृत होती जाती है तब भाषा में भी वैविध्य आता जाता है। लोग अपनी-अपनी तरफ से भाषा में नयापन लाने के प्रयत्न करते रहते हैं। परिणामत: जन समूह के बीच भाषा की एकसुत्रता नहीं बन पाती है । और तब उस विकसित समाज को आवश्यकता होती हैं एक ऐसी भाषा की जो उन सब के बीच में समान हो, ताकि अर्थ भिन्नता के कारण कोई समस्या निर्मित न हो ।

हमारे इस अध्याय में मुख्य रूप से इस मुद्दे पर चर्चा होगी कि जब भी एक बड़ा समुदाय किसी एक सिद्धांत या एक उद्देश्य के लिए कार्य कर रहा हो तब उन सभी के बीच में साम्यता और एकसुत्रता होना अत्यंत आवश्यक है और वह साम्यता है भाषिक साम्यता । किंतु इन साम्यता में कुछ समस्याएँ भी निर्मित होती हैं जिससे कार्यान्वयन में रुकावट पेदा होती हैं । सब के बीच समरूपता लाने के लिए समस्या

के समाधान भी आवश्यक है। जिससे आशातीत परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

उपर्युक्त मूल ढाँचा ही हमारे अभ्यास के परिवेश में सुव्यवस्थित बैठ जाता है उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में भाषागत एवं अन्य कई समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। तो इन समस्याओं का अध्ययन करके उसके समाधान पर विमर्श किया जाएगा। किंतु इन से पहले भाषा और उसकी प्रयोग स्थिति को समज लेना आवश्यक है।

## ५.१ प्रयोजनमूलक हिंदी

हिंदी को राजभाषा की संज्ञा प्राप्ति के बाद कार्यालयीन हिंदी, प्रशासनिक हिंदी और प्रयोजनमूलक हिंदी के कार्यों के संपादन का दायित्व भी निर्वहन करना है। जनभाषा, राष्ट्रभाषा और साहित्यिक भाषा से भिन्न प्रयोजनमूलक हिंदी का पृथक अस्तित्त्व है। संरचना और शब्द वैभव भी भिन्न है। आज प्रयोजनमूलक हिंदी ही विशेष महत्त्व को प्राप्त है।

प्रयोजनमूलक हिंदी फंकशनल हिंदी का पर्याय है। जिसका तात्पर्य विशेष प्रयोजन के लिए उपभोग है। प्रशासनिक, राजकाजी, व्यावहारिक आदि नामों से भी हम इसें जानते हैं। डॉ. रमाप्रसन्न नायक इसे व्यावहारिक हिंदी के रूप में स्वीकारते हैं, तो डॉ. नगेन्द्र प्रयोजनमूलकता को ही साहगर्भित, अर्थगर्भित और उचित मानते हैं। डॉ. नगेन्द्र की मान्यता हैं कि हिंदी के दो रूप हैं।- आनंदमूलक और प्रयोजनमूलक। आनंदमूलक हिंदी साहित्य के माध्यम से व्यक्ति या समाज को आनंद का आस्वादन कराती है; पर प्रयोजनमूलक हिंदी मात्र समाज सापेक्ष है और सामाजिक कार्य संपादन ही इसका प्रयोजन है। प्रयोजनमूलक भाषा में प्रशासन, संपर्क और संप्रेषण अपरिहार्य

हैं । लेखन-वाचन में समता, व्याकरणिक शुद्धता और सामाजिक भद्रता इसके लिए अपेक्षित हैं ।

## ५.२ विधिक हिंदी का ढाँचा

अभिव्यक्ति के विविध क्षेत्रों के आधार पर हिंदी की अलग-अलग प्रयुक्तियाँ निर्धारित होती हैं । इसकी प्रत्येक प्रयुक्ति की पृथक विशेषताएँ हैं जो उसके स्वरूप को और स्पष्ट कर निर्धारित करती हैं । प्रशासनिक हिंदी की विधि प्रयुक्ति के रूप में निम्नांकित विशेषताएँ हैं ।-

१. इसमें अर्थ की अभिव्यक्ति अभिधेयार्थ रूप में होती है । इसमें लाक्षणिकता, मुहावरेदारी, व्यंजनात्मकता और आलंकारिकता का अभाव होता है ।

२. विधिक हिंदी अपने पारिभाषित शब्दों में भी हिंदी की अन्य प्रयुक्ति से स्पष्टतः पृथक है । जैसे-

आयुक्त (Commissioner)

राज्यपाल (Governor)

प्रशासकीय (Administrative)

प्राधिकारी (Authority).

३. प्रशासकीय हिंदी में समस्त्रोतीय घटकों के साथ विषम स्त्रोतीय घटकों से भी पारिभाषिक शब्दों की रचना होती हं । यथा- उपरजीस्ट्रार (Subrejister), अष्टांपित (Urnstamped), उप सर्ग के समान प्रत्यय भी विषम वर्ग के होते हैं ।

जैसे: मुद्राबंध = (Sealed)

बातिलीकरण (Annualment)

४. विधिक हिंदी में शैली भेद भी होता है। जैसे उर्दू- अंग्रेजी शैली। आज हिंदी अनुवाद-शैली में विधिक हिंदी के दायित्व का निर्वाह करती है। इस पर उर्दू-अंग्रेजी के साथ संस्कृत का भी प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

| **अंग्रेजी** | **उर्दू** | **संस्कृत** |
|---|---|---|
| Affidavit | हल्फनामा | शपथपत्र |
| Agreement form | करारनामा | अनुबंध पत्र |
| Court | अदालत | न्यायालय |

५. बहुत से शब्द हिंदी में ज्यों के त्यों स्वीकार लिए गए हैं। उदाहरणार्थ अफसर, कोर्ट, हाजत, थाना, कचहरी, टेंडर आदि।

६. प्रशासनिक हिंदी की विधिक प्रयुक्ति में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो सामान्य हिंदी की अन्य प्रयुक्तियों में किसी अन्य अर्थ में आते हैं, किन्तु राजभाषा या प्रयोजनमूलक हिंदी में किसी अन्य अर्थों में। जैसे-

भ्रष्टाचार (Corruption)

सहचारी (Attache)

७. प्रयोजनमूलक एवं विधि में शब्दों का संक्षिप्त रूप भी मिलता हैं। इनका प्रयोग विशेष अर्थ में होता हैं। जैसे-

आ.अ. (C.L.) आकस्मिक अवकाश

अ.स. (D.O.) अर्द्ध सरकारी

८. विधिक हिंदी में वाक्य भी सामान्य हिंदी से भिन्न होते हैं ।

(i) स्वीकृति की जाए ।

(ii) मसौदा पेश किया जाए आदि ।

९. वाक्य निर्वैयक्तिक और कर्म वाच्य में होते हैं ।

(i) सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है ।

(ii) निर्देश दिया जाता है ।

१०. विधिक हिंदी में अंग्रेजी के अनुवादित वाक्य मात्र अनुकरण नहीं होता, उसमें सहजता और बौधगम्यता भी अपेक्षित है ।

११. अनुवाद की भाषा मात्र अनुकृति नहीं है, उसमें सर्वजन संवेद्यता, सहजता एवं सरलता भी अनिवार्य होती है ।

१२. उच्चारण, अक्षर, वर्तनी, शब्द रचना, रूप रचना तथा वाक्य रचना को यथा साध्य मानक होना चाहिए ।

इस प्रकार प्रशासनिक भाषा की विधिक प्रयुक्ति में शब्द, पद, वाक्य, अर्थ में समरूपता और सहजता अपरिहार्य है । कथ्य, शिल्प और भाषिक संरचना में भी सहजता और मानकता आवश्यक है ।

## ५.२ विधि एवं अन्याय क्षेत्र में हिंदी प्रचल की समस्याएँ

संपूर्ण देश की संसद के लिए विधेयक हिंदी में प्रस्तुत करने की स्थिति सन् १९५० के बाद से आई है । न्याय के क्षेत्र में हिंदी का प्रचलन बहुत पुराना है तथा अदालतों में भी हिंदी में कार्यवाही एवं फैसले लिखे जाने के आंदोलन एक शताब्दी से भी अधिक पुराने हैं किंतु आज विधि एवं न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचलन की जो

समस्याएँ हैं, उनकी प्रकृति उस युग की स्थिति की अपेक्षा बिल्कुल बदल गई है। आज सारे देश में कौनसी विधि शब्दावली मान्य होगी, उसके साथ अंग्रेजी अनुवाद लगाना भी किन-किन स्थितियों में आवश्यक होगा, उसे कितनी बड़ी संख्यामें जनता एवं विधिवेत्ता समझ लेंगे, ये सब समस्याएँ प्रमुख हैं। राजस्थान में विधि एवं न्याय के क्षेत्र में हिंदी को प्रतिष्ठित करने के जो विभिन्न प्रयास किए गए, उसके अनुभव से भी समस्याओं पर बहुत प्रकाश पड सकता है। राजस्थान में संविधान के लागू होते ही हिंदी राजभाषा, विधि की भाषा एवं न्यायालयों की भाषा स्वीकृत कर ली गई थी। सन् १९६० के बाद से विधान सभा के सारे विधेयक हिंदी में प्रस्तुत होने लगे थें, उनका अंग्रेजी प्रारूप अनुवाद के रूप में साथ लगाया जाता था। इससे पहले अंग्रेजी में पारित विधियों का हिंदी अनुवाद कर दिया गया था। अक्टूबर, सन् १९७१ से उच्च न्यायालय द्वारा सभी अधीनस्थ न्यायालयों के लिए हिंदी में फैसले देना अनिवार्य कर दिया गया है। सैशन न्यायाधीशों द्वारा हिंदी में फैसले की अनुपालना शत प्रतिशत हो रही है। किंतु इस क्षेत्र में अभी कुछ समस्याएँ हैं। अब तक अदालतों में उर्दू के प्रचलन के कारण जुर्म, इस्तगासा, मुजरिम, मुलजिम, वकील, जिरह, गवाह आदि शब्द सुप्रचलित हैं। इस निर्णय के कारण कि केंद्रीय विधि शब्दावली की भाषा का प्रयोग हो, इनके स्थान पर अपराध अभियोजन, सिद्ध, दोष, अभियुक्त, अधिवकता, प्रतिपरीक्षा, साक्षी आदी शब्द न्यायाधीश द्वारा लिखने जरूरी हो गए हैं। इसका अर्थ है वह हर बार विधि का कोष देखे एवं लिखे। इससे फैसले में विलंब होता है तथा प्रत्येक तिमाही के निर्धारित कोटे की पूर्ति नहीं हो पाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक अनुवाद की समस्या भी महत्त्वपूर्ण है।

## ५.३ कामकाज में हिंदी

विधि के कार्यान्वयन में हिंदी का प्रयोग करने के लिए कोई संवैधानिक रुकावट नहीं हैं किंतु औपचारिक तौर पर अंग्रेजी का वर्चस्व विद्यमान है । हिंदी को विधि में प्रयोग करने के लिए राजभाषा अधिनियम भी बनाया गया और उसमें संशोधन भी हुए जिसका लाभ अंतत: अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने के लिए ही मिल पाया । अनेक आदेश, निर्देश, अधिसूचनाएँ भी हिंदी को कार्यरूप देने की दिशा में सफल न हो सके।

राजभाषा के रूप में विधि क्षेत्र में अंग्रेजी के स्थान पर उसके व्यावहारिक प्रयोग का प्रश्न सामने आता है, तो अनेक प्रकार की परिस्थितिजन्य विवशताएँ और बाधाएँ हमारे सामने खड़ी हो जाती हैं ।

सरकारी एवं विधि कामकाज में हिंदी का प्रयोग करने के बावजूद हिंदी की अपेक्षित  प्रगति, प्रशासनिक कार्यों में नहीं हो पाई है । हिंदी में कामकाज को बढ़ावा देने के लिए प्रशासनिक स्तर पर अनेक अनुभाग, हिंदी एवं हिंदी-कार्य से संबंधित शाखाएँ स्थापित तो की गई परंतु सब हिंदी अनुवाद की एजेंसियाँ बनकर रह गई । यह विभाग हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कोई भी आदेश-निर्देश देने के लिए सक्षम हैं । उच्चाधिकारियों के मार्गदर्शन, संरक्षण और देखरेख में काम करते हुए ये विभाग अपने आपको बडी दयनीय स्थिति में पाते हैं । इनसे क्षति (खाना) पूर्ति के लिए हिंदी में काम तो कराया जाता हैं पर न इन्हें महत्त्वपूर्ण विभाग माना जाता है और न इनके कार्य को कोई अहमियत दी जाती है ।

पूरे विधि आयोग में तथा हिंदी के अनेक पदों पर काम करनेवाले लोगों को ही हिंदी में काम करने का प्रयास करना चाहिए, ऐसी बातें चलती ही रही अपितु काम

नहीं हुआ । विधि तंत्र में वातावरण अंग्रेजीमय है, अत: उच्चाधिकारी अपने स्तर पर हिंदी के प्रयोग को हीन भावना से जोड़ते हैं और अंग्रेजी को ही प्रतिष्ठा की भाषा मानते हैं । न्यायाधीशों और वकीलों को तथा जुडे अधिकांश अधिकारियों को हिंदी का प्रयोग रास नहीं आता और अधीनस्य कर्मचारी इस भय के कारण, चाहते हुए भी दैनिक कार्यो में हिंदी को अपनाने में संकोच करते हैं । भाषा के स्तर पर आतंक की यह स्थिति मजबुरन विधि को अंग्रेजी से जोडे हुए है । टाइपिस्ट हैं, पर उन्हें हिंदी का काम नहीं मिलता, हिंदी आशुलिपिक हैं तो उनसे काम नहीं करवाया जाता । द्विभाषी फार्म होने के बावजूद भी अंग्रेजी में ही फार्म भरे जा रहे हैं । प्रशासन तंत्र में और विधि में लंबे समय से अंग्रेजी की परिपाटी चली आ रही है । जब हिंदी के प्रयोग की बात आई तो माध्यम परिवर्तन की समस्या सामने आई।

माध्यम परिवर्तन की स्थिति बहुत जटिल होती है और जब तक दूसरी भाषा में कामकाज करना प्रारंभ किया जाता है, तो उसके लिए बहुत से मानवीय एवं यांत्रिक साधन जुटाने की आवश्यकता पडती है । अंग्रेजी के स्थान पर विधि में हिंदी प्रयोग करने की दिशा में ऐसी कठिनाईयाँ बराबर आई हैं, जिनको दूर करके ही व्यावहारिक रूप से हिंदी के प्रचार और प्रसार को बढ़ावा देकर अंग्रेजी के स्थान पर दैनिक कार्य में हिंदी को अपनाया जा सकता है । फार्म, प्रपत्र, शब्दावली, नियमावली, संविधान एवं अन्य विधि साहित्य का हिंदी अनुवाद हुआ है । परंतु व्यवहारिक प्रयोग के अभाव में कठनाई बनी हुई हैं । मैरा तो मानना है देश के स्वतंत्र होते ही हिंदी को राजभाषा के रूप में अनिवार्य रूपेण घोषित कर देना चाहिए था ।

हिंदी में काम करते समय टाइपिस्टों और आशुलिपिकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । अब तो विधि एवं अन्य क्षेत्रों में कम्प्युटर आ चुके हैं किंतु हिंदी में काम करने वाले प्रोगराम और ओपरेटरों की संख्या कम है । कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण दिया तो जा रहा हैं । परंतु प्रशिक्षित कर्मचारियों को लगातार काम हिंदी में नहीं मिलने पर इनका अभ्यास समाप्त हो जाता हैं और वे सीखा हुआ भी भूल जाते हैं । अत: इस तरफ समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है । कर्मचारियों को भाषा कार्यशालाओं, हिंदी शिक्षण योजना आदि के माध्यम से हिंदी में विधि कार्य का प्रशिक्षण भी दिया जा रहा हैं ।

अदालतों में जितना भी प्रशासनिक काम होता है, उसमें विशेष प्रकार के फार्मों, प्रपत्रों, नियमों, उप-नियमों, संहिताओं, अधिनियमों आदि का प्रचलन है। यह पुरा साहित्य अंग्रेजी में हैं और इतने वर्षों से प्रयोग में आ रहे हैं । इस लिए अंग्रेजी में काम करना आसान हो जाता हैं । यदि इन सब के मानक रूप उपलब्ध हो जाए और भाषा सहज एवं सरल हो जाए तो अंग्रेजी के बदले हिंदी में काम करना सुविधाजनक हो जाए । ऐसे कार्य किए भी गए हैं और मानक प्रयोग में भी आ रहे हैं। परंतु कही-कही भाषा अत्यंत जटिल और तकनीकी रूप ले लेती है । अत: कुछ कठनाइयां भी आ सकती हैं । ऐसी दशा में फार्मों, प्रपत्रों आदि का मूल रूप से हिंदी में तैयार करवाने का प्रयास भी करना चाहिए । अनुवाद के कारण भाषा बोझिल हो जाती है । इस प्रकार की अनुवादी हिंदी भी कुछ खास काम में ना आ सकी ।

हिंदी का प्रयोग करते समय अदालतों में प्रचलित अंग्रेजी की शब्दावली को हिंदी में परिवर्तित करना होता है । विधि के क्षेत्र में भाषा और शब्दावली संबंधी इतनी

छूट नहीं हो सकती जितनी सामान्य प्रशासनिक कार्य में होती है । अत: अधिनियमों, उपनियमों और अन्य, कानूनों से संबंधित सामग्री का अनुवाद करते समय शब्दार्थ के प्रति सजग रहना होता है क्योंकि कानून में एक शब्द का एक ही अर्थ आवश्यक होता है । एक्ट को अधिनियम, बिल को विधेयक, आर्टिकल को अनुच्छेद, कलाज को खंड, सेकसन को धारा रूल को नियम, रुल्स एंड रेग्युलेशन को नियम विनियम कहा जाता हैं ।

इसी प्रकार, विधान, वैधानिक और संवैधानिकता आदि शब्दों का उदाहरण दिया जा सकता है । इस संबंध में विधि मंत्रालय के राजभाषा आयोग द्‌वारा बहुत कार्य किया जा चुका है । विधि शब्दावली भी बन गई हैं और अनेक अधिनियमों का अनुवाद भी उपलब्ध है । बस आवश्यकता उसके प्रयोग की है और उन्हें कार्यान्वियन में लाने की है । यह शुभ संकेत है कि अनेक न्यायालयों में बहुत कुछ कार्य हिंदी में हो रहा हैं परंतु उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालयों में हिंदी को अपेक्षित स्तर में अपना लिया जाए तो श्रेयकर होगा । यहाँ के न्यायालयों में न्यायाधीश, वकील व कर्मचारी सभी अंग्रेजी को ही वहाँ की भाषा के रूप में प्राथमिकता देते हैं और गवाही या निर्णय अंग्रेजी में ही होते हैं, फिर भले ही न गवाह अंग्रेजी में माहिर हो और न अधिकतर वादी-प्रतिवादी ही उसे समझ पाते हों । प्रशासनिक भाषा का एक विशिष्ट स्वरूप होता है जिसकी सामान्य बोलचाल की भाषा की अपेक्षा एक अलग पहचान होती है । उसी के अनुरूप कार्यालय साहित्य भी भाषा रूढ़ हो जाता हैं । शब्द और वाक्यांश आदि भी अनिर्धारित अथवा निश्चित रूप ले लेते हैं । अत: कई बार यह कहा जाता है कि विधि में जन सामान्य की समाज में आ सकने वाली भाषा या सरल

शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए । इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक हैं कि सरकारी कामकाज एवं न्यायालयी कामकाज में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाए जिससे अर्थ तो स्पष्ट हो जाए, परंतु जिसके लिए यह भाषा लिखि जा रही है, उसकी समझ में भी आसानी से आ जाए । मात्र अनुवाद के कारण भाषा कृत्रिम एवं बनावटी हो सकती है । गढ़ी हुई शब्दावली उसे ऐसा रूप दे देती है कि भाषा का सहज स्वरूप नष्ट हो जाता हैं और 'अनुवादी हिंदी' चल पड़ती है । इसके कारण अंग्रेजी के हिमायती लोगों को हिंदी की आलोचना करने का बहाना मिल जाता है ।

प्रशासन के क्षेत्र में हिंदी को बढावा देने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भाषा सरल और समझ में आ सकने योग्य हो । इसके लिए प्रचलित प्रयोगों का भी अपना अलग-अलग महत्त्व होता है ।

इसीलिए प्रशासनिक भाषा में शब्द चयन की आवश्यकता होती है और सतर्कता भी होनी चाहिए । जिसमें मूल सामग्री का अर्थ परिवर्तन न हो । शब्दावली के क्षेत्र में एक बात यह भी है कि किसी विशेष क्षेत्र में कार्य करने वालों को उस क्षेत्र विशेष में प्रयोग की जाने वाली शब्दावली, चिकित्सा, न्यायालय, संचार आदि के क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को उतना प्रयोग नहीं करना पडता है । इसके लिए उन्हें अपने दैनिक कार्य से संबंधित बुनियादी शब्दावली के ज्ञानार्जन की भी अधिक आवश्यकता रहती है । परंतु प्रयोग अभ्यास और प्रचलन से तकनीकी शब्द लोकप्रिय हो जाते हैं।

विधिक शब्दावली में एकरूपता भी आवश्यक है जैसे निदेशक को कहीं संचालक, कहीं निर्देशक लिख देते हैं, अत: एकरूपता की दृष्टि से इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

यदि हिंदी में भी हम कार्यालय पद्धति और साहित्य को हिंदी की प्रकृति के अनुकूल स्वरूप प्रदान कर सकें और सहज, स्वाभाविक तथा समझ में आ सकने वाली शब्दावली का प्रयोग कर सकें तो कठिनाई हल हो सकती हैं और प्रशासनिक भाषा का रूप भी निखरकर सामने आ सकता है ।

सामान्य बातचीत से लेकर पत्र-व्यवहार तक में अंग्रेजी का प्रयोग ही इन संस्थानों की प्रतिष्ठा का द्योतक माना जाता है । यदि भाषायी स्वाभिमान हो और अंग्रेजी से जुड़ी झूठी प्रतिष्ठा और मोह का त्याग किया जा सके, तो इनमें भी हिंदी को बढ़ावा दिया जा सकता है, न्यायालय की बात हैं वहाँ तक उस से जुड़ी सभी पुस्तकें यदि हिंदी में उपलब्ध कराई जाए तो कुछ हद तक समस्या का समाधान हो सकता है ।

विधि से संबंधित सभी व्यक्ति को राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने के लिए हिंदी के साथ मन से जुड़ना होगा । अपने दैनिक काम-काज में हिंदी का प्रयोग करना होगा। उस से ही हम हिंदी को उनकी प्रतिष्ठा दिला सकते हैं ।

## ५.४ विधिक हिंदी के अनुपालन से जुड़े अधिकारी के कर्तव्य

प्रत्येक मंत्रालय, विभाग, उपक्रम संबंध एवं अधिनस्य कार्यालयों में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के लिए एक अनुभाग होता है, मंत्रालयों और बड़े विभागो में तथा विधि में भी निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक एवं अनुवादक होते हैं । हिंदी के आशुलिपिक और टंकक होते हैं, जो राजभाषा के कामकाज में लगे होते हैं । कुछ उपक्रमों में प्रबंधक एवं उपप्रबंधक आदि पद भी होते हैं, जो सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन के लिए जिम्मेदार होते हैं ।

विधि में हिंदी के कार्य को गति प्रदान करने के लिए गृह मंत्रालय के अधिन राजभाषा विभाग की स्थापना की गई है और हिंदी के प्रचार-प्रसार का दायित्व मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सोंपा गया है ।

संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया है, हिंदी जो देवनागरी लिपि में हो और भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम हो । राजभाषा अधिकारी का प्रमुख कार्य संघ की राजभाषा हिंदी का कार्यान्वयन और अनुवाद कार्य है । कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए राजभाषा विभाग द्‌वारा लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं या उनमें जो परिशोधन या संशोधन किए जाते हैं, वे सभी राजभाषा अधिकारी के माध्यम से उस बिंदु तक पहुँचते हैं जहाँ उन पर नीतियों को लागू किया जाता हैं । वैसे तो राजभाषा कार्यान्वयन का प्रमुख दायित्व संस्थान, कार्यालय या मंत्रालय के प्रशासनिक प्रमुख का होता है परंतु राजभाषा अधिकारी का दायित्व भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता, अपितु अधिक ही होता हैं ।

राजभाषा अधिकारी को अपने कर्तव्यों और विषयों की पूरी जानकारी होनी चाहिए । राजभाषा हिंदी को प्रयोग की दिशा में उसकी बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । राजभाषा विभाग द्‌वारा प्रति वर्ष 'क' क्षेत्र, 'ख' और 'ग' क्षेत्र के लिए अधीनस्थ कार्यालयों, उपक्रमों के लिए निगमों के लिए वार्षिक कार्यक्रम सुनिश्चित किए जाते हैं। उसका समुचित अनुपालन कराना, उसकी पूरी जानकारी देना भी उसका परम कर्तव्य है ।

हर तीन महीने में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक करना और उस बैठक में तीन महिने में किए गए कार्य की समीक्षा करना भी राजभाषा अधिकारी का

कार्य है । राजभाषा विभाग से प्राप्त अनुदेशों को संबद्ध कार्यालयों और अधीनस्थ कार्यालयों को अवगत कराना और समुचित अनुपालन की व्यवस्था कराना है । विधि से जुड़े अधिकारीयों कर्मचारियों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग संबंधी रूचि को उत्पन्न करना, पत्र व्यवहार, परिपत्र, आदि के माध्यम से कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना, प्रतिवर्ष हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा मनाना और हिंदी में कार्य करने के लिए मंत्री महोदय की ओर से संदेश या सचिव की ओर से आदेश निकलवाना । इस संबंध में विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन करना । कार्यशालाओं में जिन अधिकारी लोगों को हिंदी आती है किंतु प्रयोग करने में झिझक होती है, वह दूर करने के लिए उस जगह हिंदी कार्यशाला का आयोजन कराना भी राजभाषा अधिकारी का कर्तव्य है।

इन कार्यशालाओं का उद्‌देश्य कर्मचारियों को देवनागरी लिपि में सरकारी कामकाज में होने वाली व्यवहारिक हिंदी का अभ्यास कराना है । उन्हें हिंदी में मसौदे और टिप्पणी लिखना सिखाना और प्रोत्साहित करना हैं जिससे वे हिंदी में कार्य करने की ही भावना से नहीं अपितु गौरव से राजभाषा के कार्य में रुचि लें । जिस कार्यालय के ८० प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उस कार्यालय का नाम राजभाषा नियम १० (४) के अधीन भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया जाता हैं । इस प्रकार, अधिसूचि कार्यालय में कुछ विषयों को केवल हिंदी में करने के लिए विभागाध्यक्ष की ओर से राजभाषा नियम ८(४) के तहत आदेश जारी किया जाना अपेक्षित है । अत: राजभाषा के कार्य से जुडे अधिकारी का यह दायित्व बन जाता है कि वह कार्यालय में उक्त आदेश का अनुपालन करवाएँ। सरल

भाषा का प्रयोग हो । सामान्य बोलचाल के अंग्रेजी, उर्दू आदि के शब्दों को भी लिया जाना चाहिए । अंग्रेजी के उन शब्दों को जिनका पर्याय नहीं मिलता उसे देवनागरी में ही लिख दें ।

## ५.५ प्रोत्साहन योजनाएँ

चाहे विधि हो या अन्य सरकारी कार्यालय या पूरा आयोग, वहाँ काम करने वाले लोगों से हिंदी में काम करवाने के लिए कुछ प्रोत्साहन योजनाओं का भी सहारा लेना चाहिए । प्रोत्साहन योजनाओं में कुछ नकद पुरस्कार और मासिक वेतन वृद्धि आदि की जानकारी भी देनी चाहिए ।

वैसे हिंदी को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने अन्य उपायों के साथ प्रोत्साहन योजनाएँ भी चालु की हैं । ये योजनाएँ दो भागों में हैं । प्रथम प्रकार की योजनाएँ वे योजनाएँ हैं, जिसमें राजभाषा के कार्यान्वयन में सक्रिय एवं भूमिका निभाने के प्रतिफल में सरकारी अधिकारियों को पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं ।

द्वितीय प्रकार की प्रोत्साहन योजनाओं का लाभ उन कर्मचारियों को दिया जाता है, जो हिंदी शिक्षण योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पात्र होते हैं । ऐसे कर्मचारियों को अपना प्रशिक्षण सफलता पूर्वक प्राप्त कर लेने के उपरांत विभिन्न पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं ।

### ५.५.१ प्रथम श्रेणी के पुरस्कार

### १. राजभाषा शील्ड तथा ट्राफी प्रदान करने की योजना

इंदिरा गांधी राजभाषा शील्ड और इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार

केंद्रीय हिंदी समिति की सिफारिशों के अनुसरण में, विभिन्न मंत्रालयों/विभागों

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और व्यक्तियों को सरकार की राजभाषा नीति को बढ़ावा देने के कार्य में उतकृष्ट उपलब्धि के लिए पुरस्कार प्रदान करने हेतु एक योजना लागू की गई है । इस पुरस्कार का नाम 'इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार' हैं । यह वित्त वर्ष १९८६-८७ से लागू हैं और इसके चार मुख्य भाग हैं ।-

- भारत सरकार के मंत्रालयों/विभागों के लिए इंदिरा गांघी राजभाषा शील्ड ।
- बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के लिए इंदिरा गांधी राजभाषा शील्ड।
- भारत सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए इंदिरा गांधी राजभाषा शील्ड ।
- व्यक्तिओं द्वारा हिंदी में लिखि गई मौलिक पुस्तकों के लिए इंदिरा गांधी पुरस्कार ।

## २. सरकारी कामकाज में मूल हिंदी टिप्पण–आलेखन के लिए प्रोत्साहन

राजभाषा विभाग के कार्यालय ज्ञापन संख्या- ११/१२०१३/१/८४ रा.भा. (क-२) २५ मई, १९८४ के तहत जारी की गई प्रोत्साहन योजना के स्थान पर एक नई प्रोत्साहन योजना प्रारंभ की गई है जो, १ अप्रेल, १९८८ से लागू है । इस योजना के अंतर्गत केंद्रीय सरकार के सभी मंत्रालय अपने अधिकारियों के लिए स्वतंत्र रूप से प्रोत्साहन योजना लागू कर सकते हैं ।

इस प्रोत्साहन योजना में सभी श्रेणियों के कर्मचारी भाग ले सकते हैं, जो सरकारी काम पूर्णत: या कुछ हद तक मूल रूप से हिंदी में करते हैं । इस योजना के

अंतर्गत वे कर्मचारी-पुरस्कार के पात्र होंगे जो 'क' तथा 'ख' क्षेत्रों में वर्ष में कम से कम २० हजार शब्द तथा 'ग' क्षेत्र में वर्ष में कम से कम १० हजार शब्द हिंदी में लिखें। इस नई प्रोत्साहन योजना की एक विशेषता यह भी हैं कि इसमें मूल टिप्पण व आलेखन के अलावा हिंदी में किए गए अन्य कार्य, जिनका सत्यापन किया जा सके, जैसे रजिस्टर में एन्ट्री, सूची तैयार करना, लेखा का काम आदि भी शामिल किए जाएँगे। पहले की प्रोत्साहन योजना के अनुसार ही आशुलिपिक/टंकक, जो सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने संबंधी किसी अन्य योजना के अंतर्गत आते हैं, तथा हिंदी अधिकारी और हिंदी अनुवादक सामान्यत: अपना काम हिंदी में करते हैं, इस योजना में भाग लेने के पात्र नहीं होंगे।

**३. विशिष्ट क्षेत्रों में मूल कार्य हिंदी में करने के लिए पुरस्कार-योजना।**

कुछ प्रतिष्ठानों/कार्यालयों में वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, प्रचालन कर्मचारियों द्वारा विशिष्ट प्रकार के कार्य किए जाते हैं। उनके लिए भी उचित प्रोत्साहन-योजनाएँ चालू किए जाने का प्रावधान है, यह योजना संबंधित मंत्रालय/विभाग/उपक्रम आदि द्वारा शुरु की जानी चाहिए।

**४. अंगुली टाइपिस्टों/आशुलिपिकों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन-भत्ता।**

मंत्रालयों/विभागों तथा संबद्ध और अधिनस्थ कार्यालयों में कार्य कर रहे उन आशुलिपिकों और टाइपिस्टों को, जो अंग्रेजी आशुलिपि/टाइप जानते हैं और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी में भी अपना सरकारी कार्य करते हैं उसे मासिक भत्ता दिया जाता है। केवल वही अंग्रेजी टाइपिस्ट/आशुलिपिक इस भत्ते के पात्र होंगे, जो हिंदी में

औसतन ५ टिप्पणियाँ/प्रारूप/पत्र प्रतिदिन टंकित करते हैं। केवल एक या दो पंक्तिओं के प्रारूप/टिप्पणियाँ इसमें शामिल नहीं होगी। यह विशेष भत्ता 'वेतन' नहीं माना जाएगा और इस राशि पर महंगाई भत्ता, मकान किराया भत्ता, नगर प्रतिकर भत्ता और अन्य भत्तें देय नहीं होंगे।

**५. सबसे अच्छा कार्य करने वाली नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को पुरस्कार योजना।**

दिल्ली के बाहर प्रमुख नगरों में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी कार्य की प्रगति की समीक्षा करने और समस्याओं पर विचार करने के लिए ऐसे नगरों में जहाँ कम से कम १० केंद्रीय सरकार के कार्यालय हैं, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं। इन समितियों की अध्यक्षता नगर के वरिष्ठतम अधिकारी करते हैं। नगर में स्थित केंद्रीय सरकार के सभी कार्यालय के प्रतिनिधि इन समितियों की बैठकों में संमिलित होते हैं। हिंदी में सबसे अच्छा कार्य करनेवाली नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को प्रोत्साहन स्वरूप पुरस्कार दिए जाते हैं।

### ५.५.२ दूसरी श्रेणी के पुरस्कार

इस प्रकार की योजना के अंतर्गत हिंदी-प्रशिक्षण, हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि के पाठ्यक्रम निजी प्रयासों से सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने अथवा विशेष अंक प्राप्त करने के फलस्वरूप क्रमश: वैयक्तिक वेतन और नकद पुरस्कार देने का भी प्रावधान है, जिनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से है-

(यहाँ गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा जो-जो पत्र आए हैं उनके केवल विषय ही प्रस्तुत किए जा रहे हैं, अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं)

१. निजी प्रयत्नों से हिंदी-शिक्षण योजना की हिंदी, हिंदी टाइपिंग और हिंदी आशुलिपि-परीक्षाएँ तथा स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं आदि की मान्यता प्राप्त हिंदी-परीक्षाएँ पास करने पर प्रोत्साहन ।

राजभाषा विभाग, ज्ञापन सं. १२०११/५/८३

२. निजी प्रशिक्षण योजनाओं में हिंदी टाइपिंग और हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण लेने वाले सरकारी कर्मचारियों को फीस के लिए अग्रिम दिया जाना ।

राजभाषा विभाग, ज्ञापन सं., १२०१६/३/८६

३. विषय के अतिरिक्त हिंदी में सरकारी काम करने के लिए आशुलिपि तथा टाइपिस्टों को 'हिंदी प्रोत्साहन भत्ता' देना ।

राजभाषा विभाग, ज्ञापन सं. १४०१२/५५/८७

४. सरकारी काम-काज मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहन योजना ।

राजभाषा विभाग, ज्ञापन सं. १२०१३/३/८९

## ५.६ राजभाषा अनुपालन समितियाँ और कार्य ।

भारत सरकार ने तो अपने दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया, जहाँ-जहाँ आवश्यकता दिखाई दी वहाँ हिंदी को अनिवार्य भी बनाया और हिंदी में काम करने तक की सुविधा उपलब्ध करा दी गई, परंतु जो कार्यालय, मंत्रालय और वहाँ के लोग ही विभिन्न बहाने बनाकर काम न करें तो क्या हो सकता हैं । अत: राजभाषा के अनुपालन के लिए विविध समितियाँ गठित की गई । जिसका काम राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत आने

वाला प्रत्येक कार्य हिंदी में कराना है तथा आनेवाली समस्याओं का समाधान करना और कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना है ।

कुछ समितियाँ और उनके कार्य इस प्रकार हैं ।

### ५.६.१ केंद्रीय हिंदी समिति

हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार के विषय में तथा सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा किए जा रहे कार्यों में समन्वय करने के लिए प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में केंद्रीय हिंदी समिति का गठन किया गया है । यह समिति राजभाषा नीति के संबंध में दिशा निर्देश देने वाली सर्वोच्च समिति है । इस समिति को ३-३ वर्ष के लिए गठित किया जाता है। इस समिति में प्रधानमंत्री जी के अलावा, कुछ प्रमुख केंद्रीय मंत्री, राज्यों के मुख्य मंत्री, संसद सदस्य, हिंदी भाषा के विद्‌वान, पत्रकार, स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधि सदस्य के रूप में शामिल होते हैं । सचिव, राजभाषा विभाग एवं भारत सरकार के हिंदी सलाहकार इस समिति के सदस्य होते हैं । सन् २००५ तक समिति की २८ बैठके हो चुकी हैं ।

### ५.६.२ हिंदी सलाहकार समितियाँ

विभिन्न मंत्रालयों/विभागों में संबंधित मंत्रियों की अध्यक्षता में हिंदी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है । ये समितियाँ अपने-अपने मंत्रालयों/विभागों तथा उनके कार्यालयों/उपक्रमों में हिंदी की प्रगति की समीक्षा करती हैं तथा सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने तथा राजभाषा नीति के अनुपालन के लिए ठोस उपाय सुझाती है । संसदीय राजभाषा समिति के सुझावों को ध्यान में रखते हुए,

केंद्रीय समिति की दिनांक २ दिसंबर, १९८७ की बैठक के निर्णय के अनुसार भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों विभागों में ४५ हिंदी सलाहकार समितियाँ स्वीकृत की गई हैं, जिनमें से २९ समितियाँ प्रभावी रूप से कार्य कर रही हैं और १६ समितियों के गठन/पुनर्गठन की प्रक्रिया जारी हैं। अप्रेल, १९९९ से ३१ मार्च, २००४ तक हिंदी सलाहकार समितियों की ७२ बैठकें आयोजित की गई हैं।

### ५.६.३ केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति

यह समिति राजभाषा अधिनियम, १९६३ और राजभाषा नियम, १९७६ के उपबंधों के अनुसार सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग, केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के हिंदी प्रशिक्षण और उपर्युक्त संदर्भ में राजभाषा विभाग द्वारा समय-समय पर जारी किए गए अनुदेशों के कार्यान्वयन की समीक्षा करती हैं और उसके अनुपालन में पाई गई कमियों और कठिनाईयों को दूर करने के लिए उपाय सुझाती हैं। सचिव, राजभाषा विभाग इस समिति के अध्यक्ष और विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्ष इसके सदस्य होते हैं।

### ५.६.४ नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ

केंद्रीय कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए नगरों में, जहाँ इन कार्यालयों की संख्या अधिक है, राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया हैं। इन समितियों की बैठकों में नगर में स्थित सभी कार्यालयों/उपक्रमों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। बेठक में प्रगति की समीक्षा होती है। हिंदी में कामकाज बढ़ाने के सुझाव भी दिए जाते हैं। अब तक १६० नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियां गठित की जा चुकी हैं।

इन समितियों की बैठक वर्ष में दो बार बुलाए जाने की व्यवस्था है ।

### ५.६.५ विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ

सभी मंत्रालयों/विभागों तथा कार्यालयों में विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है । इनकी बैठकें तीन महीने में एक बार आयोजित की जाती है । बैठकों में तिमाही प्रगति रिपोर्ट की समीक्षा की जाती हैं तथा वार्षिक कार्यक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के उपाय किए जाते हैं ।

राजभाषा नीति और तत्संबंधी व्यवस्थाओं की जानकारी तथा नए आदेशों की जानकारी देने के लिए इन बैठकों में राजभाषा विभाग का प्रतिनिधि भी शामिल होता हैं । १९९८ तक मंत्रालयों/विभागों की समितियों की १८४ बैठकें हो चुकी है । (अंतिम प्राप्त जानकारी के आधार पर)

### ५.६.६ संसदीय राजभाषा समिति और उसके कार्य

राजभाषा अधिनियम, १९६३ के धारा ४ (१) के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि उक्त अधिनियम की धारा ३ के लागू होने की तारीख (२६ जनवरी, १९६५) के १० वर्ष की समाप्ति के पश्चात् राजभाषा के संबंध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर, गठित की गाएगी । तदनुसार, जनवरी १९७६ में संसदीय समिति का गठन किया गया । इसमें २० सदस्य लोकसभा से तथा १० राज्यसभा के होते हैं । जो क्रमश: लोकसभा के सदस्यों तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा एक मत द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं ।

राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ४ (३) के अनुसार समिति का कर्त्तव्य है कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करें तथा उस पर सिफारिशें करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। तदुपरांत उस प्रतिवेदन को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखने की तथा सभी राज्य सरकारों को भिजवाने की व्यवस्था है। सभी राज्यों की राय प्राप्त हो जाने के बाद इन निवेदनों पर सरकार द्वारा राष्ट्रपति जी की ओर से आदेश जारी किए जाते हैं।

समिति ने अपना प्रतिवेदन अलग-अलग खंडों में राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने का निर्णय लिया है। तद्नुसार समिति अब तक अपने प्रतिवेदन के ५ खंड राष्ट्रपति को प्रस्तुत कर चुकी हैं। इन में से पहले चार खंडों पर राष्ट्रपति के आदेश भी जारी हो चुके हैं। समिति ने अपने प्रतिवेदन का प्रथम खंड ३०/१/१९८७ को राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत किया।

संसदीय समिति के इस खंड में केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में अनुवाद व्यवस्था, अनुवाद संबंधी प्रशिक्षण, हिंदी में संदर्भ और संपूरक साहित्य शब्दावली निर्माण आदि के संबंध में निवेदन किए गए हैं। सरकार द्वारा इस खंड में किए गए अधिकांश निवेदन स्वीकार कर लिए गए हैं और उस से संबंधित संकल्प दिसंबर १९८८ में जारी कर दिया गया।

समिति के प्रतिवेदन के दूसरे खंड को ३१/७/१९८७ को राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया गया। इसमें कार्यालयी कामकाज में यांत्रिक उपकरणों की आवश्यकता और उपयोगीता तथा उनमें देवनागरी लिपि की व्यवस्था, उन पर कार्यरत कार्मिक शक्ति की उपलब्धता एवं प्रशिक्षण तथा विभिन्न उपकरणों के संबंध में उत्पादन तथा भरपाई

व्यवस्था आदि के बारे में निवेदन किए गए हैं । यह खंड दिनांक २९-३-८८ को राज्यसभा में तथा दिनांक ३०-३-८८ को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया । इसकी प्रतियाँ केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों और राज्य सरकारों को उनकी राय जानने के लिए भेजी गई और उन प्राप्त विचारों के आधार पर अधिकांश निवेदनों को मूल रूप में या कुछ संशोधनों के साथ सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया हैं । इस संबंध में दिनांक २९-३-९० को संकल्प जारी किया गया ।

केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण तथा हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण की व्यवस्था और इनसे जुड़े हुए पहलुओं से संबंधित समिति के प्रतिवेदन का तीसरा खंड फरवरी १९९० में राष्ट्रपतिजी को प्रस्तुत किया गया फिर उसे राज्यसभा एवं लोकसभा में प्रस्तुत किया और विभिन्न मंत्रालयों में उसकी प्रतियाँ भेजकर उनकी राय प्राप्त की गई । पश्चात् उनमें कीए गए अधिकांश सिफारिशों को मूल-रूप में कुछेक एक को संशोधनों के साथ स्वीकार लिया गया ।

समिति द्वारा किए गए निरीक्षणों के आधार पर देश के विभिन्न भागों में स्थित सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों आदि में हिंदी के प्रयोग की स्थिति से संबंधित चौथा खंड़ नवंबर, १९९० में राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत किया गया । यह खंड अगस्त १९९१ को राज्य एवं लोकसभा में प्रस्तुत किया गया तथा केंद्र के सभी मंत्रालयों को प्रतिया भेजी गई जिससे वे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें । प्राप्त अभिमतों के आधार पर समिति की सिफारिशों को थोडा संशोधित करके स्वीकार कर लिया गया । तथा संबंधित संकल्प २८-१-९२ को जारी कर दिया गया ।

विधायन की भाषा तथा विभिन्न न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों में प्रयोग की जाने वाली भाषा से सबंधित समिति के प्रतिवेदन का पांचवा खंड मार्च, १९९२ में राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत किया गया। यह खंड़ दिनांक १७ मार्च, १९९४ को राज्य सभा में और १९ मार्च को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। इस खंड में किए गए निवेदनों पर विचार किया जा रहा है तथा इस संबंध में आदेश अभी जारी होने बाकी हैं।

चूंकि इस खंड़ में किए गए निवेदनों का संबंध विधायन की भाषा और विभिन्न न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा की स्थिति के बारे में समीक्षा तथा मूल्यांकन से है, इस लिए सभी मंत्रालयों/विभागों, राज्य सरकारों/संघ शासित प्रदेशों तथा उच्चतर न्यायालय से अभिमत मांगे गए हैं। उच्चतम न्यायालय और कुछ राज्य सरकारों से अभिमत अभी आने शेष हैं। उच्चतम न्यायालय सहित सभी संबंधितों से जो अभिमत प्राप्त होंगे, उसके आधार पर ही प्रतिवेदन के पांचवे खंड में किए गए निवेदनों पर राष्ट्रपति के आदेश पारित करने की कार्रवाई की जाएगी।

## ५.७ विधि मंत्रालय का हिंदी में यथेष्ट कार्य

विधि मंत्रालय के अधिन राजभाषा (विधायी) आयोग प्रथम राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए संसदीय राजभाषा समिति के सुझाव पर संविधियों के अनुवाद और विधि शब्दावली तथा कोशों से संबंधित संपूर्ण कार्यक्रम की समुचित योजना बनाने और उसे कार्यांवित करने के लिए स्थापित किया गया था। यह २७ अप्रैल, १९६० को जारी किए गए राष्ट्रपति के एक आदेश के अनुसार निर्मित एक स्थायी आयोग है।

आयोग ने प्रमुख कानूनों का हिंदी पाठ तैयार किया हैं। उदाहरण के तौर पर कहा जाए तो भारतीय दंड़ संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, संपत्ति अंतरण अधिनियम, १९८२, सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय संविदा अधिनियम। ये भारतीय विधि शास्त्र के मूलभूत आधार एवं विश्व विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा के मुख्य अंग हैं।

राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ५ की उपधारा (२) में यह उपबंध हैं कि नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद के किसी भी सदन में पुन: स्थापित किए जाते हैं और उन सब संशोधनों का जो उनके संबंध में प्रस्तावित किए जाते हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिंदी में भी अनुवाद होगा। भारत सरकार ने यह निर्णय ले लिया हैं कि इस धारा को शिघ्र ही लागू किया जाएगा। १९७० से ही विधि मंत्रालय यह मानकर कार्य कर रहा हैं कि यह धारा लागू हो गई है। और सभी विधेयकों के अंग्रेजी पाठ के साथ-साथ हिंदी पाठ भी दोनों सदनों में प्रस्तुत किए जाते हैं। किसी भी सदन में ऐसा कोई विधेयक पेश नहीं होता जिसका प्राधिकृत अनुवाद उसके साथ न हो। हिंदी के उपर्युक्त प्रयोग में विधि मंत्रालय की यह उल्लेखनीय सफलता है।

विधि मंत्रालय इस बात के प्रति सजग हैं कि वाद विधि (केस लॉ) हिंदी में होना आवश्यक हैं। इस निमित्त अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए विधि मंत्रालय ने उच्चतम न्यायालय के सभी प्रकाशन योग्य निर्णयों के प्रकाशन के लिए ''उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका'' का भी प्रकाशन शुरू किया गया। इसमें भारत के विभिन्न

उच्च न्यायालयों के निर्णयों में से चुने हुए निर्णय प्रकाशित किए जाते हैं ।

विधि मंत्रालय के राजभाषा (विधायी) आयोग में ही केंद्रीय अधिनियमों का राज्यों की राजभाषाओं में अनुवाद हो रहा है ।

## ५.८ हिंदी कार्यान्वयन के कुछ अन्य सुझाव

अब केवल विधि ही नहीं अपितु सारे मंत्रालयों में हिंदी उत्थान की आवश्यकता है । समस्या और कुछ नहीं केवल इतनी ही है कि आज सारे अधिकारी एवं अधिनस्थ कर्मचारी राष्ट्र का विकास चाहते हैं, किसी भी हाल में चाहे वह राज्य स्तर पर हो या राष्ट्रीय स्तर पर, जैसे गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्रभाई मोदी या अन्य व्यक्ति, बस समस्या थोडे सही मार्गदर्शन एवं सहुलियतों सुविधाओं की हैं ।

यदि थोड़ी शांति और संयम से काम लिया जाए तो सभी मंत्रालयों से अपेक्षित कार्य करवाया जा सकता है । विधि एवं सभी मंत्रालयों में हिंदी को लेकर समान समस्याएँ ही हैं तो यहाँ कुछ विधि के साथ-साथ सभी कार्यालयों में उपयोगी होने वाले सुझाव दिए जा रहे हैं । जिसकी कुछ दिशाएँ इस प्रकार हो सकती हैं ।

### ५.८.१ अनुवाद नेटवर्क

मौलिक साहित्य-रचना के अलावा, अनुवाद कार्य की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है । इस के लिए विधि से संबंधित सभी बड़े कार्यालयों में अनुवाद नेटवर्क की स्थापना करनी होगी । क्योंकि उसके बाद फैसलें, केस, आदि अदालती संबंधी बातों को देश का प्रत्येक नागरिक समझ पाएगा । इस प्रकार समस्त भारतीय साहित्य का अनुवाद हो जाने से प्रत्येक भारतवासी उस का लाभ प्राप्त कर सकेगा । इस

प्रकार संविधान की धारा ३५१ में निर्दिष्ट सामासिक संस्कृति का भी विकास होगा।

अनुवाद कार्य माना जाए उतना सरल नहीं है क्योंकि उसमें छोटी सी गलती भी एक बड़ी समस्या निर्मित कर सकती है। और वह केवल एक व्यक्ति का कार्य नहीं किंतु सामूहिक कार्य हैं। इस कार्य में भाषा विद्वानों की भी आवश्यकता रहती है। अन्य अनुवाद संस्थाओं से भी कार्य करवाया जा सकता है।

इस योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय स्तर पर एक अनुवाद-संस्थान की स्थापना की जाए और प्रत्येक राज्य में इस संस्थान की शाखाएँ हो। कथित संस्थान और इसकी शाखाओं के काम में समन्वय होना चाहिए, ताकि किसी काम में पुनरावृत्ति न हों।

### ५.८.२ आधुनिकीकरण

जो भाषा समय की आवश्यकताओं के साथ विकसित नहीं होती, शनै-शनै अधोगति को प्राप्त होकर मृत भाषा बन जाती है। इसलिए, हिंदी का आधुनिकीकरण आवश्यक है।

अदालतों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी की सबसे बड़ी क्षति उसका उर्दूपन है आज भी विधि से संबंधित जितने भी हिंदी के नियम या अन्य साहित्य है वह सब उर्दू मिश्रित हिंदी में है, जो सामान्य जनता की समझ में सरलता से नहीं आ सकता। आज भी अदालती हिंदी में उर्दू का प्रचूर मात्रा में प्रयोग होता हैं जैसे-

| | | |
|---|---|---|
| अदालत | कैदखाना | |
| मुझरिम | फरमान | |
| गवाह | बरखास्त | |
| हलफनामा | हवालात | आदि |

इन शब्दों के हिंदी या तत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाए तो सरलता प्राप्त की जा सकती है ।

विशेष प्रकार की शब्दावली का हिंदी सोफ्ट-वेयर भी निर्मित करना चाहिए, अदालतों एवं विधि संबंधित कार्यालयों में कम्प्युटर एवं उसका अद्यतन ज्ञान देना चाहिए, ताकि वहाँ के कर्मचारी भी आधुनिक टेकनोलोजी के साथ सरलता एवं सुगमता से हिंदी में कार्य कर सके ।

### ५.८.३ परिषद् की स्थापना

हिंदी के सार्वभौमिक विकास के लिए और हिंदी से संबंधित सरकारी एवं गैर-सरकारी विभिन्न संस्थाओं तथा संस्थानों का स्तर बनाए रखने के लिए एक अखिल भारतीय उच्च-स्तरीय परिषद् के निर्माण की आवश्यकता है । इस परिषद् की प्रत्येक राज्य की राजधानी में एक शाखा हो । सरकार, इसकी स्थापना के लिए प्राथमिक खर्च वहन करें जिसमें जमीन, इमारत और अन्य प्रारंभिक खर्च का समावेश होगा और बाद में इसका आर्थिक एवं अन्य प्रबंध किसी स्वायत संस्था को सौंप दें । परिषद् की सता ऐसे लोगों के हाथ में हो, जो स्वयं हिंदी तथा अन्य विषयों के जाने-माने विद्वान हों साथ में प्रशासन में दक्ष हों और हिंदी के प्रति पूरी तरह से समर्पित हों। परिषद् को ऐसे उँचे मापदंड स्थापित करने चाहिए, जिससे हिंदी के साथ किसी भी रूप में जुड़ी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएँ परिषद् के साथ संबंध जोड़ने में गौरव का अनुभव करें ।

## ५.८.४ सरकार की भूमिका

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आजादी के बाद सरकार ने हिंदी के विकास के लिए पर्याप्त कार्य किया है । लेकिन क्या इस काम की सफलता इस प्रकार कभी जांची गई है ? जैसे

(क) जिन सरकारी कर्मचारियों ने सरकारी खर्च पर और आफिस के समय में हिंदी-प्रशिक्षण प्राप्त किया है अथवा जिन्होंने अन्य स्त्रोतों से भी हिंदी सीखी है, उनमें से कितने लोग सरकारी काम-काज में हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं ? उपलब्ध सूचना के अनुसार, २००४ में केंद्र सरकार के ४० लाख कर्मचारियों में से ३४ लाख, अर्थात लगभग ८५% हिंदी जानते थें । यह देखने की आवश्यकता है कि इनमें से कितने लोग हिंदी में काम कर रहे हैं ।

विधि में भी काम करनेवाले ८० प्रतिशत से उपर लोग हिंदी जानते हैं किंतु २० प्रतिशत भी हिंदी में काम नहीं करते प्रावधान होने के बावजूद ।

(ख) सरकारी पत्र-व्यवहार के लिए केंद्र सरकार ने 'क', 'ख', और 'ग' क्षेत्रों में बाँटा हैं । उस निर्णय के अनुसार 'क' एवं 'ख' क्षेत्र के राज्यों के साथ केंद्र सरकार, हिंदी में पत्र-व्यवहार करेगी । लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि केंद्र और सभी राज्यों के बीच प्राय: अंग्रेजी में ही पत्र-व्यवहार चल रहा हैं । कथित फैसलें का पूरी तरह से कार्यान्वयन होना चाहिए फिर चाहे वह न्यायालय या उच्च न्यायालय ही क्यों न हो ।

(ग) 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' और 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' तथा अन्य कुछ संस्थाएँ कई वर्षों से हिंदी के लिए काम कर रही हैं। इनके काम का वस्तुपरक मूल्यांकन होना चाहिए और इनके प्रकाशनों से और अधिक लाभ उठाने के उपाय सोचने की आवश्यकता है।

(घ) प्रतिवर्ष हिंदी के विकास के सूचकांक की गत वर्ष के सूचकांक के साथ तुलना की जाए, और इसमें वृद्धि को आँका जाए । सरकारी काम में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का प्रयोग इस सूचकांक का आधार होगा ।

(ड) अगर हमारे न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में फैसलें हिंदी में सुनाए तो अन्य न्यायालयों के न्यायाधीशों भी हिंदी में निर्णय देने के लिए प्रोत्साहित होंगे।

## ५.८.५ निर्वाचित प्रतिनिधियों का दायित्व

लोकतंत्र के सुचारू चलन के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासन उस भाषा में काम करे, जिस भाषा का आम जनता प्रयोग करती हैं । इस दृष्टि से पंचायतों, विधानसभाओं एवं संसद सदस्यों तथा लोकतंत्र के अन्य संरक्षकों की यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वे सुनिश्चित करें कि प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रमश: परंतु अविलंब, हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं का प्रयोग बढ़ता जाए । इसका यह मतलब नहीं हैं कि निर्वाचित प्रतिनिधियों को इस बारे में अपने दायित्व का ख्याल नहीं है, तात्पर्य केवल इतना है कि भारत की अस्मिता में अपेक्षित सुधार लाने के लिए इस ओर अधिक ध्यान दिया जाए ।

## ५.८.६ माध्यमों का सहयोग

माध्यम परंपरागत हों या आधुनिक, प्रिंट मीडिया हों या इलेक्ट्रोनिक मीडिया, इनका लोगों के दिल और दिमाग पर दूरगामी प्रभाव होता है, इसलिए सभी प्रकार के माध्यमों का प्रयोग विधि में होना चाहिए ।

सभी प्रकार के कार्य तथा वकीलों द्वारा रखी जाने वाली दरखास्तें न्यायालय में प्रयुक्त होने वाली भाषा तथा वहाँ के सूचना पट्ट आदि जगहों पर हिंदी माध्यम का प्रयोग किया जाए तो लोग भी धीरे-धीरे हिंदी को आत्मसात् करना शुरू कर देंगे और फिर वह सहज ही स्वीकार्य बन जाएँगी । सूचना तथा कम्प्युटर आदि में सभी जगहों पर हिंदी का प्रयोग ही शुरू हो जाना चाहिए ।

## ५.८.७ आर्थिक अवसरों के साथ अनुबंध

हमारे सरकारी कर्मचारियों की नीति बीगडे हुए नारिकेल जैसी हो गई है । वे सोचते हैं, हम सरकारी नौकरी में जुडे हैं तो अब हम जैसी चाहे मनमानी कर सकते हैं, हमें किालने वाला कौन है, हम सुरक्षित हैं । दिमाग केवल फायदा देखता है, सरकार चाहे कितनी भी सुचनाएँ दें, कर्मचारी गण अपने हिसाब से ही काम करते हैं। उन के हिसाब से ज्यादा या हिंदी में काम करने से निजी तौर पर क्या फायदा होगा यही सस्ती और छिछोरी मानसिकता बनी रहती है।

ऐसे कर्मचारियों से यदि अपेक्षित मात्रा में कार्य करवाना हौ तो आर्थिक अवसरों का लालच होना आवश्यक है । यदि कुछ विशेष आमदनी प्राप्त हों तो ये सारे महाशय

हिंदी में दिलोजान से काम करेंगे । अत: परिणामदायी कुछ वित्तीय लाभ मिले तथा कुछ अनिवार्य रूपण कार्य करने से कडे नियम बनाए जाए तो गति हो सकती है ।

### ५.८.८ गलतफहमियों का निराकरण

हिंदी के बारे में निहित-स्वार्थों के कारण कुछ गलत-फहमियों का प्रचार हुआ हैं। इनमें कुछ गलत-फहमियाँ यह हैं कि हिंदी के विकास से शेष भारतीय भाषाएँ दीन-हीन हो जाएगी और उसका सांस्कृतिक मूल्य कम हो जाएगा । देश की एक मात्र राजभाषा बनने से देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नुकसान होगा और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर देश की प्रतिष्ठा में कमी आएगी, भारत को अंग्रेजी के कारण आजादी मिली थी, देश के स्वतंत्र होने के फौरन बाद अगर हिंदी को राजभाषा बना दिया जाता या फिर हिंदी के स्थान पर संस्कृत को संघ की भाषा घोषित किया जाता तो भाषा संबंधी विवाद उत्पन्न ही न होता, इत्यादि । यह भी कहा जाता है कि हिंदी को राजभाषा घोषित करने वाली संविधान सभा जनता द्वारा निर्वाचित नहीं थी, इसिलिए लोकतंत्र में जनता उस संविधान सभा का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं है । इन सभी गलत-फहमियों को तथ्यों के आधार पर प्रभावहीन एवं खारीज करने की जरुरत है ।

### ५.८.९ समर्पण की आवश्यकता

कोई योजना बनाना एक बात हैं और उसे पूरी सच्चाई और लगन के साथ कार्यान्वित करना अलग बात है । यह चिंता का विषय है कि हमारे समाज में नि:स्वार्थ कार्यकर्ताओं का अभाव है । हम मिशनरियों की आलोचना करने के लिए तो तत्पर है, परंतु उनकी तरह समर्पण मनोवृत्ति से काम करने के लिए आगे आने को तैयार नहीं हैं । यदि पानी पीना है तो कुआँ तो खोदना ही होगा अगर हिंदी का विकास करना

है तो उसके लिए काम करना होगा । हिंदी के विकास के लिए ठोस काम ही हिंदी का वास्तविक समर्थन है । केवल नारेबाजी से काम नहीं चलेगा ।

### ५.८.१० हिंदी दिवस को मनाएँ

हर साल हम १४ सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाते हैं । १४ से २० सितम्बर तक हिंदी सप्ताह भी मनाते हैं, क्योंकि उस दिन को संविधान ने हिंदी को राजभाषा का दरज्ञा दिया ।

हिंदी संबंधी धारा ३४३ यद्यपि हिंदी के संबंध में हैं, तो भी संविधान के अध्याय-१७ की अन्य अनेक धाराएँ यही बताती हैं कि संघ शासन में और राज्यों के शासन में, संसद और विधान-मंडलों में तथा न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों में किस प्रकार अंग्रेजी का प्रतिस्थापन हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं से करें ।

न्यायालयों में कई बार हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए कागजी कदम उठाए जाते हैं। पर फिर भी कार्य के क्षेत्र में तो आज भी अंग्रेजी में ही अधिकांश काम हो रहा है। हिंदी दिवस/सप्ताह समारोंहों में हर कार्यालय के अध्यक्ष हिंदी में भाषण पढ़कर संविधान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, किंतु तुरंत बाद वे पुन: अंग्रेजी की ओर मुड़ जाते हैं । स्वतंत्रता के इतने वर्षों के प्रयोग से यही समझना चाहिए की अभी तक राजभाषा नीति लक्ष्य सिद्धि में पूर्णत: सफलता नहीं प्राप्त कर पाई । इतने वर्षों का समय कम तो नहीं माना जा सकता । अब समय आ गया है कि अनुभवों के आधार पर राजभाषा नीति में भी आवश्यक सुधार लाया जाए। संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच इस विषय पर संवाद आरंभ हो, जिससे एक नई नीति अपनायी जा सके । नयी नीति ऐसी हो कि निश्चित समयावधि के अंतर्गत देश

का सारा शासन देश की भाषाओं में ही हो सके ।

मुझे लगता है कि जब तक गुजरात को छोडके यहाँ गुजरात को इसलिए छोडकर बात की जा रही है क्योंकि गुजरात ने तो पहले से ही हिंदी को अपना लिया है । अन्य राज्यों का शासन अंग्रेजी भाषा में चलता रहेगा तब तक सरकार को भी साथ-साथ अंग्रेजी का सहारा लेना पडेगा । जब प्रत्येक राज्य का राजकाज उसी राज्य की अपनी प्रादेशिक भाषा में शत प्रतिशत होने लगेगा तब अंग्रेजी की जडें स्वयं हिल जाएँगी और उखड़ जाएगी ।

इसके लिए हमे उचित और अनुकूल वातावरण का निर्माण करना होगा । अन्य राष्ट्रीय त्योहारों की भाँति हिंदी दिवस भी उस भावना के साथ मनाया जाएँ तो, इस दिशा में सोचने के लिए प्रशासकों और कर्मचारियों को प्रेरित कर पाएँगे ।

## ५.९ विधि की अन्य समस्याएँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के विगत छ: दशकों में न्यायिक पद्धति के ढंग, कार्य पद्धति, पदाभिधानों, भाषा, दृष्टिकोण, विवादों को सुलझाने की पद्धति में किंचित परिवर्तन हुए बिना उसमें विदेशी शासकों द्वारा स्थापित प्रणाली की सभी साज सज्जा विद्यमान है। स्वतंत्रता बाद न्याय प्रणाली से रातोरात यह आशा की गई की यह भारत में सामाजिक क्रांति का प्रभावी साधन होगा । संविधान के प्रवृत होने पर, इस प्रणाली से यह आशा की गई की वह अपने आपको इस प्रकार प्रवृत्त करेगी कि जिससे भारतीय समाज को राष्ट्र के रूप में रूपांतरित करने में सुगमता हो सके और वह संविधान के आदेशों को कार्यांवित करने के लिए प्रभावी साधन बने । इस प्रणाली का एक अतिरिक्त उत्तरदायित्व नागरिकों के मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए संरक्षक

देवदूत की भूमिका का निर्वाह करना था । इस प्रकार न्यूनाधिक रूप से विधि एवं व्यवस्था प्रवर्तन के तंत्र के रूप में कार्य करने वाली पूर्णत: औपनिवेशिक संस्था से उसे सतर्क प्रहरी बनना था । इन महान दायित्वों का निर्वाह करने की भूमिका न्याय-प्रशासन को सोंपी गई परंतु परिस्थिति फिर भी भिन्न रही । न्याय प्रशासन का क्षेत्र वर्तमान समय में अनेक विवादों, जटिलताओं, अंतर्विरोधों, अंतर्निहित विसंगतियों, प्रक्रिया जनित दोषों आदि से ग्रस्त हैं । यही कारण है कि महान विधि और न्यायशास्त्रियों द्वारा इस क्षेत्र में गंभीर चिंताएँ व्यक्त की गई । इस परिप्रेक्ष्य में न्याय प्रशासन में व्याप्त दोषों, समस्याओं एवं कमियों पर निम्न लिखित मुद्दों को अलग किया जा सकता हैं ।

- कार्यपालिका का बढ़ता हस्तक्षेप
- प्रतिबद्ध न्यायपालिका का विवाद
- न्यायिक समीक्षा की शक्ति एवं सीमाएँ
- न्यायिक सक्रियतावाद के विवाद बिंदु
- मानवीय उपादान
- समान संख्या के न्यायाधीशों के विनिश्चयों में विरोध
- गठबंधन में आंतरिक विभाजन
- संस्थागत रुकावटें
- समाज और कानून के बीच बढ़ती दूरी
- सामाजिक सहयोग का अभाव एवं जन-सम्मान की कमी
- न्याय-प्रशासन एवं सहयोगी संस्थाओं में समन्वय का अभाव

- न्याय प्रशासन में जन-शक्ति आयोजन की समस्या
- वित्तीय स्वायत्तता का अभाव
- न्यायपालिका से कार्यपालिका का पृथक्करण अपर्याप्त एवं विसंगतिपूर्ण
- न्याय में विलंब
- न्याय का महंगापन (कोर्ट फीस के संदर्भ में)
- विधि एवं न्याय में हिंदी के प्रचलन संबंधित समस्याएँ
- विज्ञान एवं तकनीकी उपकरणों का अभाव

उपर्युक्त विधि की समस्याओं को यहाँ अधिक विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है। अतः विषय संबंधित अन्य समस्याएँ कुछ इस प्रकार से हैं।

### ५.९.१ विधिक सहायता कार्यक्रम के क्षेत्र में व्याप्त समस्याएँ

भारत में न्यायिक प्रक्रिया को सहज एवं सुलभ बनाने के प्रयासों में विधिक सहायता संबंधी योजना के क्रियांवयन संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। विधिक सहायता को सामाजिक न्याय के साथ लक्ष्योन्मुखी बनाया गया है।

आज भी सामाजिक-न्याय सामान्य लोगों की पहुँच से बहुत दूर हैं। इस क्षेत्र में व्यावहारिक स्तर पर अनेक कठनाइयों एवं समस्याओं को देखा जाता है। जैसे-

- **न्यायालयों की अपर्याप्त संख्या :**

देश की बढ़ती जनसंख्या तथा नागरिकों के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के कारण विवाद बहुत बढ़ गए हैं और उनके अनुपात में न्यायिक अधिकारियों की संख्या नहीं बढ़ पाई हैं।

**o पक्षकारों की कानूनी अनभिज्ञता :**

सामान्यत: निर्धन पक्षकारों को यह पता नहीं होता कि उनके कानूनी अधिकार क्या हैं। आम जनता को अधिकारों की जानकारी है किंतु इसकी जानकारी नहीं है कि अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उनको क्या करना चाहिए।

**o साक्षी व्यय की समस्या :**

निर्धन व्यक्ति कभी-कभी धन के अभाव में साक्षीगण को अपने पक्ष में उपस्थित रख पाने में असमर्थ होता हैं। साक्षीगण के कथन या साक्ष्य के अभाव में निर्धन व्यक्ति सही न्याय से वंचित रह जाता है।

**o आर्थिक कमजोरी :**

निर्धन पक्षकार अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण अच्छे अधिवकता की सेवाएँ प्राप्त नहीं कर सकता। निर्धन व्यक्ति प्राय: यह भी महसूस करते हैं कि उनके अधिवक्ता को दिए जाने वाले मान देय एवं शुल्क के अभाव में अधिवक्ता उनसे संबद्ध-प्रकरणों में रुचि नहीं रखते।

### ५.९.२ विधिक साक्षरता का क्रियान्वयन एवं समस्याएँ

भारत में अधिकांश जनता ग्रामीण परिवेश एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहती है, जहाँ विधि ज्ञान का पूर्ण अभाव है। साधारण जनता को उपयोगी कारणों की जानकारी देने के लिए विधिक साक्षरता अभियान को गति प्रदान की जाती है, किंतु इस कार्यक्रम के व्यावहारिक पक्ष का मूल्यांकन करने पर इस योजना के कई सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोष सामने आते हैं, यथा-

सामान्यतया विधिक साक्षरता से पूर्व विधि चेतना के प्रयासों को महत्त्व नहीं दिया जाता । देश की अधिकांश जनता आज भी सामान्य कानूनों से अनभिज्ञ है । कानूनों का जंगल इतना पेचीदा है कि आम आदमी तो क्या शिक्षित समाज के लोगों को भी उसका ज्ञान मुश्किल से हो पाता है । विधिक सेवा कार्यक्रम के अंतर्गत विधिक साक्षरता शिबिरों के आयोजन के व्यवहारिक पक्ष में भी कुछ कमियाँ पाई जाती हैं जिनके कारण इनका आयोजन मात्र औपचारिकता बनकर रह जाता है ।

### ५.९.३ प्रादेशिक-अदालत व्यवस्था का क्षेत्र एवं कठिनाइयाँ

राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सहायता का कार्यक्रम बहुआयामी है । विवादों को मुकदमेबाजी से यथा संभव परावृत्त रखने, उनके विवादों को बातचीत एवं समझौते के आधार पर तय किए जाने, न्यायालयों में मुकदमों के बढ़ते अंबार को कम करने एवं जनता के समय एवं धन को व्यर्थ की बर्बादी से बचाने हेतु स्थानीय (लोक) अदालतें स्थापित की गई । इस व्यवस्था के फायदें एवं नुकशान दोनों हैं ।

सामान्य प्रक्रिया में न्यायाधीश स्वतंत्र रूप से अकेले में विचार करता है, मुकदमे के पक्ष और विपक्ष में तर्कों को सुनकर गवाही के आधार पर सच्चाई खोजता है । यह सब लोक अदालतों में संभव नहीं है । ग्रामीण स्तर पर इसका संगठन कमजोर है । इन अदालतों के आयोजन की सूचना समुचित न होने के कारण सामान्य जन इससे मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है । आदिवासी विस्तारों में जहाँ बाल-विवाह, द्वि-विवाह, नाता प्रथा जैसी परंपराएँ विद्यमान हैं वहाँ इस प्रकार के विवादों में समझौता करवाने में व्यावहारिक कठिनाईयाँ उत्पन्न होती हैं । निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले निर्धन ग्रामीण व्यक्तियो को भरण पोषण की समस्याओं के

समाधान कारण कई बार विवादों का समाधान अत्यंत कठिन होता है ।

### ५.९.४ लोकहितवाद का क्षेत्र एवं व्यावहारिक समस्याएँ

भारत में न्याय-प्रसासन के क्षेत्र में सार्वजनिक हित में मुकदमेबाजी के सिद्धांत का आरंभ एवं विस्तार एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है । इससे कानून के सम्मुख समानता का सिद्धांत सुनिश्चित हुआ है । साथ में इसके माध्यम से सर्वोच्च-न्यायालय एवं उच्च- न्यायालयों में जागरूक नागरिकों, वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं या ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा गरीब अथवा कमजोर वर्ग के सदस्यों की ओर से वाद (केस), (मुकद्मा) दायर करने की लंबी शुरूआत हुई है ।

इन से संबंधित समस्याओं में प्रमुख समस्या लोकहित मुकदमे को पहचानने के बारे में है ।

एक समस्या यह भी दृष्टिगत होती है कि इस आंदोलन का संचालन और प्रयोजन विभिन्न न्यायालयों में काम करने वाले कुछ जनसेवी वकीलों द्वारा किया जाता है । लोकहितवाद आंदोलन एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया में परस्पर विरोध की स्थिति भी कुछ उदाहरणों में उभर कर आती है । इनकी बढ़ती संख्या के कारण मुकदमों का अंबार बढ़ता जाना भी एक गंभीर समस्या है । एक बड़ा दोष यह भी है कि अदालत से न्याय निर्णय हो जाने के बाद उसकी कार्यवाही की स्थिति असंतोषजनक है ।

### ५.९.५ अनुसूचित जाति-जनजाति हेतु विधिक एवं न्यायिक प्रावधान एवं समस्याएँ

प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इस बात की चेष्टा करे कि जनता को

सभी स्तरों पर समानता का व्यवहार मिले । सामाजिक लक्ष्यों के रूप प्रस्तुत करते हुए भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्य की जनता के दुर्बलतम वर्गों की विशेषकर अनुसूचित जाति एवं जनजाति हेतु विधिक एवं न्यायिक प्रावधानों की सुरक्षा एवं योजनाएँ प्रदान की गई हैं । किंतु विधिक सहायता तंत्र के जो लोग विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में जाते हैं, उनमें इस कार्य हेतु पर्याप्त चेष्टा एवं दिलचस्पी का अभाव है ।

कई प्रश्न ऐसे हैं, जो विधिक सहायता एवं अनुसूचित जाति-जनजाति से संबंधित अन्य योजनाओं को क्रियान्विति में बाधा उत्पन्न करते हैं, जैसे- यह कठिन प्रश्न है कि क्या विधिक सहायता उन अधिकारों और उपचारों की अनिवार्य जानकारी हासिल कर सकती है जो संबंधित लोगों की रोजमर्रा जिंदगी पर प्रभाव डालते हैं और कौशल तथा साधनों सहित जब भी आवश्यकता हो, विधि का सहारा ले सकती है ।

विधिक सहायता द्वारा इन जातियों को सताने एवं शोषण करने पर रोक लगाया जाना या निवारक सेवाओं द्वारा जल्दी से जल्दी ऐसी घटनाओं को दबा देना एक कठिन कार्य है।

विधिक सहायता के अतिरिक्त इन जातियों पर अत्याचार निवारण हेतु विशेष अधिनियम स्थापित है, जिसके अंतर्गत विशिष्ट न्यायालयों के प्रकोष्ट स्थापित किए गए हैं । इस अधिनियम के विविध प्रावधान अनुसूचित जाति एवं जनजाती को न्यायिक संरक्षण प्रदान करते हैं । व्यवहार ने इस नियम के अंतर्गत यदि पक्षकारों के बीच पुन: मधुर संबंध स्थापित करने की आशा हैं और वे राजीनामा (Resign) करना चाहने हैं तो राजीनामा पेश करने की व्यवस्था निहित नहीं है । जबकि यह एक ऐसा उपाय है

जिससे अनुसूचित जाती एवं जनजाति के लोगों पर किए गए अत्याचारों के घावों पर मरहम रखा जा सकता है ।

## ५.९.६ महिला एवं बाल वर्ग के क्षेत्र में व्याप्त समस्याएँ

भारतीय संविधान न केवल नागरिकों के मूल अधिकारों का सुरक्षा प्रहरी है, अपितु समाज के कमजोर वर्ग के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता को भी सुनिश्चित करता है । महिलाओं और बालकों का कल्याण इसका सर्वोपरि लक्ष्य है । व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो महिला एवं बाल कल्याण का क्षेत्र भी विविध चुनौतियों से भरा है । न्याय निर्णयों द्वारा महिलाओं की स्थिति में विविध क्षेत्रों में कुछ सुधार परिलक्षित हुए हैं किंतु अभी भी अधिक सुधार और सामाजिक चेतना की आवश्यकता है । आज महिलाओं के जो कानून भारतीय संविधान के अंतर्गत बने हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं । लगभग ९० प्रतिशत महिलाएँ अशिक्षित हैं, उन्हें न तो कानून की वास्तविक जानकारी ही है और न उन्हें मार्गदर्शन देनेवाला कोई है । महिलाओं के हित के लिए जो कानून बने हैं वे कई रूपों में व्यावहारिक भी नहीं हैं । इस के अलावा महिलाओं से संबंधित हिंसात्मक शारीरिक शोषण, दहेज हत्याओं, दहेज यातनाओं, कामकाजी महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न के आपराधिक मामलों के सर्वेक्षण एवं आंकड़े आश्चर्यचकित करने वाले हैं । न्यायिक प्रक्रिया के जटिलता के कारण प्राय: अपराधी छूट जाते हैं । कानून की पेचीदगी के कारण साबीत हुए अपराध के अपराधी भी बाइज़्ज़त बरी हो जाते हैं । न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता एवं कानून की पेचीदगी के कारण अपराधियों का बच जाना भी एक विड़ंबना है । नारी निकेतनों की दुर्दशा

एवं कारागारों तथा बंदीगृहों में उनकी दयनीय स्थिती भी सामाजिक-न्याय के उद्देश्य एवं व्यवहार पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं ।

महिलाओं के अलावा बच्चों की देखभाल ऐसा विषय है जिसके लिए भारत का संविधान एवं राज्य तंत्र प्रतिबद्ध है । इस संबंध में नीति-निर्देशक तत्त्वों के अंतर्गत तथा विविध बाल-योजनाओं के अंतर्गत बाल कल्याण हेतु कई कार्य किए गए हैं । लिंग पर आधारित असमानताओं को दूर करने, बालविवाह निषेध, अक्षम एवं अनाथ बच्चों हेतु बालनिकेतन एवं बाल श्रम प्रतिबंध हेतु विविध कायदों का प्रावधान हैं । फिर भी इस के बावजूद उपेक्षित, निराश्रित एवं अन्य बच्चों के लिए देखभाल, संरक्षण उपचार और पुनर्वास सुविधाओं में व्यवहारिक स्तर पर अधिक आशाजनक प्रगति नहीं है ।

भारत में न्याय प्रसारण के राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय एवं अधीनस्थ स्तरीय अध्ययन में क्रमश: उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय एवं सामाजिक-न्याय के क्षेत्र में समस्याओं के विस्तृत विश्लेषण के पश्चात् कुछ अहम प्रश्न उत्पन्न होते हैं । क्या आनेवाले वर्षों में न्याय-व्यवस्था कोई साहसी एवं क्रियाशील रुख अपनायेगी अथवा केवल विधि की भूमिका में यथा स्थिति बनाए रखना चाहेगी ? क्या भारत में न्याय-प्रशासन विधि की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के कार्य में विवेक एवं साहस द्वारा योगदान कर सकेगा, जिससे सामाजिक-न्याय जनसाधारण तक पहुँच सके । इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर स्वरूप न्याय प्रशासन को परिष्कृत करना वर्तमान समय की पहली आवश्यकता है । भारत के संविधान निर्माताओं ने भारत के करोड़ों लोगों की आशाओं एवं आकांक्षाओं को स्वर प्रदान कर जो चेतना

जगाई है वह अनल बनकर परंपरागत, सामंतवादी मर्यादाओं पर आधारित समाज की समान संरचना को अपने में समेट रही है । तया सामान्य नागरिक के लिए सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान कर रही है । न्याय प्रशासन को उन सब स्थितियों से गुजरना होगा, जिनसे वह अपनी सभी समस्याओं से उबर सके एवं अपनी शुद्धता एवं क्रांति को कायम रख सके । समाज के कमजोर वर्गों की सेवाओं के लिए विधि का विकास एवं उसमें परिवर्तन कर न्याय-प्रशासन को लाखों लोगों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप बनाना होगा सामाजिक न्याय प्रदान करने के साधन के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से इसकी व्यावहारिक व्याख्या करनी होगी, पुराने एवं अनुपयोगी नियमों एवं प्रथाओं को समाप्त कर नए साधन, नए तरीके विकसित कर, सामान्य नागरिक तक न्याय पहुँचाने के लिए नई व्युह-रचना करनी होगी । संपूर्ण देश में न्याय प्रशासन के लिए यह ऐसी चुनौती है जिसका सामना सृजन एवं चिंतन से ही किया जा सकता है ।

## ५.१० और अंत में...

आगे हमने देखा कि विधि क्षेत्र एवं उससे संबंधित अन्य विभागों में अनेकों समस्याएँ हैं जो न्याय पालन आदि में बाधारूप हो रही हैं । हमने विधि क्षेत्र में हिंदी संबंधित एवं अन्य समस्याओं पर भी विचार किया जो परोक्ष रूप में कहीं न कहीं आपस में जुड़ी हुई हैं । तथा हो सके वहां तक हमने ऐसा भी प्रयत्न किया कि उन समस्याओं का कुछ समाधान हो सके अत: उनके उपायों पर विचार विमर्श हुआ । किंतु यह सारी बातें केवल एक प्रयत्न बनकर मात्र रह जाती हैं क्योंकि बड़े-बड़े

विद्वान बैठकर समस्या समाधान संबंधी विचार प्रस्तुत करते हैं मगर उसका कार्यान्वयन नहीं हो पाता यदि उसे अमल में भी लाया जाए तो आदि से अंत तक सभी में परिवर्तन करना पड़ेगा और एसा करने की कोई ठोस इच्छा व्यक्त नहीं करता ।

यह किसी एक या दो आदमियों का काम नहीं पूरे समाज को एकजुट होकर काम करना है । न्याय प्रशासन को सुधारने में समाज की अह्म भूमिका होती है । कोई भी व्यवस्था समाज के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती । न्यायालयों की व्यवस्था इस लिए की जाती हैं । कि सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे न्याय प्रशासन समाज का ही एक अंग है एवं समाज के लिए ही गठित किया गया है। अत: उसमें सुधारों के प्रति सक्रियता की नीति अपनाने में समाज की भूमिका को भी महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए । न्याय-प्रशासन के कई क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों हेतु समाज को भी दायित्व मुक्त नहीं किया जा सकता । भ्रष्ट तरीकों के विरोध में समाज की दृढ प्रतिज्ञा न्याय-प्रशासन को सुदृढ बना सकती है । दोषों की शिकायत जागरुक व्यक्तियों द्वारा स्वयं जाकर की जानी चाहिए । व्यक्तियों को चाहिए की स्वयं कानून का पालन न करने वालों को न्यायालय तक पहुँचाए ।

कानूनों एवं नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए । सामाजिक क्रांति लाने में समाज-सुधारकों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है । यह वर्ग बिना परवाह किए सुधारों को समाज के लिए हितकारी समझता है, उसके लिए समाज का विरोध भी सहन करता है, किंतु धीरे-धीरे जनमत उसकी नैतिकता एवं निष्ठा के बल के आगे नतमस्तक हो जाता है । अब भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें कार्यपालिका एवं न्यायपालिका

दखल नहीं देना चाहती एवं स्वतंत्रता के पश्चात् समाज सुधारकों एवं समाज सेवी संगठनों का उत्साह भी ठंड़ा पड़ता जा रहा है । लोकतंत्र को जिस नैतिक बल की आवश्यकता है । वह नैतिक बल जन-जागरण में जितना प्राप्त होता हैं उतना न्यायिक या विधायी संस्थाओं में नहीं । अत: लोकशक्ति एवं उसे सही दिशा देने के प्रयासों को मजबूती प्रदान किया जाना आवश्यक है ।

न्याय प्रशासन के क्षेत्र में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सुझाव विधि की प्रासंगिकता से संबंधित है । विधि-व्यवस्था में अनेक विधिया एवं विधि संशोधन ऐसे हैं जिनका स्त्रोत मुख्यतया किसी विधिवेत्ता के विचार, टीकाएँ, शोधग्रंथ, शोध-लेख अथवा विभिन्न विधिवेत्ताओं के विचारों का निष्कर्ष है । न्याय प्रशासन के सही मूल्यांकन हेतु इन विधिवेत्ताओं की विधिक देन को संकलित करना तथा उसका अध्ययन करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है । आवश्यकता इस बात की है, कि प्रमुख विधिवेत्ताओं के योगदान को प्रकाश में लाया जाए । यह कार्य अवश्य ही शोधपूर्ण एवं कठिन जिम्मेदारी का है, किंतु न्याय-प्रशासन में इस प्रकार के प्रयासों की क्रियांविति निश्चित ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी ।

अंतिम रूप में, भारत में न्याय प्रशासन का क्षेत्र आज अपनी परिधि में नए सुधारों के लिए विचारों को आमंत्रित कर रहा है । इस हेतु न्याय प्रशासन के क्षेत्र में शोध कार्यों की आवश्यकता का तथ्य महत्त्वपूर्ण है । यह हमारे लिए गर्व की बात होगी की समस्त विश्व में भारत की न्यायपालिका का सम्मान है । इसके गरिमा एवं कांति को चिरंतन बनाए रखने हेतु न्याय-प्रणाली को चारों ओर से होने वाले आघातों,

अनास्था के वातावरण एवं प्रतिकुलताएँ उत्पन्न करने वाली स्थितियों से उबारने की विशेष आवश्यकता है। इस निमित्त शीघ्र ही यथावश्यक सुझाए गए संस्थागत सुधारों की क्रियांविति एक अपरिहार्यता है। यह कार्य जितना जल्दी हो सके उतना ही बेहतर होगा। नीचे से उपर तक सभी स्तरों की न्याय-प्रणाली को सुसंगत बनाने तथा इस के नूतन विस्तार क्षेत्रों संबंधी नए विकल्पों की तलाश करना आज के समय की महत्त्वपूर्ण मांग है। इस दिशा में किए जा रहे प्रयासों को और अधिक प्रोत्साहन देते हुए न्याय-व्यवस्था के नूतन प्रयागों एवं उपयोगी आधारों को सुचारु रूप से विकसित किया जाना वर्तमान युग की गंभीर आवश्यकता है। नि:संदेह यह कार्य रचनात्मक चिंतन, मंथन एवं सकारात्मक क्रियाशीलता के बिना संभव नहीं हो सकता है, अत: इस हेतु वांछित वातावरण का निर्माण किया जाना और पूर्ण इमानदारी से प्रयत्नरत रहना बहुत ही आवश्यक है, तभी एक आदर्श न्याय व्यवस्था के लक्ष्य की सम्पूर्ति संभव हो सकती है।

अंततोगत्वा इतना तो अवश्य ही कहा जाएगा कि भारत एवं उसका न्याय तंत्र अजोड़ है। पूरे विश्व में ऐसा न्याय तंत्र ढूंढ़ पाना कठिन है। हाँ यह अवश्य है कि जहाँ भारत दुनीयाभर में आबादी में दूसरे क्रम पर हो वहाँ कार्य एवं व्यवस्था तथा जिम्मेदारियाँ भी अनेक गुनी होती हैं। तो संभव हैं कि वहाँ समस्या भी निर्मित होगी क्योंकि विधि पूरा आयोग है और उससे प्रत्येक भारतीय जुड़ा हुआ है। और सभी भारतीयों का हक बनता है कि वे अपने राष्ट्र के संविधान एवं विधि, न्याय से परिचित हों। साथ ही कुछ समस्याएँ सामान्य नागरिकों को लेकर होती हैं कुछ भाषा को लेकर

होती हैं तथा कुछ न्याय से जुड़ी होती हैं प्राय: न्याय एवं भाषा संबंधित समस्याओं का पहले समाधान करना चाहिए ताकि वह आम जनता को भी सुलभ हो सके और भाषा सरलता के कारण उसकी समज में भी आ सके । और जब तक सामान्य मनुष्य की समज में राष्ट्रीय विधि आयोग का ज्ञान नहीं आयेगा तब तक उत्साह एवं निष्ठापूर्वक प्रयत्न करते रहने चाहिए ।...

## o उपसंहार

न केवल भारत बल्कि संसार के कई देशों के बाजारों और विश्व विद्यालयों तथा अन्य क्षेत्रों जैसे कि विज्ञान एवं तकनीकी, प्रोद्योगिक, खेलकूद, मीड़िया, बैंक और विधि आयोग आदि में भी एक पूर्वापेक्षा आज हिंदी का महत्त्व बढ़ा है । विदेशी उपाधियों में हिंदी को स्थान मिला है । विदेश में आज हिंदी की बोल-बाला हैं । हिंदी के अतिथि आचार्य, प्रवक्ता और प्राध्यापक आज विभिन्न देशों में सगर्व काम कर रहे है । अत: आज के समय में भारत के सर्वांगी विकास को देखते हुए सभी राष्ट्रों ने भारत के साथ संबंध बनाए रखने के लिए हिंदी का स्वीकार किया है । यह हमारे लिए गर्व और अभिमान की बात है । लेकिन कुछ कड़वे सच भी हैं । जिनके बारे में, मैं यहाँ कहना चाहूँगा ।

हिंदी को सभी कार्यालयों एवं सरकारी सभी आयोगों, खास कर विधि में स्थिर रूप देने के लिए हमें भारत सरकार के मन में यह बात उतारनी होगी कि भारत एक संप्रभु और संविधान के अंतर्गत सत्ता-संपन्न देश है । भारत सरकार के नौकरशाहों ने इसे अंग्रेजी का उपनिवेश पूर्ववत ही बना रखा है । ये लोग अपना वेतन भारत के राजकोष से लेते तो हैं और लेते भी नियमित हैं । इसके बावजूद पूरी निर्लज्ञता से

काम अंग्रेजी का करते हैं । इस प्रकार हिंदी को अपमानित करना जैसे इनका दायित्व बन गया है ।

राष्ट्रपति के आदेशों की खिल्ली उडाना, संसद के नियमों की अवहेलना करना, हिंदी में काम करने वाले कर्मचारियों/अधिकारियों को दूसरे दर्जे का बनाए रखना, इनका राजधर्म हो गया है । जब हिंदी भारत में ही अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही नजर आती है, तब वैश्विक फलक पर हिंदी को गौरवान्वित करने के लिए ज्यादा संघर्ष एवं महेनत करने की आवश्यकता होगी ।

दिखाने के नाम पे सारे संस्थान मानो एसा बर्ताव करते हैं कि हिंदी एवं उसके प्रति प्रेम, मानो उनके रग-रग में बसा हो । हिंदी पखवाड़ा मनाते हैं, हिंदी की महत्ता के नाम पर लंबें चौड़े भाषण और बयान देते थकते नहीं । विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित कर के सामान्य जनमानस को साथ में लेकर अपने हिंदी प्रेम का गवाह उन्हें बनाते हैं । साथ में मजे की बात यह भी है कि इन सरकारी संस्थानों में उपर से ऐसे कार्यक्रमों की वित्तीय सहाय भी मिलती हैं, जो आपस में बांट ली जाती हैं । यदि काम-काज के दिनों में जाकर देखा जाए तो एक व्यक्ति भी हिंदी में काम करता नजर नहीं आता । उल्टा गए हुए व्यक्ति को अंग्रेजी का महत्त्व समझाने लग जाते हैं। बस यही सिलसिला चलता हैं हर साल हिंदी दिवस को मनाने के लिए पैसा आता हैं आनंद प्रमोद होता है, जैसे वह कोई औपचारिक त्योहार हो ।

जब तक दोनों ओर से ठोस कारवाई नहीं की जाती जब तब विकास होना संभव नहीं हैं । दोनों और से का यहाँ तात्पर्य है भारत सरकार जो हिंदी संबंधी नियमों

का अनुसंधान करती है । और दूसरे, चल रहे सभी सरकारी कार्यालय कि जहाँ इन नियमों का अनुपालन करवाना है । यदि आप नियम बनाते हैं तो उनके भंग होने पर कुछ कड़ी शिक्षा का प्रावधान भी होना चाहिए । और यदि हिंदी संबंधी नियमों का सही-सही अनुपालन होता हैं तो उन्हें कुछ प्रोत्साहन मिलना चाहिए । आज हो यह रहा हैं कि सरकार अधिनस्थ कार्यालयों से हिंदी में कार्य करवाना तो चाहती है । और उसके लिए कई योजनाओं का भी प्रावधान किया हैं जो हमने आगे के प्रकरणों में देखा किंतु उसके इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं । हिंदी कार्य के लिए ठोस प्रक्रिया होनी चाहिए । जैसे बडी-बडी पोस्ट (अहोदे) के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं में ही हिंदी एक अनिवार्य प्रश्पत्र के रूप में होना चाहिए । हिंदी संबंधी विशेष लायकात के लिए प्रमोशन की व्यवस्था होनी चाहिए ।

जहाँ एक ओर राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही है, वहाँ उस गति को रोकने के लिए हमारे ही राजकीय लोग बाधा डालने की कोशिश कर रहे हैं । हालाँकि उनके शब्द एवं स्वर भारत कों आगे ले जाने की आड में होते हैं । वे प्राय: अंग्रेजी के हिमायती होते हैं । 'अंग्रेजी विकास की भाषा हैं, यह नारें दोहराते रहते हैं ।

चूँकि हमारा विषय यहाँ विधि क्षेत्र में राजभाषा हिंदी का प्रयोग है अत: उनसे संबंधित विचार विमर्श करेंगे, आवश्यकता एवं संविधान का निर्देश तो न्यायालयों एवं उच्च न्यायालयों के लिए हिंदी में कार्य करने का हैं । किंतु मैंने जितनी भी अदालतों की मुलाकात ली है और उनसे साक्षात्कार किए हैं । उन सभी जगहों पर समानरूप से दिखने वाली कुछ सामान्य गलतियाँ और समस्याएँ देखी हैं जैसे-

प्रादेशिक अदालतों में सारा काम-काज उस जगह की प्रादेशिक भाषा में होता है । उनसे पूछा तो जवाब था यहाँ पर गाँव के देहाती लोग ज्यादा मात्रा आते हैं अगर हिंदी या अंग्रेजी में काम करें तो उनकी समझ में कुछ नहीं आता और कुछ हद तक वे सहीं भी हैं । इस समस्या के समाधान में दो भाषाओं में एक-साथ काम लिया जाए तो फायदा हो सकता है ।

उच्च एवं उच्चतम न्यायालयों में सारा कार्य अंग्रेजी में होता हैं क्योंकि वहाँ के सारे लोग कर्मचारी, वकील, यहाँ तक कि न्यायाधीश भी अंग्रेजी के पक्षधर होते हैं यहाँ शहरों में शिक्षा की व्यापकता के कारण सामान्य मनुष्य भी अंग्रेजी का जानकार होता है अत: अदालतों में हो रहे कामकाज में वे भी आवाज उठाने की कोशिश नहीं करते।

दूसरी बात विशेष रूप से यह देखी गई कि विधि से संबंधित अभी इतना हिंदी साहित्य न तो उपलब्ध हैं न सर्व सुलभ है । और जितना है वह कुछ जरूरत से ज्यादा दुर्बोध और पेचीदा हैं, भाषा भी उसकी किलष्ट है । इसलिए अधिकारियों को उसका प्रयोग करने में दिक्कत होती है । इसके समाधान हेतु विधि के हिंदी साहित्य का सरल एवं सुबोध रूप से पुन: निर्माण होना चाहिए।

अधिकारियों एवं अधिनस्थ कर्मचारियों की वृत्ति में भी परिवर्तन लाना आवश्यक है । हिंदी में कार्य करने की आंतरिक इच्छा होनी चाहिए उसे जबरदस्ती नहीं लादा जा सकता।

कुछ जिम्मेदारी जनता और समाज की भी हैं उन्हें आगे आकर आवाज उठानी चाहिए । लेकिन हमारी जनता भी शांतिप्रिय है । जैसी भी परिस्थिति हो उसके

अनुकूल अपने आप को ढ़ाल लेती हैं। लोगों में एक आदत सी पड़ गई हैं जो भी हो, चाहे वह प्रतिकूल ही क्यों न हो बस सहन करता सीख लिया है। कुछ इन्हीं वजहों से परिवर्तन नहीं हो पाता, गति मंद हो जाती है। लोगों की कायरता के कारण भ्रष्टाचार का जहर देश की रगों में फैलता जा रहा हैं और देश खोखला होता जा रहा है।

कोई भी इच्छित परिणाम की प्राप्ति करनी हो तो जन-शक्ति ही एक मात्र उपाय है। हिंदी भारत की अपनी भाषा है और इनका प्रयोग स्वाभिमान भर होना चाहिए। युवा लोगों का उत्साह हिंदी के प्रति विशेष है अतः भविष्य में हिंदी का सर्वत्र स्थापित होना निश्चित ही है।

# संदर्भसूची

## आधार ग्रंथ


| क्रम | ग्रंथ का नाम | लेखक | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| १. | जीवन बीमा व्यवसाय में हिंदी प्रयोग | सुधीर निगम | राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली |
| २ | प्रशासनिक कार्यालय मंजूषा | डॉ. इन्द्र सेंगर | मैत्री प्रकाशन, नोएडा |
| ३ | प्रयोजनमूलक भाषा और अनुवाद | डॉ. रामगोपाल सिंह | पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद |
| ४ | प्रयोजनमूलक हिंदी के विविध आयाम | डॉ. मायासिंह<br>डॉ. सिधेश्वर कश्यप | जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद |
| ५ | प्रशासनिक हिंदी | डॉ. हरिमोहन | तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली |
| ६ | भारत में न्याय प्रशासन | डॉ. बेला भनोत | पोइन्टर पब्लीशर्स, जयपुर |
| ७ | भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन | आर.सी. अग्रवाल | एस.चंद एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली |
| ८ | राजभाषा हिंदी | डॉ. भालानाथ तिवारी | प्रभात प्रकाशन, दिल्ली |
| ९ | राजभाषा हिंदी-समस्याएँ एवं समाधान | शशिनारायण स्वाधीन | कलासिकल पब्लीशिंग कम्पनी, नई दिल्ली |
| १० | रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता | हरिमोहन | तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली |

## सहायक ग्रंथ



| क्रम | ग्रंथ का नाम | लेखक | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| १ | इंडिया कंस्टिट्यूअंट असेंबली डिबेट्स | ------- | नई दिल्ली, कंस्टिट्युअंट, असेंबली, १९४९, वोल्युम-९ |
| २ | गुजरात राज्य रिपोर्ट ऑफ दी लीगल कमेटी १९७१ | ------- | |
| ३ | विधिक सहायता | एच.एम. मित्तल | शील सन्स, जयपुर |
| ४ | विधि शास्त्र एवं विधिक सिद्धांत | डॉ. विजयनारायण मणि त्रिपाठी | सेन्ट्रल लॉ. पब्लिकेशन्स इलाहाबाद |
| ५ | व्यवसायिक क्षेत्रों में हिंदी प्रयोग | सं. डॉ. एस.पी. शर्मा | शांति प्रकाशन रोहतक (हरियाणा) |
| ६ | हिंदी के गतिमान क्षितिज | जोगेन्द्रसिंह | तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली |
| ७ | हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठ-भूमि | डॉ. विनयकुमार पाठक | प्रभास प्रकाशन बिलास पुर (छत्तीसगढ़) |
| ८ | संविधान-२, अधिसूचना सं. एस.आर.ओ. ९३८१ | | विधि मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली |



## शब्दकोश



| क्रम | ग्रंथ का नाम | लेखक | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| १ | हिंदी अंग्रेजी कोश | | ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी |
| २ | हिंदी शब्द कोश | डॉ. हरदेव बाहरी | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली |



## – वेबसाइट :

१ गूगल डॉट कोम

२ याहू डॉट कोम

३ वेब दुनिया डॉट कोम